• वर्ष 25 • अंक 1
• अक्तूबर-दिसंबर 2012

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

बैंकिंग पर व्यावसायिक जर्नल

25
रजत जयंती वर्ष
1988 - 2012

पूंजी पर्याप्तता एवं बासेल मानक विशेषांक

बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट

सदस्य

ABCI Member

बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन

विषय सूची

• संपादक मंडल		1
• संपादकीय		2
• अनुचिंतन		5
• इतिहास के पन्नों से	सावित्री सिंह	6
• बासेल-III पूंजी विनियमों के कार्यान्वयन की तारीख में बदलाव		9
• अंतरराष्ट्रीय और भारतीय परिप्रेक्ष्य में बासेल-III : दस प्रश्न जिनका उत्तर हमें जानना चाहिए	डॉ. दुव्वुरी सुब्बाराव	10
• बीआईएस का इतिहास और बासेल विनियमन	कुमार परिमलेन्दु सिन्हा	22
• बासेल दिशा-निर्देशों की मुख्य-मुख्य बातें	डॉ. रमाकांत शर्मा	29
• बासेल-II तथा बासेल-III : एक तुलनात्मक परिचय	विजय प्रकाश श्रीवास्तव	37
• बासेल-II के पिलर-III के अंतर्गत प्रकटीकरण	प्रदीप कुमार	41
• बासेल-III : एक विहंगावलोकन	आर. एस. तिवारी	44
• बासेल-III : एक परिचय	संदीप गुप्ता	50
• बासेल - III मानक: भारतीय बैंकों के लिए चुनौती या विकल्प	विनय बंसल	55
• बासेल-III का भारतीय बैंकों पर प्रभाव	सुबह सिंह यादव	60
• भारत में बैंकिंग को किस प्रकार प्रभावित करेगा बासेल-III	सुशील कृष्ण गोरे	68
• बासेल-III : पारगमन एवं निहितार्थ	एन. चंद्रशेखरन	74
• बासेल-III के कार्यान्वयन से जुड़े मुद्दे और चुनौतियां	आर. एस. रावत	79
• बासेल-III मानक एवं भारतीय बैंक	देवराज	84
• बासेल दिशा-निर्देशों का कार्यान्वयन और भारतीय स्टेट बैंक की भूमिका	डॉ. संजीव प्रचंडिया	88
• घूमता आईना	के. सी. मालपानी	91
• जोखिमों के विभिन्न प्रकार		95
• लेखकों से/पाठकों से		96

संपादक-मंडल

प्रबंध संपादक

डॉ. रमाकांत गुप्ता
महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

कार्यकारी संपादक

सावित्री सिंह
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

सदस्य सचिव

के. सी. मालपानी
प्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

संपादकीय कार्यालय

भारतीय रिज़र्व बैंक
राजभाषा विभाग, केंद्रीय कार्यालय
गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई - 400 018

सदस्य

डॉ. प्रमोद कुमार
महाप्रबंधक, बैंकिंग परिचालन और विकास विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

डॉ. गजेंद्र कुमार
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
इलाहाबाद बैंक, कोलकाता

अतुल अग्रवाल
महाप्रबंधक (लेखा-परीक्षा)
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

डॉ. हरियश राय
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
बैंक ऑफ बड़ौदा, मुंबई

एम. वी. अशोकन
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

अरुण श्रीवास्तव
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई

ब्रिजराज
संकाय सदस्य एवं उप महाप्रबंधक
रिज़र्व बैंक स्टाफ महाविद्यालय, चेन्नै

डॉ. अजित कुमार
संकाय सदस्य एवं सहायक महाप्रबंधक
कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक, पुणे

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए विचार संबंधित लेखकों के हैं। यह आवश्यक नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक उन विचारों से सहमत हो। इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने पर भारतीय रिज़र्व बैंक को कोई आपत्ति नहीं है बशर्ते स्रोत का उल्लेख किया गया हो।

डॉ. रमाकांत गुप्ता द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक, राजभाषा विभाग, गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई 400 018 के लिए संपादित और प्रकाशित तथा इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स, मुंबई में मुद्रित।
इंटरनेट http://www.rbi.org.in/hindi पर भी उपलब्ध। E-mail : rajbhashaco@rbi.org.in फोन 2494 8263 फैक्स 2498 2077
मुखपृष्ठ : सुधाकर वरवडेकर

संपादकीय....

प्रिय पाठको,

> *''प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः*
> *प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।*
> *विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः*
> *प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ।।''*

चिंतन

'विघ्नभय', 'खतरा', 'जोखिम' ये ऐसे शब्द हैं, जो हमें जीवन में अच्छा-से-अच्छा कार्य करने से रोकते हैं। सच तो यही है कि इन विघ्नों को पूरी तरह से समाप्त भी नहीं किया जा सकता, इनका सिर्फ प्रबंधन किया जा सकता है। हमारी विघ्न प्रबंधन यानि जोखिम प्रबंधन की प्रणाली जितनी सशक्त होगी, हम अपने कार्य का दायरा उतने ही अधिक विश्वास के साथ बढ़ा सकेंगे और देश की उन्नति में, अर्थव्यवस्था के विकास में उतना ही अधिक योगदान दे सकेंगे।

जहां तक वित्तीय जगत का, विशेष रूप से बैंकों का, प्रश्न है; कई प्रकार की ऐसी प्रत्याशित और अप्रत्याशित घटनाएं होती हैं जिनका असर उनकी पूंजी और उनके अर्जन पर पड़ सकता है और जिसके फलस्वरूप उन्हें हानि उठानी पड़ सकती है। एक सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली के लिए ज़रूरी है कि इन प्रत्याशित और अप्रत्याशित हानियों से बचाव की व्यवस्था की जाए। प्रत्याशित हानि से बचने के लिए बैंकिंग प्रॉडक्ट की कीमत, प्रत्याशित हानि की मात्रा के अनुसार, बढ़ा दी जाती है तथा हानि के लिए प्रावधान किया जाता है; तो दूसरी ओर अप्रत्याशित हानि का झटका झेलने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजी का प्रावधान किया जाता है।

1981 में अमेरिका में विनियामक संस्थाओं ने अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले बैंकों के लिए न्यूनतम पूंजी आस्ति अनुपात विनिर्दिष्ट किया, परंतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1988 में बासेल मानदंड लागू किए जाने के पहले स्पष्ट तौर पर कोई पूंजी पर्याप्तता मानदंड लागू नहीं था। वर्ष 2013 से बासेल-III मानदंड लागू होने जा रहे हैं और बासेल-III मानदंड लागू होने के ठीक पहले प्रकाशित हो रहे इस अंक में बासेल-III पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित किया गया है, अतः इस विशेषांक के लिए इससे बेहतर समय और इस समय के लिए इससे बेहतर विशेषांक हो ही नहीं सकता था। पूरी तरह से बासेल-III के लिए समर्पित हिंदी भाषा में यह पहली पत्रिका, या यूं भी कह सकते हैं कि पहली पुस्तक, है और मुझे पूरा यकीन है कि यह हमारे पाठकों के लिए उपयोगी होगी और हमारे पाठक इसका तहेदिल से स्वागत करेंगे। मुझे खुशी है कि संपादकीय समिति ने वर्ष 2012 के अंत में प्रकाशित होने वाले विशेषांक के रूप में इतने महत्वपूर्ण विषय को चुना।

इस अंक में बासेल-III पर ध्यान केंद्रित करने के साथ-साथ बीआईएस के इतिहास, बासेल मानदंडों के निर्माण में उसकी भूमिका तथा बासेल-I और बासेल-II पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है ताकि हमारे पाठकों को बैंकों के सामने मौजूद जोखिमों और उनका सामना करने के लिए समय-समय पर उठाए गए विभिन्न उपायों की कालक्रमानुसार जानकारी - विभिन्न चरणों में किए गए सुधारों एवं उनमें मौजूद खामियों सहित - मिल सके। बीआईएस के इतिहास की व्यापक जानकारी दी गई है - कुमार परिमलेन्दु सिन्हा के लेख *'बीआईएस का इतिहास और बासेल विनियमन'* में। आशा है कि आप इसे सूचनाप्रद पाएंगे।

सुदृढ़ बैंकिंग के लिए ज़रूरी था कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्पष्ट तौर पर कोई पूंजी पर्याप्तता मानदंड बनाया जाए। विभिन्न देशों के बीच बैंकिंग पर्यवेक्षण में समन्वय लाने के लिए बैंकिंग पर्यवेक्षकों के जी-10 समूह ने दिसंबर 1974 में बैंकिंग विनियमन और पर्यवेक्षी प्रथाओं पर एक स्थायी समिति का गठन किया, जिसे बैंकिंग पर्यवेक्षण पर गठित बासेल समिति (बीसीबीएस) के रूप में जाना जाता है। इस

समिति ने एक परामर्शी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए 1988 में बासेल पूंजी समझौते को अंतिम रूप दिया, जिसे बासेल-I के रूप में जाना जाता है। इसके तहत कुल आस्तियों के लिए पूंजी रखने की बजाए सापेक्ष्य जोखिम की स्थूल श्रेणियों के अनुसार जोखिम-भारित आस्तियों के लिए पूंजी के प्रावधान की परिकल्पना की गई। कुल पूंजी का कम-से-कम 50 प्रतिशत कोर पूंजी अथवा टियर-I पूंजी के रूप में रखा जाना था, जिसमें इक्विटी पूंजी और करोत्तर प्रतिधारित अर्जन से बनाया गया रिज़र्व शामिल है। पूंजी का दूसरा हिस्सा अनुपूरक पूंजी अथवा टियर-II पूंजी के रूप में रखा जाना था। *डॉ. रमाकांत शर्मा* और *श्री विनय बंसल* ने अपने-अपने लेख में अन्य बातों के साथ-साथ बासेल-I की भी संक्षिप्त जानकारी दी है।

बासेल-I में मुख्य रूप से ऋण जोखिम पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जो अधिकांश बैंकों के जोखिम का मुख्य स्रोत था। विनियमन को दरकिनार कर लाभ कमाने के लिए प्रतिभूतीकरण जैसे कार्यकलाप बढ़ने लगे, अतः बाद में बाज़ार जोखिम को भी शामिल किया गया, जिसके तहत बैंकों के ट्रेडिंग कार्यकलापों से उत्पन्न बाज़ार जोखिम एक्सपोजर के लिए भी पूंजी की अपेक्षा की गई। बावजूद इनके वित्तीय लेनदेनों में जटिलता बढ़ती गई, विशेषकर बड़े और जटिल बैंकिंग संगठनों के मामले में, और बासेल समिति को स्वयं ऐसा महसूस होने लगा कि वित्तीय बाज़ारों के नवोन्मेषों को देखते हुए जोखिम प्रबंधन के हथियार के रूप में बासेल-I की सुसंगतता अब समाप्त हो गई है। अतः बासेल समिति ने जून 2004 में बासेल-II की संकल्पना की, ताकि 1988 के पूंजी समझौते को 2007 के अंत तक प्रतिस्थापित किया जा सके। इसमें पूंजी पर्याप्तता (स्तंभ-I) के साथ-साथ पर्यवेक्षी प्रक्रिया (स्तंभ-II) और बाज़ार अनुशासन (स्तंभ-III) को भी शामिल किया गया। पूंजी पर्याप्तता के मामले में भी बासेल-I की तुलना में बासेल-II काफी आगे है और इसमें विभिन्न प्रकार के ऋण जोखिम की माप के लिए विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण प्रस्तावित हैं, यथा मानकीकृत दृष्टिकोण और आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण। इसके अलावा, इसमें परिचालन जोखिम को भी शामिल किया गया है और उसे मापने के लिए तीन दृष्टिकोण प्रस्तावित हैं, यथा मूल संकेतक दृष्टिकोण, मानकीकृत दृष्टिकोण और उन्नत मापन दृष्टिकोण। बासेल-II के तहत विभिन्न जोखिमों की माप में रेटिंग एजेंसियों की भी निर्णायक भूमिका होगी। *डॉ. रमाकांत शर्मा* के अलावा *श्री विजय प्रकाश श्रीवास्तव* और *श्री प्रदीप कुमार* ने बासेल-II के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

बासेल-II मानदंडों के बावजूद वर्ष 2008 में समूचे विश्व को अत्यंत संश्लिष्ट वित्तीय परिचालनों के कारण अभूतपूर्व वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा तथा अनेक बड़ी-बड़ी वित्तीय संस्थाएं धराशायी हो गईं। अतः बासेल समिति ने अपने मानदंडों की पुनरीक्षा की और उसने दिसंबर 2010 में बासेल-III नामक नए मानदंड जारी किए, जिसके अंतर्गत अधिक गुणवत्तापूर्ण पूंजी का निर्धारण किया गया है। दोनों ही मानदंडों के तहत कुल न्यूनतम पूंजी 8 प्रतिशत अपेक्षित है तथापि बासेल-III के तहत न्यूनतम टियर-I पूंजी 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दी गई है और इसके अलावा 2.5 प्रतिशत के पूंजी संरक्षण बफर की भी अपेक्षा की गई है। भारतीय बैंकों को और अधिक आघात-सह बनाने के लिए रिज़र्व बैंक ने न सिर्फ न्यूनतम टियर-I पूंजी और कुल न्यूनतम पूंजी संबंधी अपेक्षा को 1 प्रतिशत बढ़ाकर क्रमशः 7 प्रतिशत और 9 प्रतिशत कर दिया है, अपितु बासेल-III मानदंडों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहमत तारीख से 9 महीने पहले 31 मार्च 2018 तक पूरी तरह से लागू कर दिए जाने का भी निर्णय लिया गया है।

बासेल-III मानदंडों के बारे में माननीय गवर्नर डॉ. दुव्वुरी सुब्बाराव के विचारों से पाठकों को रू-ब-रू कराया गया है - 04 सितंबर 2012 को मुंबई में आयोजित वार्षिक फिक्की-आईबीए बैंकिंग सम्मेलन में उनके उद्घाटन भाषण के हिंदी अनुवाद के माध्यम से। अनुवाद को सहज, सरल और सटीक बनाने का पूरा प्रयास किया गया है ताकि हिंदीभाषी पाठकों तक माननीय गवर्नर साहब की बात पहुंच सके। आशा है पत्रिका के पाठकों को बासेल-III के बारे में उनके सभी प्रश्नों के उत्तर इसमें मिल जाएंगे। बासेल-II और बासेल-III की परस्पर तुलना डॉ. रमाकांत शर्मा के अलावा श्री विजय प्रकाश श्रीवास्तव और श्री संदीप गुप्ता ने अपने-अपने लेख में की है।

वर्ष 2008 के वित्तीय संकट में बहुत सी आस्तियों की कीमतों में अनुमान से भी अधिक गिरावट आई थी, जिसे ध्यान में रखते हुए बासेल-III मानदंडों में कुल आस्तियों के 3 प्रतिशत के लीवरेज अनुपात की भी अपेक्षा की गई है। इसमें और सुधार करते हुए रिज़र्व बैंक ने भारतीय बैंकों के लिए इसे 4.5 प्रतिशत कर दिया है। इसकी चर्चा कई लेखों में तथा विशेष तौर पर *श्री विजय प्रकाश श्रीवास्तव*, *श्री एन. चंद्रशेखरन* और *श्री आर. एस. तिवारी* के लेख में की गई है। इसके अलावा, 0 प्रतिशत से 2.5 प्रतिशत के दायरे में प्रतिचक्रीय पूंजी बफर रखने का भी प्रावधान है, जिसकी उपयोगिता तेजी के समय अत्यधिक कर्ज वृद्धि के दौरान होगी। साथ ही, चलनिधि जोखिम

के प्रबंधन के लिए बासेल-III में चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) और निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) लागू करके चलनिधि मानकों को बढ़ा दिया गया है। इनका विशद विवेचन *श्री सुबह सिंह यादव* ने अपने लेख में किया है।

बासेल-III मानदंडों के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि इनका बैंकों की ऋण विस्तार योजनाओं और उनकी लाभप्रदता एवं सुदृढ़ता पर क्या प्रभाव पड़ेगा और इन मानदंडों को पूरा करने के लिए कितनी पूंजी की ज़रूरत होगी और वह पूंजी आएगी कहां से। इन मुद्दों पर अपनी विस्तृत राय दी है *श्री सुशील कृष्ण गोरे* और *श्री सुबह सिंह यादव* ने - अपने-अपने लेख में। जो पाठक संक्षेप में बासेल के हर पहलू की जानकारी और उनमें प्रयुक्त शब्दावली के बारे में जानने के इच्छुक हैं, उनकी ज़रूरतें श्री आर. एस. तिवारी के लेख *'बासेल-III : एक विहंगावलोकन'* से पूरी हो जाएंगी। विश्व भर के बैंकों पर बासेल-III के प्रभाव की चर्चा की है - *श्री एन. चंद्रशेखरन* ने अपने लेख *'बासेल-III : पारगमन और निहितार्थ'* में तथा दूसरी ओर भारतीय बैंकों पर उसके प्रभाव पर *श्री आर. एस. रावत* और *श्री देवराज* ने अपने-अपने लेख में प्रकाश डाला है। इस पत्रिका को पूर्णता प्रदान करने के लिए बैंक-विशेष के संदर्भ में बासेल दिशा-निर्देशों के कार्यान्वयन पर डॉ. संजीव प्रचंडिया का एक लेख शामिल किया गया है, जिसमें उन्होंने भारतीय स्टेट बैंक के संदर्भ में बासेल मानदंडों की चर्चा की है।

साथ ही, पत्रिका की कार्यकारी संपादक श्रीमती सावित्री सिंह ने 'इतिहास के पन्नों में' आपका परिचय कराया है - स्टेट बैंक समूह के एक मज़बूत स्तंभ 'स्टेट बैंक ऑफ मैसूर' से तथा देश-दुनिया की नवीनतम आर्थिक-वित्तीय गतिविधियों को संक्षेप में उजागर किया है - पत्रिका की संपादकीय समिति के सदस्य-सचिव श्री के. सी. मालपानी ने अपने लेख 'घूमता आईना' में।

अनुचिंतन

भारत न सिर्फ एक विकासशील देश है, अपितु हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएं विकासशील भाषाएं भी हैं। भारतीय भाषाओं में सामर्थ्य की कमी कतई नहीं है, पर उन्हें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाने के लिए अभी तक जो भी सरकारी और गैर-सरकारी प्रयास किए गए हैं, वे नाकाफी हैं। मंजिल अभी भी काफी दूर है। ऐसे में, आप मानें या न मानें, बासेल जैसे दुरूह विषय को हिंदी में समझाना अपने आप में एक बड़ी चुनौती है। फिर भी 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' के आठ हजार पाठकों के लाभ के लिए हमने ऐसे दुरूह विषय को आम आदमी को समझ में आने लायक हिंदी में समझाने का प्रयास किया है।

इसके लिए हमने न सिर्फ लेखकों से सरल और सहज हिंदी में लिखने का अनुरोध किया, अपितु संपादन स्तर पर भी कई ऐसे उपाय किए गए ताकि पत्रिका की भाषा में संप्रेषणीयता आ सके। दुरूह विषयों में संप्रेषणीयता लाने के लिए तकनीकी शब्दावली का मानकीकरण बहुत ज़रूरी है। हमने इस बात का भरसक प्रयास किया है कि सभी लेखों में विभिन्न आधुनिक संकल्पनाओं के लिए एक जैसी शब्दावली का प्रयोग किया जाए। अधिकांश संकल्पनाएं हिंदीभाषी पाठकों के लिए नई हैं, अतः विशेष रूप से इस अंक में कठिन शब्दों का अंग्रेजी पाठ भी दिया गया है।

कुल मिलाकर संक्षेप में मैं यही कहना चाहूंगा कि संपादक मंडल ने विषय और भाषा दोनों ही दृष्टियों से एक हितकर और उपयोगी अंक पाठकों को देने का पूरा प्रयास किया है - *'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।।'*।

पिछले अंक के बारे में पाठकों ने खुलकर अपनी राय दी और उससे हमारा उत्साह बढ़ा। हम ऐसे सभी उत्साहवर्धक पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। पत्रिका के पाठकों से विशेष अनुरोध है कि वे इस अंक के प्रति भी अपनी अनुक्रिया और बहुमूल्य सुझाव ramakantgupta@rbi.org.in अथवा savitrisingh@rbi.org.in नामक ई-मेल पतों पर अथवा डाक से अवश्य प्रेषित करें, ताकि हम इस पत्रिका को उनकी ज़रूरतों के अधिक अनुकूल बना सकें।

सादर

(डॉ. रमाकांत गुप्ता)

अनुचिंतन

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का जुलाई-सितंबर 12 अंक मुझे आज प्राप्त हुआ। सदैव की भांति हम बैंकर की आत्मा अंक का अध्ययन कर प्रसन्नचित्त हो गयी। जैसे तपन के मौसम में ठण्डी फुहारें शरीर को भिगो गयी हों।

अंक में सिक्कों की जरूरत, उद्यमिता, साक्षात्कार, ग्राहक सेवा, एनपीए प्रबंधन, बैंकिंग सेवाएं, स्टैगफ्लेशन, फिलिप्स वक्र विश्लेषण, एक से एक बेजोड़ लेख हैं जो स्वयं में बैंकिंग जगत की धुरी हैं।

सोने में सुहागा 'घूमता आईना' आज के बैंकिंग की अद्यतन जानकारी। भई, कुबेर के खजाने से कम नहीं।

अन्ततः इतिहास के पन्नों से 'सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया' देश का पहला स्वदेशी बैंक, जिसने देश के वित्तीय जगत में अपने शताधिक वर्षों की सेवा की, के अप्रतिम व गौरवपूर्ण इतिहास को प्रकाशित कर दिल गार्डन गार्डन कर दिया।

मैं अपनी तरफ से पत्रिका के संपादक मंडल को नमन करते हुए साधुवाद देता हूँ तथा पत्रिका इसी तरह अपनी अस्मिता को चिरयुवा बनाये रखे, यही अभिलाषा तथा बहुत-बहुत शुभकामनाएं!

• डॉ. एम. आर. लारोकर
वरिष्ठ प्रबंधक
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
सक्करसाथ शाखा, अमरावती

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का आकर्षक मुखपृष्ठ वाला जुलाई -सितंबर 12 का अंक पाकर मन प्रसन्न हो गया। संपादकीय अत्यंत पसंद आया। लेख 'सिक्कों की जरूरत, समस्या व समाधान' में सिक्कों के इतिहास से लेकर अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्यों का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त हुआ। 'इतिहास के पन्नों से' आलेख तो अत्यंत महत्वपूर्ण ही है। 'फिलिप्स वक्र विश्लेषण' को पढ़कर बेरोजगारी आदि विषयों पर जानकारी मिली। के. सी. मालपानी जी द्वारा प्रस्तुत 'घूमता आईना' लेख को पढ़कर नये विचार सामने आए जिसमें देश से जुड़ी महत्वपूर्ण बातों का समावेश किया गया है। 'मोबाइल बैंकिंग' जैसी सुलभ तकनीकों को जानकर अत्यंत हर्ष हुआ। इस पत्रिका को तैयार करने में लगा आपका परिश्रम तथा समय प्रशंसनीय है। हमारी कामना है कि यह पत्रिका ऐसी ही उपयोगी बनी रहे। संपादकीय में दी गई हिंदी भाषा पर जानकारी पढ़कर बहुत अच्छा लगा व इसके महत्व का भी ज्ञान प्राप्त हुआ।

अगले अंक की प्रतीक्षा में,

• महेश चंद्र पंत
ग्राम-पुलहिण्डोला
जिला-चम्पावत (उत्तराखण्ड)

'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' (बैंकिंग पर व्यावसायिक जर्नल) का जुलाई-सितंबर 2012 का अंक प्राप्त हुआ। बैंकिंग के सम्बन्ध में यह एक उत्कृष्ट पत्रिका है। मैं तो अभी दो महीने से इस पत्रिका को प्राप्त कर रहा हूँ। परन्तु इस पत्रिका को पढ़ने के बाद मुझे यह विश्वास हुआ है कि मेरे लिए यह काफी ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

'बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन' पत्रिका का मुखपृष्ठ बेहद आकर्षक लगा मुझे। पत्रिका में भाषा की अशुद्धियाँ नहीं हैं, यह एक खास बात है।

इस पत्रिका का 'इतिहास के पन्नों से' नामक आलेख और विजय प्रकाश श्रीवास्तव का 'चयन प्रक्रिया के रूप में साक्षात्कार - विविध पहलू' आलेख मुझे बेजोड़ लगा। इसके साथ ही के. सी. मालपानी का 'घूमता आईना' लेख भी रुचिकर लगा। यह पत्रिका हमें कई तरह की जानकारियाँ देती है जो हम जैसे लोगों के लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इस पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को धन्यवाद तथा दीपावली की हार्दिक शुभ-कामनाओं के साथ मुझे विश्वास है कि भविष्य में मुझे अपनों से जोड़े रखेंगे।

धन्यवाद!

• आलोक कुमार नायक
ग्रा. जगरन्नाथपुर
पो. माझानरायण
जि. - देवरिया, उ. प्र.

इतिहास के पन्नों से

'उज्ज्वल भविष्य के लिए कार्यरत'

स्टेट बैंक ऑफ मैसूर

भारतीय बैंकिंग जगत में इस समय अपनी सफलता का परचम लहरा रहे और दिनोंदिन नए कीर्तिमान हासिल कर रहे भारतीय बैंकों के इतिहास को खंगालने का जो सिलसिला हमने आज से दो वर्ष पूर्व आरंभ किया था उसने हमें कई रोचक जानकारियों से रू-ब-रू करवाया है। वर्ष 2008 की महामंदी को सफलतापूर्वक झेल चुके ये सभी बैंक अपने बीते दिनों में भी कैसे-कैसे कठिन दौर से गुजरे हैं इसका अनुभव भी हमने किया। बैंकों के इतिहास की इस यात्रा में हमारी कोशिश यह रही है कि हम अपने पाठकों को बैंकों की स्थापना के कालक्रमानुसार जानकारी प्रदान करें। अपने इसी प्रयास को आगे बढ़ाते हुए इस अंक में आइए आपको ले चलते हैं – स्टेट बैंक ऑफ मैसूर के ऐतिहासिक सफर पर...

मैं हूं कर्नाटक की प्रबुद्ध सरजमीं पर कार्यरत स्टेट बैंक समूह का एक मजबूत स्तंभ 'स्टेट बैंक ऑफ मैसूर'। कर्नाटक राज्य के प्रगतिशील विचारधारा वाले व्यक्तियों के प्रयासों का नतीजा हूं मैं, जो अपनी स्थापना से लेकर आज तक समाज की आर्थिक प्रोन्नति के सपने को साकार करने में जुटा हुआ है। आइए मैं आपको ले चलता हूं अपने आज तक के सफर पर।

मेरा जन्म आज से ठीक सौ सालों पहले तत्कालीन मैसूर रियासत के महाराजा श्री कृष्णराज वडेयर चतुर्थ की पहल पर हुआ। उन्होंने अपनी रियासत की आर्थिक समृद्धि के मद्देनजर एक बैंकिंग इकाई की स्थापना का दूरगामी स्वप्न देखा और उसे साकार करने के लिए एक बैंकिंग समिति का गठन किया जिसके नेतृत्व का भार सौंपा भारतरत्न सर एम. विश्वेश्वरय्या जी को। सर विश्वेश्वरय्या जी से आप सभी भलीभांति परिचित होंगे ही लेकिन मैं अपने आपको रोक नहीं पा रहा हूं उनके बारे में कुछ और रोचक बातें आपके साथ शेयर करने से। 15 सितंबर 1861 को जन्मे विश्वेश्वरय्या जी ने आंखें तो खोली थीं वैद्य पिता के सान्निध्य में। लेकिन बचपन की आर्थिक तंगी को झेलते हुए बड़े होने के बाद वे जुड़ गए इंजीनियरिंग क्षेत्र से और पानी आपूर्ति की समस्या के समाधान के लिए निर्माण कर डाला कई बड़े और मजबूत बांधों का जिसमें तत्कालीन भारत के सबसे बड़े बांध 'कृष्णराज सागर' का समावेश है। उनके कौशल व योग्यता को देखते हुए मैसूर के तत्कालीन महाराजा ने उन्हें मैसूर रियासत के दीवान (प्रधानमंत्री) के पद से नवाजा और रियासत की कई महत्वपूर्ण योजनाओं की जिम्मेदारी भी उनके मजबूत कंधों पर डाली गई।

सर विश्वेश्वरय्या के नेतृत्व में गठित बैंकिंग समिति की सिफारिशों से ही मेरा बीजांकुर हुआ और 19 मई 1913 को 20 लाख रुपए की प्राधिकृत पूंजी के साथ मेरी स्थापना की गई। अंततः 2 अक्तूबर 1913 को 'दि बैंक ऑफ मैसूर लिमिटेड' के रूप में मैंने कार्य करना आरंभ किया। अपनी स्थापना के 40 वर्षों का सफर तय करने के बाद मेरी सेवाओं को देखते हुए मुझे भारतीय रिज़र्व बैंक के एजेंट के रूप में कार्य

महाराजा श्री कृष्णराज

करने का गौरव हासिल हुआ। 1953 में मैंने रिज़र्व बैंक की ओर से सरकारी कारोबार और खजाना परिचालन की जिम्मेदारी संभाल ली।

इसके बाद 1959 का वर्ष मेरे सफर में एक उल्लेखनीय मोड़ लेकर आया। 10 सितंबर 1959 का वह ऐतिहासिक दिन मैं कभी नहीं भूल सकता जिस दिन मुझे भारतीय स्टेट बैंक (समनुषंगी बैंक) अधिनियम, 1959 के तहत 'स्टेट बैंक ऑफ मैसूर' के रूप में नई पहचान दी गई। भारतीय स्टेट बैंक समूह के पांच समनुषंगी बैंकों में से एक बैंक के रूप में मुझे शामिल किया गया। तब से मेरी 92.33% शेयरधारिता भारतीय स्टेट बैंक के पास है।

अपनी स्थापना के समय से लेकर आज तक मैं अपने क्षेत्र की आर्थिक प्रगति से जुड़ी योजनाओं को आगे बढ़ाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहा हूं। कॉफी उत्पादकों और कॉफी निर्यातकों के वित्तपोषण हेतु मैंने कई सार्थक योजनाओं को अमली जामा पहनाया है। इसके अलावा समाज कल्याण की कई सरकारी योजनाओं, जैसे कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना, डीआरआई योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और शहरी व्यष्टि उद्यम योजना, के सफल कार्यान्वयन में भी मैं अपना सक्रिय योगदान करता आ रहा हूं।

मैंने मैसूर रियासत जैसे छोटे स्थान से अपनी परिचालन यात्रा आरंभ की थी और आज मेरी शाखाएं कर्नाटक के अलावा केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, दिल्ली एवं पश्चिम बंगाल तक फैल चुकी हैं। आज की तारीख में बेंगलूर स्थित अपने प्रधान कार्यालय की देखरेख में पूरे देश में फैली 737 शाखाओं एवं 22 विस्तारित काउंटरों के माध्यम से मैं अपने ग्राहकों को संतोषजनक सेवा प्रदान करने की कोशिश में लगा हुआ हूं। मेरे परिचालन का मुख्य क्षेत्र मेरा गृहराज्य कर्नाटक है जहां मेरी 598 शाखाएं कार्यरत हैं।

अपनी प्राधिकृत पूंजी में इजाफा करते हुए वर्ष 1944 में मैंने उसे 1.00 करोड़ रुपए तक पहुंचाने में सफलता हासिल की। फिर 1969 का वह साल भी आया जब मुझे मैसूर, मंड्या और तुमकूर जिलों का अग्रणी बैंक होने का अवसर मिला। मेरी प्राधिकृत पूंजी में शनैः शनैः बढ़ोतरी होती गई और इसने 1985 में 10.00 करोड़ रुपये से लेकर 1987 में 50.00 करोड़ रुपए और अंततः 2008 में 500 करोड़ रुपए के आंकड़े को छू लिया है।

एक सफल अभिभावक के रूप में मैं भी जब अपने द्वारा प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 'कावेरी कल्पतरु ग्रामीण बैंक' की सफलता की कहानियां सुनता हूं तो हर्षातिरेक से भर जाता हूं। यह बैंक अपनी 230 कंप्यूटरीकृत शाखाओं की सहायता से कर्नाटक राज्य के मैसूर, हासन, चामराजनगर, बेंगलूर शहरी व ग्रामीण इलाके तथा तुमकूर जिलों को बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध करा रहा है।

जहां तक मेरे अपने कार्यक्षेत्र की बात है तो मैं आपको बताना चाहूंगा कि वर्ष 1960 से भारतीय स्टेट बैंक परिवार के एक सदस्य की हैसियत से मैंने कृषि और लघु उद्यमों को वित्तीय सहायता पहुंचाने के अपने प्रयास जारी रखे हैं। अपनी एजेंसी व्यवस्था के माध्यम से मैं यह सुनिश्चित करता हूं कि अपने ग्राहकों को पूरे विश्व में बैंकिंग सेवा उपलब्ध करा सकूं। अपने गृह राज्य कर्नाटक को केंद्रीय और राज्य स्तरीय दोनों प्रकार की बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराने में मुझे गर्व की अनुभूति होती है। राज्य सरकार द्वारा 1992 के दौरान चलाई गई 'आश्रय', 'विश्व' एवं 'अक्षय' नामक समाज कल्याणकारी योजनाओं के सफल कार्यान्वयन में मैंने अपना पूरा योगदान प्रदान किया है।

आज के समय की सबसे अहम विशेषता तकनीकी दक्षता हासिल करने की दिशा में मैंने काफी पहले से प्रयास आरंभ कर दिए थे। मैं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय संदेशों का आदान-प्रदान करने वाली सेवा 'स्विफ्ट' से जुड़ा हुआ हूं और कोशिश करता हूं

कि अपने ग्राहकों के अंतरराष्ट्रीय वित्तीय लेन-देनों को, सहज और सुचारु बना सकूं। मेरी सभी शाखाएं कंप्यूटरीकृत तो हैं ही, हाल ही में मैंने आरटीजीएस प्रणाली को भी अपना लिया है ताकि भारतीय बैंकों के साथ निधियों के अंतर-बैंक लेन-देन में आसानी हो। मैं आपको बताना चाहूंगा कि 2005 से ही मेरी सभी शाखाएं पूरी तरह से कंप्यूटरीकृत और सीबीएस सुविधा से लैस हो चुकी हैं।

तकनीकी साज-सज्जा के बल पर ही मैं अपने ग्राहकों को एटीएम व मोबाइल बैंकिंग सेवाएं, आरटीजीएस व एनईएफटी निधि अंतरण सुविधाएं तथा इंटरनेट व कार्ड बैंकिंग जैसी अत्याधुनिक बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने में सफल रहा हूं। आज मैं बैंकिंग के अलावा बीमा, पूंजी बाजार व अन्य सहायक गतिविधियों में भी दखल रखता हूं। 'बिजनेस प्रोसेस रीइंजीनियरिंग' के तहत मैंने 'ग्राहक मित्र', 'चेक ड्राप बाक्स सुविधा', 'करेंसी प्रबंधन कोष', 'खुदरा आस्ति केंद्रीय संसाधन केंद्र', तथा 'दबावग्रस्त आस्ति प्रबंधन केंद्र' जैसी गतिविधियां आरंभ की हैं जिससे मुझे ग्राहकों को सर्वोत्तम सेवा प्रदान करने में तो सफलता हासिल हुई है लेकिन उसके साथ-साथ मेरा अपना कार्यनिष्पादन भी बेहतर हुआ है।

संसार में ऐसा कौन होगा जिसे अपनी प्रशंसा अच्छी न लगती हो। जब-जब मेरी सेवाओं की सराहना की जाती है तो मेरा सीना गर्व से फूल जाता है। ऐसी कुछेक उपलब्धियां जिन्हें आपके साथ बांटना चाहूंगा, वे हैं - वर्ष 2010-11 के दौरान सूक्ष्म और लघु उद्यम वित्तीयन के लिए मिला विशेष पुरस्कार, नाबार्ड द्वारा वर्ष 2010-11 में 'स्वयं-सहायता समूह संपर्क कार्यक्रम' के अंतर्गत कर्नाटक के बैंकों में से मुझे दिया गया 'उत्कृष्ट समग्र निष्पादन पुरस्कार'। उक्त पुरस्कार तथा मेरे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को भी मिले इसी पुरस्कार ने मेरे प्रयासों पर स्वीकार्यता व सफलता की मुहर लगाने का काम किया है।

आइए, मैं आपको अपनी मौजूदा व्यवसायगत परिस्थिति से परिचित करा दूं। मार्च 2012 को समाप्त वित्तीय वर्ष में मेरी निवल जमा 49,663 करोड़ रुपए और कुल अग्रिम 40,653 करोड़ रुपए तक पहुंच गया है। मैंने इस अवधि के दौरान 1,059.61 करोड़ रुपए का परिचालनगत लाभ और 369.15 करोड़ रुपए का शुद्ध लाभ अर्जित किया है। अपनी 745 शाखाओं और 10,200 कर्मचारियों की मजबूत ताकत के बल पर मैं सफलता की नित नई मंजिलों को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ रहा हूं। वो कहते हैं ना -

"परिंदों को मंजिल मिलेगी यकीनन,
ये फैले हुए उनके पर बोलते हैं,
वो लोग रहते हैं खामोश अक्सर,
जमाने में जिनके हुनर बोलते हैं।।"

शेष फिर..

प्रस्तुतीकरण - **सावित्री सिंह**
सहायक महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

❍❍❍

स्टेट बैंक ऑफ मैसूर
State Bank of Mysore
Working for a better tomorrow
An Associate of State Bank of India

बैंक का मिशन

अखिल भारत स्वरूपीय कर्नाटक का प्रमुख वाणिज्यिक बैंक, कर्मठ कर्मचारियों से भरपूर, निरंतर उच्चतर और वैयक्तिक ग्राहक सेवा प्रदान करने तथा शेयरधारियों को निरंतर अत्यधिक लाभ पहुंचाने हेतु प्रतिबद्ध, सामाजिक अभिवृद्धि में अपना योगदान देनेवाली एक जिम्मेदार संस्था है।

रिज़र्व बैंक ने वित्त वर्ष की अवधि के अनुसार बासेल–III पूंजी विनियमों के कार्यान्वयन की तारीख में बदलाव किया

– अब 1 जनवरी 2013 की जगह 1 अप्रैल 2013 से होंगे लागू –

रिज़र्व बैंक ने बासेल–III के कार्यान्वयन के आरंभ होने की तारीख को बढ़ाकर 1 जनवरी 2013 से 1 अप्रैल 2013 कर दिया है। भारत अन्य देशों, विशेषकर बासेल समिति में शामिल प्रमुख सदस्य देशों, में बासेल–III के कार्यान्वयन की दिशा में होने वाली प्रगति पर नज़र रखेगा।

पृष्ठभूमि

रिज़र्व बैंक ने 2 मई 2012 को बासेल–III पूंजी विनियमावली के कार्यान्वयन संबंधी दिशा–निर्देश जारी किए थे। इन्हें 1 जनवरी 2013 से चरणबद्ध रूप से कार्यान्वित किया जाना था और 31 मार्च 2018 तक इन्हें पूरी तरह से लागू कर दिया जाना था।

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) द्वारा स्वीकृत और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तयशुदा कार्यान्वयन कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए बासेल–III के कार्यान्वयन के आरंभ होने की तारीख 1 जनवरी 2013 निर्धारित की गई थी, हालांकि भारत का वित्त वर्ष 1 अप्रैल से आरंभ होता है।

बासेल समिति की 14 दिसंबर 2012 की प्रेस प्रकाशनी के अनुसार ग्यारह सदस्य देशों ने बासेल–III की अंतिम विनियमावली प्रकाशित की है जो 1 जनवरी 2013 से लागू होगी। इनमें आस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, हांगकांग एसएआर, भारत, जापान, मेक्सिको, सऊदी अरब, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका और स्विट्ज़रलैंड शामिल हैं। अन्य सात सदस्यों, जिनमें यूरोपीय संघ और युनाइटेड स्टेट्स शामिल हैं, ने विनियमावली का मसौदा जारी किया है और उन्होंने सूचित किया है कि वे शीघ्रातिशीघ्र इसका अंतिम रूप जारी करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं।

इसके अलावा बासेल समिति ने यह भी पाया है कि ''वैश्विक स्तर पर 2013 से 2019 तक की अवधि में निर्धारित कार्यक्रम में कई उल्लेखनीय पड़ाव हैं, जिनके अंतर्गत नई पूंजी अपेक्षाओं को चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाएगा। संभव है कि शेष देश 2013 के दौरान अपनी घरेलू विनियमावली को अंतिम रूप दे देंगे और वे मूल वैश्विक करार के अनुसार निर्धारित संक्रमणकाल की समस्त समय–सीमा का अनुपालन करेंगे, चाहे वे आरंभिक तारीख के लक्ष्य को हासिल न कर सके हों। अतः बासेल समिति के अधिकार–क्षेत्र में आने वाले लगभग सभी देश पूर्व निर्धारित समय–सीमा के अनुसार 2013 के अंत तक बासेल–III को लागू कर देंगे। यह वैश्विक बैंकिंग प्रणाली की आघात–सहनीयता को सुदृढ़ बनाने की ओर एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहल है।'' बासेल समिति के सभी सदस्यों ने वैश्विक स्तर पर सहमत सुधार योजनाओं को लागू करने के प्रति अपनी वचनबद्धता जताई है।

(संपादकीय टिप्पणी : उपर्युक्त के आलोक में आगे दिए गए सभी आलेखों में बासेल–III कार्यान्वयन की तारीख को 1 अप्रैल 2013 पढ़ा जाए)

अंतरराष्ट्रीय और भारतीय परिप्रेक्ष्य में बासेल-III : दस प्रश्न जिनका उत्तर हमें जानना चाहिए[1]

डॉ. दुव्वुरी सुब्बाराव

यह मेरे लिए गौरव की बात है कि लगातार चौथे वर्ष आपने मुझे इस वार्षिक फिक्की-आईबीए सम्मेलन का उद्घाटन करने का अवसर प्रदान किया है। चूंकि कॉरपोरेट और बैंकिंग क्षेत्र के प्रमुख लोग इसमें शामिल होते हैं, अतः यह सम्मेलन प्रमुख नीतिगत मुद्दों पर चर्चा करने के एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में उभरकर आया है। इसलिए मैं इस मंच पर अपने विचार व्यक्त करना अति महत्वपूर्ण समझता हूँ। इस अवसर के लिए मैं शुक्रगुज़ार हूँ।

इस महीने के अंत में लीमैन ब्रदर्स के पतन की अविस्मरणीय घटना को घटे चार वर्ष पूरे हो जाएंगे। इस घटना को हमारी पीढ़ी का सबसे बड़ा वित्तीय संकट पैदा करने का कारण माना जाता है। चार वर्ष बीत गए, लेकिन संकट ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा है। केवल भौगोलिक क्षेत्र और मुख्य-मुख्य कारकों में कुछ बदलाव आया है। दुनिया का कोई भी देश इसके चंगुल से अब तक नहीं बच पाया है तथा वैश्विक संवृद्धि और खुशहाली पर इसका बुरा असर अब भी जारी है।

बैंक और बैंकर इस संकट का प्रमुख शिकार बने। इसके परिणामस्वरूप संकटोत्तर नीतिगत सुधारों में बैंकिंग क्षेत्र की सुरक्षा और स्थिरता पर बल दिया जा रहा है। इस सुधार के अधिकांश उपाय अभी प्रक्रियाधीन हैं, परंतु इसके एक अंश को अंतिम रूप दिया जा चुका है तथा वह है बैंकिंग पूंजी के विनियमन संबंधी बासेल-III ढांचा। इसके अंतिम पैकेज को जी-20 ने स्वीकृति दे दी है और इसकी शुरुआत कर दी गई है। भारत में हमने सभी स्टेकहोल्डरों के साथ व्यापक रूप से परामर्श करके मई 2012 में पूंजीगत विनियमन संबंधी बासेल-III दिशानिर्देश जारी किए हैं।

मैं दो वर्ष पहले, यानि कि 2010 की घटना की याद दिलाना चाहता हूँ, जब मैंने इस सम्मेलन में बासेल-III पैकेज के प्रति भारत के दृष्टिकोण पर चर्चा की थी। तब तक बासेल-III को अंतिम रूप दिया जा रहा था। अब हम शीघ्र ही इसके कार्यान्वयन की अवस्था में प्रवेश करने वाले हैं, इसलिए मैंने यह उचित समझा कि इस मुद्दे पर पुनः विचार-विमर्श करूँ और बासेल-III में अंतर्निहित कुछ संकल्पनात्मक एवं कार्यान्वयन संबंधी मुद्दों को संबोधित कर इस सम्मेलन को और सार्थक बनाऊँ।

पहला प्रश्न : माना जाता है कि वास्तव में बासेल-II के जोखिम के प्रति संवेदनशील ढांचे ने संकट को जन्म दिया है। क्या यह विचार सही है?

इस प्रश्न का उत्तर दो-चार शब्दों में नहीं दिया जा सकता। यदि मुझे संक्षेप में उत्तर देना है तो मैं कहूँगा कि यह विचार सही है, किंतु कुछ हद तक ही। इस मुद्दे पर प्रकाश डालना चाहूँगा।

बासेल-I से बासेल-II में क्या खास रूपांतरण हुआ? खास रूपांतरण यह था कि बासेल-I में 'वन-साइज़-फिट-आल' वाला दृष्टिकोण अपनाया गया, जबकि बासेल-II में जोखिम के प्रति संवेदनशील पूंजी विनियमन की अवधारणा शुरू की गई। बासेल-II पर यह इलज़ाम लगाया जाता है कि जोखिम के प्रति इसकी संवेदनशीलता ने ही इसे अंधाधुंध तरीके से प्रतिचक्रीय बना दिया है। अच्छे समय में जब बैंकों का संचालन ठीक-ठाक चल रहा होता है और बाज़ार उनमें पूंजी निवेश करने के लिए तैयार रहता है तो बासेल-II बैंकों पर पूंजी की अतिरिक्त अपेक्षा नहीं थोपता है। इसके विपरीत, दबाव की स्थिति में जब बैंकों को अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होती है और बाज़ार से उन्हें निरंतर

[1] दिनांक 04 सितंबर 2012 को मुंबई में आयोजित वार्षिक फिक्की-आईबीए बैंकिंग सम्मेलन में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. दुव्वुरी सुब्बाराव का उद्घाटन भाषण। अंग्रेज़ी में दिए गए भाषण के मूल पाठ को हिंदी में प्रस्तुत किया है श्री एच. पंढरीनाथ, सहायक प्रबंधक, राजभाषा विभाग, मुंबई ने।

पूंजी मिलने में दिक्कत होती है तब बासेल-II बैंकों को और पूंजी लाने के लिए विवश करता है। जैसा कि हमने संकट के दौरान देखा है प्रमुख अंतरराष्ट्रीय बैंक दबावग्रस्त होकर पूंजी लाने की स्थिति में नहीं रहे जिससे वे डिलीवरेज के दुश्चक्र में फंस गए। इसकी वजह से वैश्विक वित्तीय बाज़ार ठप्प हो गए और दुनिया की कई अर्थव्यवस्थाएं मंदी की चपेट में आ गईं।

बासेल-II पर दूसरा इलज़ाम लगाया गया कि उसने पूंजीगत विनियमन को जोखिम के प्रति और संवेदनशील बना तो दिया है, लेकिन वह बाज़ार के बदलते रुख के अनुरूप विनियामक पूंजी की परिभाषा और संरचना में अपेक्षित परिवर्तन करने से चूक गया। बाज़ार जोखिम मॉडल चूक गए, विशेष रूप से वे कुछ ऐसे जटिल डेरिवेटिव उत्पादों से पैदा होने वाले जोखिमों को शामिल करने से चूक गए जो बाज़ार में बड़े पैमाने पर प्रवेश कर रहे थे। ये मॉडल यह मानकर ट्रेडिंग बही एक्सपोज़रों के लिए पूंजी लाने की कम मांग कर रहे थे कि ट्रेडिंग बही एक्सपोज़रों को आसानी से बेचा जा सकता है और पोजिशनों को शीघ्र निपटाया जा सकता है। इससे बैंक गुमराह होकर गलत रास्ते पर चल पड़े, अर्थात् उन्होंने पूंजी पाने के लिए अपने बैंकिंग बही एक्सपोज़रों को ट्रेडिंग बही में पार्क करना शुरू कर दिया। जैसा कि हम सब जानते हैं इस प्रकार की अधिकतर नुकसानदेह आस्तियों और उनके प्रतिभूतीकृत डेरिवेटिवों, जिन्होंने संकट के बीज बोए थे, को ट्रेडिंग बही में पार्क किया गया था।

इस प्रकार, बासेल-II पर यह दूसरा दोष लगाया गया कि जोखिम के प्रति संवेदनशील रहने के बावजूद उसने ऐसे किसी मॉडलिंग ढांचे को बढ़ावा नहीं दिया है जो जोखिम को सटीकता से माप सकता हो। साथ ही, यह जोखिम को कम करने की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में हानि से बचाने वाली पूंजी की मांग करने से चूक गया।

बासेल-II के खिलाफ तीसरा इलज़ाम है लीवरेज की आशंकाएं। गौरतलब है कि बासेल-II में लीवरेज के नियंत्रण के संबंध में किसी विनियमन का स्पष्ट उल्लेख नहीं था। उसमें यह अवधारणा थी कि जोखिम आधारित पूंजी की अपेक्षाओं से बेशी लीवरेज का जोखिम खुद-ब-खुद मिट जाएगा। यह अवधारणा गलत निकली क्योंकि बैंकों का बेशी लीवरेज ही संकट का प्रमुख कारण बना। इसी तरह बासेल-II में चलनिधि जोखिम का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। चूंकि चलनिधि जोखिम को अनदेखा करने से सॉल्वेन्सी जोखिम पैदा हो सकता है, अतः वास्तव में जो बैंक संकट के दबदबे में आया वह ध्वस्त हो गया।

अंत में बासेल-II पर दोष लगाया गया कि उसने वित्तीय संस्था-विशेष पर ध्यान केंद्रित किया है, जबकि विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाओं के बीच अंतरसंबद्धता से पैदा होने वाले प्रणालीगत जोखिम को उसने नज़रअंदाज़ कर दिया। बाद में हमें यह पता चला कि इस वजह से विभिन्न वित्तीय बाज़ारों में विध्वंसकारी संकट फैल गया।

क्या बासेल-II पर की जाने वाली ये सारी आलोचनाएं सही हैं? जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ कि कुछ हद तक ये आलोचनाएं सही हैं। ज्ञात हो कि बासेल-II को जून 2006 में लागू किया गया और जब अगस्त 2007 में संकट के बादल छाने लगे तब इसे लागू करने का कार्य ज़ोरों से हो रहा था। यह संभव है कि बासेल-II के बाज़ार जोखिम ढांचे की विफलता ने संकट को बढ़ावा दिया होगा, लेकिन बासेल-II की जोखिम संवेदनशीलता ने संकट को जन्म दिया है, ऐसा दावा करना अतिशयोक्ति होगी।

दूसरा प्रश्न : बासेल-II की तुलना में बासेल-III में क्या सुधार किया गया है?

बासेल-II में सामने आई कमियों व खामियों को दूर करने और संकट से मिले अन्य सबकों को बासेल-III में उजागर करने की चेष्टा की गई है। मगर खास बात यह है कि बासेल-II ने बासेल-III को पूरी तरह दरकिनार नहीं किया है; इसके विपरीत, इसमें बासेल-II का निचोड़ है - प्रत्येक बैंक के जोखिम प्रोफाइल और पूंजी अपेक्षाओं के बीच के संबंध का। उस मायने में बासेल-III बासेल-II का खंडन नहीं, अपितु वह उसका उन्नत रूप है।

बासेल-II की तुलना में बासेल-III में मुख्य रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों को जोड़ा गया है: (i) पूंजी के स्तर और गुणवत्ता को बढ़ाना; (ii) चलनिधि के मानकों की शुरुआत; (iii) प्रावधानीकरण के मानदंडों में बदलाव; और (iv) बेहतर एवं अपेक्षाकृत और व्यापक प्रकटीकरण। मैं इनमें से हरेक मद पर संक्षेप में चर्चा करूँगा।

पूंजी की उच्चतर अपेक्षा

सारणी-1 : बासेल-II और बासेल-III के अंतर्गत अपेक्षित पूंजी

		जोखिम भारित आस्तियों के प्रतिशत के रूप में	
		बासेल-II	बासेल-III (1 जनवरी 2019 की स्थिति के अनुसार)
क = (ख+घ)	न्यूनतम कुल पूंजी	8.0	8.0
ख	न्यूनतम टियर-1 पूंजी	4.0	6.0
ग	जिसमें से : न्यनूतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी	2.0[2]	4.5
घ	अधिकतम टियर-2 पूंजी (कुल पूंजी के अंतर्गत)	4.0	2.0
ङ	पूंजी संरक्षण बफर (सीसीबी)	–	2.5
च = ग+ङ	न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी+सीसीबी	2.0	7.0
छ = क+ङ	न्यूनतम कुल पूंजी+सीसीबी	8.0	10.5

[2] बासेल-II में न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी के संबंध में स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं है। आम तौर पर यह माना जाता है कि सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी का प्रमुख भाग अर्थात 50 प्रतिशत हो।

सारणी-1 में दर्शाए गए तुलनात्मक आंकड़ों से यह पता चलता है कि बासेल-III में उच्चतर व बेहतर गुणवत्ता वाली पूंजी की अपेक्षा की गई है। न्यूनतम कुल पूंजी के स्तर में कोई बदलाव नहीं किया गया है, जिसे जोखिम भारित आस्तियों (आरडब्ल्यूए) के 8 प्रतिशत के बराबर बनाए रखा गया है। तथापि, बासेल-III में न्यूनतम पूंजी की अपेक्षा के अलावा, आरडब्ल्यूए के 2.5 प्रतिशत के बराबर के पूंजी संरक्षण बफर को प्रारंभ किया गया है। इससे कुल पूंजी की अपेक्षा 10.5 प्रतिशत पर चली गई, जबकि बासेल-II में 8.0 प्रतिशत की अपेक्षा की जाती है। इस बफर के पीछे यह आशय है कि बैंक न्यूनतम पूंजी की अपेक्षा को पूरा करने के साथ-साथ हानि का वहन करने में भी समर्थ हो सकें, और वे मंदी के दौर में डिलीवरेज किए बिना अपने कारोबार को चलाने में समर्थ बन सकें। यह बफर न्यूनतम विनियामक अपेक्षा का अंग नहीं बनता, किंतु इस बफर के स्तर को ध्यान में रखते हुए शेयरधारकों को दिए जाने वाले लाभांश और स्टाफ सदस्यों को अदा किए जाने वाले बोनस की राशि निर्धारित की जाएगी।

न्यूनतम कुल पूंजी की अपेक्षा के अंतर्गत भी पूंजी की गुणवत्ता की कई शर्तें लगाई गई हैं ताकि वह पूंजी हानि की भरपाई करने में काम आए और करदाताओं पर बेल आउट का बोझ लादने का उपाय सबसे अंतिम उपाय हो।

बासेल-III में पूंजी संरक्षण बफर के अलावा एक और पूंजी बफर की शुरुआत की गई है – जो कि प्रति-चक्रीय पूंजी बफर कहलाता है – जिसका दायरा 0-2.5 प्रतिशत के बीच है। ऋण में अत्यधिक वृद्धि होने की दशा में बैंकों पर इसे लागू किया जा सकता है। साथ ही, प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों पर उच्चतर पूंजी अधिभार लगाने का प्रावधान भी है।

बैंकों द्वारा अत्यधिक लीवरेज बढ़ाने के जोखिम, जैसा कि बासेल-II के अंतर्गत पैदा हुआ था, को रोकने के अंतिम उपाय के तौर पर बासेल-III में जोखिम पूंजी अपेक्षा आधारित एक लीवरेज अनुपात विनिर्दिष्ट किया गया है। बासेल समिति 3 प्रतिशत (33.3 गुना) के न्यूनतम टियर-1 लीवरेज अनुपात की शुरुआत करने पर

विचार कर रही है जो कि 1 जनवरी 2018 को स्तंभ-1 अपेक्षा के रूप में परिणत हो जाएगा।

जैसा कि हमने पहले चर्चा की थी, बाज़ार जोखिम से निपटने की दृष्टि से हानि की भरपाई करने हेतु पर्याप्त मात्रा में पूंजी की मांग रखने से बासेल-II चूक गया। इस स्थिति से निपटने के लिए बासेल-III में बाज़ार जोखिम लिखतों में प्रतिपक्षी क्रेडिट जोखिम ढांचे को मज़बूत किया गया है। इसके अंतर्गत प्रतिपक्षी क्रेडिट चूक जोखिम के संबंध में पूंजी अपेक्षा निर्धारित करने के लिए दबावग्रस्त निविष्टि मानदंडों का प्रयोग शामिल है। इसके अलावा, बैंकों को प्रतिपक्षी क्रेडिट गुणवत्ता में गिरावट के जोखिम से निपटने के लिए ओटीसी डेरिवेटिवों के लिए सीवीए (क्रेडिट मूल्यांकन समायोजन) जोखिम पूंजी प्रभार नामक एक और पूंजी अपेक्षा विनिर्दिष्ट की गई है।

चलनिधि जोखिम को कम करने के लिए बासेल-III में बैंकों के तुलन-पत्रों में संभावित अल्पावधिक चलनिधिजन्य दबाव और दीर्घावधिक संरचनागत चलनिधिजन्य दबाव दोनों को दूर करने पर ज़ोर दिया गया है (सारणी-2)। अल्पावधिक चलनिधिजन्य दबाव का सामने करने के लिए बैंकों को उच्च-स्तरीय भार-रहित चलनिधिगत आस्तियों को पर्याप्त मात्रा में बनाए रखना होगा ताकि वे 30-दिन की अवधि, जैसा कि चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) द्वारा मापा जाता है, में निधीयन से पैदा होने वाले दबाव की स्थिति से निपटने में समर्थ हो सकें। दीर्घावधि में चलनिधिगत अंतरों को कम करने की दृष्टि से बैंकों को अनिवार्य रूप से एक निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) बनाए रखना होगा। एनएसएफआर के अंतर्गत आस्तियों के चलनिधिगत स्वरूप के आधार पर तथा एक वर्ष की अवधि के लिए तुलन-पत्रेतर प्रतिबद्धताओं से पैदा होने वाली संभावित आकस्मिक चलनिधिजन्य मांगों के अनुसार निधीयन के स्थिर स्रोतों की न्यूनतम मात्रा विनिर्दिष्ट की गई है। सार रूप में एनएसएफआर का लक्ष्य निधीयन के स्थिर स्रोतों का लाभ उठाने के लिए बैंकों को प्रोत्साहित करना है।

प्रावधानीकरण के मानदंड

बासेल समिति प्रावधानीकरण के 'प्रत्याशित हानि' पर आधारित ऐसे उपाय को अपनाने के प्रस्ताव का समर्थन कर रही है जिसके माध्यम से वास्तविक हानि की पहचान अपेक्षाकृत अधिक पारदर्शिता के साथ किया जा सके। साथ ही, मौजूदा 'उपगत हानि (incurred loss)' दृष्टिकोण की तुलना में इसमें प्रतिचक्रीयता का स्वरूप कम हो। प्रावधानीकरण संबंधी प्रत्याशित हानि दृष्टिकोण सभी स्टेकहोल्डरों, जिनमें विनियामक और पर्यवेक्षक शामिल हैं, के लिए वित्तीय रिपोर्टिंग को और उपयोगी बना देगा।

प्रकटीकरण की अपेक्षाएं

बैंकों द्वारा किए जाने वाले प्रकटीकरण से बाज़ार के सहभागियों को सोच समझकर कदम उठाने में सहायता मिलती है। हाल ही के संकट से यह भी सबक मिला कि बैंकों द्वारा अपने जोखिम वाले एक्सपोज़रों और विनियामक पूंजी के संबंध में किए गए प्रकटीकरण तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से न तो ठीक थे और न ही पर्याप्त रूप में पारदर्शी। इस स्थिति से निपटने के लिए बासेल-III में सभी संबंधित ब्योरे को प्रकट करने की अपेक्षा की जाती है। जहाँ तक बैंक की विनियामक पूंजी की संरचना का संबंध है विनियामक समायोजन भी इस प्रकटीकरण के अंतर्गत शामिल है।

चलनिधि के मानक

सारणी-2 : चलनिधि के मानक

अनुपात	बासेल-II	बासेल-III
चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) *(1 जनवरी 2015 से लागू किया जाना है)*	-	$\frac{\text{उच्च स्तरीय चलनिधिगत आस्तियां}}{\text{अगले 30 कैलेंडर दिवसों में कुल निवल बहिर्गत राशि}} \geq 100$ प्रतिशत
निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) *(1 जनवरी 2018 से लागू किया जाना है)*	-	$\frac{\text{स्थिर निधीयन की उपलब्ध मात्रा}}{\text{स्थिर निधीयन की अपेक्षित मात्रा}} > 100$ प्रतिशत

तीसरा प्रश्न : बासेल-III का पालन करने के लिए बैंकों को और कितनी पूंजी जुटानी पड़ेगी? पूंजी के आकार को बढ़ाने के लिए क्या-क्या विकल्प मौजूद हैं और इस कार्य में क्या-क्या चुनौतियां पैदा हो सकती हैं?

माना कि भारतीय बैंक बासेल-III की न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं को समग्र रूप से पहले ही पूरा कर चुके हैं, फिर भी कुछ बैंकों ने इसे वैयक्तिक स्तर पर पूरा नहीं किया है। किंतु आज पूंजी पर्याप्तता को हासिल करने का मतलब यह नहीं कि आगे भी यही अनुकूल स्थिति बनी रहेगी। वर्तमान में भारत का बैंक ऋण-जीडीपी अनुपात 55 प्रतिशत है। यदि हम संवृद्धि को बढ़ाना चाहते हैं तो इस अनुपात को बढ़ाना एक आवश्यक पूर्व-शर्त है। इसके अलावा, हमारी अर्थव्यवस्था एक संरचनात्मक कायापलट के दौर से गुज़र रही है, ऐसा होने से औद्योगिक क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ेगी और ऋण-जीडीपी अनुपात में और बढ़ोतरी होगी। तात्पर्य यह है कि भारतीय बैंकों को बासेल-III के न रहने की स्थिति में भी अतिरिक्त पूंजी जुटानी होगी। बासेल-III से बढ़ने वाले निवल अतिरिक्त बोझ का आकलन करते समय इस बात को भी ध्यान में रखना होगा।

भारतीय बैंकों को कितनी अतिरिक्त पूंजी लानी पड़ेगी? यह इस संबंध में किए जाने वाले अनुमानों पर निर्भर करता है और इस बारे में कई प्रकार के आकलन किए जा रहे हैं। रिज़र्व बैंक ने 31 मार्च 2018 तक की अवधि को शामिल करके निम्नलिखित दो संतुलित अनुमानों के आधार पर कतिपय त्वरित आकलन तैयार किए हैं : (i) प्रत्येक बैंक की जोखिम भारित आस्तियों में प्रति वर्ष 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी होगी; तथा (ii) आंतरिक उपचित राशियां जोखिम भारित आस्तियों के 1 प्रतिशत के बराबर होंगी।

रिज़र्व बैंक के अनुमान के अनुसार 5 ट्रिलियन रुपये की अतिरिक्त पूंजी की अपेक्षा का आकलन किया गया है, जिसमें 3.25 ट्रिलियन रुपये की राशि गैर-इक्विटी पूंजी की होगी, वहीं इक्विटी पूंजी का हिस्सा 1.75 ट्रिलियन रुपये का होगा (सारणी-3)।

अतिरिक्त इक्विटी पूंजी की अपेक्षा 1.75 ट्रिलियन रुपये हो जाने के मामले में दो सवाल उठ खड़े होते हैं। पहला, क्या बाज़ार इतनी बड़ी राशि मुहैया करा पाएगा? दूसरा, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पूंजी उपलब्ध कराने के लिए सरकार पर कितना बोझ पड़ेगा और इसके लिए किन-किन विकल्पों को काम में लाया जा सकता है?

अब हम पहले सवाल पर आते हैं, क्या बाज़ार इतनी बड़ी इक्विटी पूंजी मुहैया करा पाएगा। बाज़ार को कितनी राशि मुहैया करानी है यह तो इस बात पर निर्भर करेगा कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को नए सिरे से पूंजी उपलब्ध कराने में सरकार कितना बोझ उठा पाएगी। सारणी-3 के आंकड़ों से पता चलता है कि बाज़ार को 700 बिलियन से 1 ट्रिलियन रुपये के दायरे में राशि उपलब्ध करानी होगी, जो कि सरकार द्वारा उपलब्ध करा सकने वाली राशि पर निर्भर रहेगा। पिछले पांच वर्ष के दौरान बैंकों ने प्राथमिक बाज़ारों के माध्यम से 520 बिलियन रुपये की इक्विटी पूंजी जुटाई है। अगले पांच वर्षों में 700 बिलियन से 1 ट्रिलियन रुपये की राशि बाज़ार से जुटाना कोई असंभव सी बात नहीं लगती। पूरी तरह बासेल-III को लागू करने के लिए पांच वर्ष की अतिरिक्त अवधि रहने के कारण बैंकों के पास अपनी पूंजी जुटाने की कार्य-योजना तैयार करने के लिए पर्याप्त समय है।

अब दूसरा सवाल है सरकार, जिसके पास बैंकिंग प्रणाली की 70 प्रतिशत की हिस्सेदारी है, कितना बोझ उठा पाएगी। यदि सरकार अपनी हिस्सेदारी के मौजूदा स्तर को बनाए रखना चाहती है तो उसे पुनःपूंजीकरण के तौर पर 900 बिलियन रुपये का बोझ उठाना पड़ेगा। यदि वह प्रत्येक बैंक में अपनी हिस्सेदारी को 51 प्रतिशत के न्यूनतम स्तर पर लाने का निर्णय लेती है तो उस पर 700 बिलियन रुपये का बोझ आएगा।

इतनी बड़ी मात्रा में इक्विटी पूंजी मुहैया कराने से राजकोषीय बाधाएं पैदा हो सकती हैं, जिनसे काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। सरकार के लिए एक और लुभावना विकल्प मौजूद है, वह सामान्य इक्विटी उपलब्ध कराने के बजाय पुनःपूंजीकरण बांड जारी कर सकती है। परंतु इससे राजकोषीय पारदर्शिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके बदले, क्या सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अपनी हिस्सेदारी को 51 प्रतिशत से कम करने के लिए तैयार हो जाएगी? यदि सरकार इस विकल्प को चुनती है तो सवाल यह उठता है कि क्या वह अपने बहुलांश मताधिकार को बनाए रखने के लिए कानून में बदलाव करेगी?

सारणी–3 : बासेल–III के अंतर्गत भारतीय बैंकों के लिए अपेक्षित अतिरिक्त[3] सामान्य इक्विटी

(बिलियन रुपये में)

		सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	निजी क्षेत्र के बैंक	कुल
क	बासेल–III के अंतर्गत अपेक्षित अतिरिक्त इक्विटी पूंजी	1400-1500	200-250	1600-1750
ख	बासेल–II के अंतर्गत अपेक्षित अतिरिक्त इक्विटी पूंजी	650-700	20-25	670-725
ग	बासेल–III के अंतर्गत अपेक्षित निवल इक्विटी पूंजी (क–ख)	750-800	180-225	930-1025
घ	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए बासेल–III के अंतर्गत अपेक्षित अतिरिक्त इक्विटी पूंजी (क) में से			
	सरकार का हिस्सा (हिस्सेदारी का मौजूदा ढांचा बने रहने की स्थिति में)	800-910	–	–
	सरकार का हिस्सा (हिस्सेदारी को 51 प्रतिशत तक लाने की स्थिति में)	660-690	–	–
	बाज़ार का हिस्सा (सरकार की हिस्सेदारी का ढांचा मौजूदा स्तर पर बने रहने की स्थिति में)	520-590	–	–

[3] आंतरिक उपचित राशियों के अतिरिक्त

चौथा प्रश्न : क्या बासेल–III से संवृद्धि बाधित होगी?

बासेल–III के बारे में एक और महत्वपूर्ण आलोचना की जाती है कि उससे संवृद्धि बाधित हो जाएगी। हालाँकि संवृद्धि पर इसके प्रभाव को आंकने के लिए कोई सटीक मात्रात्मक आकलन पद्धति हमारे पास नहीं है, फिर भी यह चिंता जताई जा रही है कि बासेल–III के अंतर्गत पूंजी की अपेक्षा ऐसी दशा में बढ़ जाएगी जब अर्थव्यवस्था में ऋण की मांग बढ़ रही हो।

संरचनागत रूप से कायापलट के दौर से गुज़रने वाली अर्थव्यवस्था, जिसमें काफी तेजी से सुधार होता हो, में कई कारणों से ऋण की मांग की गति जीडीपी की तुलना में काफी बढ़ जाएगी। पहला, भारत सेवा क्षेत्र की अपेक्षा विनिर्माण क्षेत्र की ओर प्रवण हो जाएगा तथा जीडीपी की प्रति इकाई की दृष्टि से देखा जाए तो विनिर्माण क्षेत्र की ऋण मात्रा सेवा क्षेत्र की ऋण मात्रा से अधिक रहती है। दूसरा, हमें बुनियादी क्षेत्र में अपने निवेश की मात्रा को कम-से-कम दुगुना करने की ज़रूरत है जिससे ऋण की मांग में काफी बढ़ोतरी होगी। आखिरी बात, वित्तीय समावेशन, जिस पर सरकार और रिज़र्व बैंक बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं, के माध्यम से निम्न आय वर्ग के असंख्य परिवारों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली के अंतर्गत लाया जाएगा। इनमें से अधिकांश परिवारों को ऋण की ज़रूरत है।

इन सबका मतलब यह है कि हम ऐसे समय में बासेल–III के अनुसार बैंकों पर अधिक पूंजी की अपेक्षा थोपने वाले हैं जब ऋण की मांग तेजी से बढ़ रही हो। इस पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इससे ऋण की लागत बढ़ेगी और उससे संवृद्धि बाधित हो जाएगी? या यूँ कहें कि वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए हम किस हद तक संवृद्धि का त्याग करने के लिए तैयार हैं? इस बात को लेकर तनाव का माहौल पैदा हो गया है कि एक ओर अल्पावधिक मज़बूरियों को झेलना है तो दूसरी ओर दीर्घावधिक संवृद्धि की संभावनाओं को किस प्रकार सफल बनाया जाए। बीआईएस के अर्थशास्त्रियों के प्रायोगिक अनुसंधान से यह पता

चला है कि बासेल-III की वजह से अल्पावधि के लिए कुछ अधिक लागत चुकानी पड़ सकती है, लेकिन इससे मध्यावधि से दीर्घावधि में संवृद्धि की संभावनाएं सुरक्षित रहेंगी।

पांचवां प्रश्न : बासेल-III बैंकों की लाभप्रदता को किस प्रकार प्रभावित करेगा? क्या इससे प्रोत्साहन संरचना में बदलाव आएगा?

मैं इसका उत्तर देने की कोशिश करूँगा। जैसा कि हमने देखा कि बासेल-III के अंतर्गत अधिक मात्रा में और बेहतर गुणवत्ता की पूंजी की अपेक्षा की जाती है। यह तो विदित है कि इक्विटी पूंजी की लागत काफी अधिक होती है। हानि की भरपाई के संबंध में गैर-इक्विटी विनियामक पूंजी पर विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं से भी लागत बढ़ जाने की संभावना है।

पिछले तीन वर्षों में भारतीय बैंकिंग प्रणाली की इक्विटी पर औसत प्रतिलाभ 15 प्रतिशत के आस-पास रहा। बासेल-III को लागू किए जाने से अल्पावधि में भारतीय बैंकों की इक्विटी पर प्रतिलाभ कम होने की संभावना है। किंतु एक सुस्थिर और सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली साकार होने से जो लाभ मिलेगा उससे मध्यावधि से दीर्घावधि में इक्विटी के निम्नतर प्रतिलाभ का नकारात्मक प्रभाव काफी हद तक कम हो जाएगा। यह मानना ठीक होगा कि निवेशक कम जोखिम वाले और सुस्थिर बैंकों से मिलने वाले लाभों को ठीक तरह से समझेंगे और वे कम जोखिम पर अधिक प्रतिलाभ प्राप्त करना पसंद करेंगे।

इस संबंध में एक और प्रश्न उठता है कि क्या बैंक पूंजी पर बढ़ी हुई लागत को स्वयं वहन करेंगे या उसका बोझ जमाकर्ताओं और उधारकर्ताओं पर डालेंगे। इस तालमेल का आकलन भारतीय बैंकों के निवल ब्याज मार्जिन (निम) के उच्चतर स्तर के अनुरूप किया जाना चाहिए जो 3 प्रतिशत के आस-पास है। इस उच्चतर निम से यह संकेत मिलता है कि बैंकों के लिए अपनी कार्य-दक्षता में सुधार करने, मध्यस्थीकरण पर आने वाली लागत को कम करने की गुंजाइश है। साथ ही, उन्हें यह देखना है कि पूंजी की लागत बढ़ने पर भी प्रतिलाभों के साथ-साथ अंधाधुंध तरीके से समझौता नहीं किया जाए।

पूंजी अपेक्षाओं पर चर्चा की जा चुकी है। आइए, अब हम बासेल-III के अंतर्गत चलनिधि मानकों पर आते हैं। क्या अधिक मात्रा में चलनिधिगत आस्तियों को बनाए रखने के अधिदेश (mandate) के कारण बैंक सरकार को उधार देने के निष्क्रिय विकल्प (passive option) को चुनने के लिए मज़बूर होंगे, जिससे निजी क्षेत्र बैंक ऋण से वंचित रह जाएगा? आशा करता हूँ कि अर्थव्यवस्था की बचत दर में सुधार होने के साथ-साथ राजकोषीय घाटा कम हो जाने से इस मुद्दे का समाधान खुद-ब-खुद हो जाएगा।

इस संबंध में एक सवाल पूछा जाता है कि बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को किस सीमा तक अपने पास रख सकते हैं जिन्हें चलनिधि मानकों के अनुपालन के मूल्यांकन हेतु हिसाब में लिया जाए। इसके प्रति एक मत है कि चूंकि सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) संबंधी प्रतिभूतियों को निरंतर आधार पर रखना होता है, अतः उन्हें बासेल-III के अंतर्गत पूंजी अपेक्षाओं के गणनार्थ हिसाब में नहीं लिया जाना चाहिए। इसके विपरीत, एक और मत यह भी है कि चूंकि प्रतिकूल परिस्थितियों में रिज़र्व बैंक को अंतिम ऋणदाता (एलओएलआर) होने के नाते इन प्रतिभूतियों के एवज में चलनिधि उपलब्ध करानी होती है, अतः कम-से-कम इन प्रतिभूतियों के निश्चित अंश को बासेल-III के चलनिधि मानकों के अनुपालनार्थ हिसाब में ले लेना चाहिए। रिज़र्व बैंक इस संबंध में यथासमय निर्णय लेगा।

इसलिए, क्या बासेल-III बैंकों की लाभप्रदता को प्रभावित कर उनकी प्रोत्साहन संरचना में बदलाव कर देगा, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हमारे बैंकिंग क्षेत्र के प्रतिस्पर्धात्मक पहलुओं से ऐसी स्थिति साकार होनी चाहिए जहाँ बैंक जमाकर्ताओं और उधारकर्ताओं के हितों से समझौता किए बिना प्रभावी ढंग से वित्तीय मध्यस्थता करने में समर्थ हो सकें।

छठा प्रश्न : क्या वास्तव में भारत को बासेल-III की आवश्यकता है? इसकी वजह से लाभों से कहीं अधिक लागत तो नहीं आएगी?

गौरतलब है कि अंतिम तीन प्रश्नों में बासेल-III के तथाकथित नकारात्मक परिणाम, यथा- अतिरिक्त पूंजी जुटाने के बोझ और चलनिधि संबंधी नए मानकों के अनुपालन पर आने वाली लागत, उससे बैंकों की लाभप्रदता पर पड़ने वाले प्रभाव तथा अर्थव्यवस्था की समग्र संवृद्धि की संभावनाओं आदि पर प्रकाश डाला गया है।

एक विचार, जिसे हालाँकि स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं किया गया है, यह भी है कि भारत को बासेल-III को अपनाने की ज़रूरत नहीं है, या उसे इसके परिष्कृत रूप को अपनाना चाहिए ताकि लाभों और तथाकथित लागतों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके। इस विचार की यह दलील देते हुए पुष्टि की गई कि बासेल-III केवल उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से जुड़े ऐसे बैंकों के लिए एक सुधारात्मक उपाय के रूप में तैयार किया गया है जो अक्सर विनियामक खामियों और विनियामक शिथिलताओं का लाभ उठाते हुए बेकाबू हो गए हैं। जबकि भारतीय बैंकों, जो संकट के दौर में भी सुदृढ़ बने रहे थे, के लिए बासेल-III की 'बोझिल' अपेक्षाएं रखना ज़रूरी नहीं है।

रिज़र्व बैंक इस विचार से सहमत नहीं है। हमारा रुख यही है कि भारत को बासेल-III का मार्ग अपनाना चाहिए क्योंकि इसके पीछे कई कारण हैं। सबसे मुख्य कारण यह है कि भारत विश्व के अन्य देशों के साथ जुड़ा हुआ है। बड़े पैमाने पर भारतीय बैंक विदेशों में पदार्पण कर रहे हैं और विदेशी बैंक भी हमारे देश में अपनी उपस्थिति दर्ज करने लगे हैं, ऐसे में हम वैश्विक मानकों से विनियामक विचलन होने नहीं दे सकते। कोई भी विचलन हमें अवधारणात्मक और व्यावहारिक दोनों ही रूप में प्रभावित कर देगा।

निम्न मानक वाली विनियामक व्यवस्था की 'अवधारणा' रखने से भारतीय बैंक ऐसी स्थिति में वैश्विक होड़ में पिछड़ जाएंगे, विशेष रूप से जब बासेल-III के कार्यान्वयन में 'प्रतिस्पर्धी संस्थाओं' के कार्य-निष्पादन की समीक्षा की जाएगी और उसकी सूचना जनसाधारण को उपलब्ध कराई जाएगी।

बासेल-III से हट जाने से हम व्यावहारिक रूप से भी बाधित हो जाएंगे। हमें यह समझना होगा कि बासेल-III बैंकों में उन्नत जोखिम प्रबंधन प्रणालियों का मार्ग प्रशस्त करता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय बैंकों को बाहरी तंत्र से लगने वाले झटकों को झेलने के लिए इन जोखिम प्रबंधन प्रणालियों से रक्षा कवच प्राप्त होगा। यह उस स्थिति में काम आएगा जब वे वैश्विक वित्तीय प्रणाली के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हों।

ज्ञात हो कि जब मैं इस प्रश्न का उत्तर पूरा करूँगा तो उसके पहले बासेल-III के निर्देश भारत में लागू हो चुके होंगे और इसके बोझ का असर उतना नहीं होगा जितनी हमने कल्पना की है।

सातवां प्रश्न : रिज़र्व बैंक ने बासेल-III के कार्यान्वयन की शुरुआत कर दी है, किंतु कुछ देशों ने यह कार्य अभी तक आरंभ नहीं किया है। आप इस दिशा में क्यों अग्रणी बनना चाहते हैं और क्यों आपके कुछ विनियम बासेल-III के अंतर्गत विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं से भी अधिक बोझिल हैं?

रिज़र्व बैंक ने मई 2012 में बासेल-III पूंजी विनियमन के अंतिम दिशा-निर्देश जारी किए, जिन्हें 1 जनवरी 2013 से 31 मार्च 2018 तक लागू किया जाना है, किंतु कुछ देशों ने तो अभी तक इस कार्य को शुरू भी नहीं किया है। हम पर इस संबंध में ज़रूरत से ज्यादा सक्रिय होने की आलोचना की जा रही है। इस आलोचना का मैं उत्तर दूँगा।

पहला, आरंभ और समाप्ति की तारीखें। हमने आरंभ की तारीख को पहले नहीं खिसकाया है। इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहमत तारीख, अर्थात् 1 जनवरी 2013 ही रखा गया है। किंतु हमने समाप्ति की तारीख को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित तारीख, अर्थात् 31 दिसंबर 2018 से नौ माह की अवधि कम करके 31 मार्च 2018 कर दिया है। हमने भारत के वित्त वर्ष की समाप्ति तारीख, जो कि 31 मार्च है, को ध्यान में रखते हुए इसे तय किया है। यदि हम इसे 31 मार्च 2019 तक आगे बढ़ाते हैं तो बासेल-III में विनिर्दिष्ट तारीख से तीन माह और बढ़ जाएंगे तथा ऐसा करने से हमारी छवि पर गलत असर पड़ सकता है। हमने यह उचित समझा कि इस प्रकार हमारी छवि पर गलत असर पड़ने से बेहतर है कि समाप्ति तारीख को नौ माह पहले कर दें। इसलिए हमने 31 मार्च 2018 को चुना है।

तीसरा, विश्व के प्रमुख बैंक अक्सर बासेल समिति की परामर्श प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं किंतु भारतीय बैंकों की स्थिति ऐसी नहीं है। हमने इस परामर्श प्रक्रिया को पूरा कर लिया है, अतः हम आगे बढ़ गए। इसलिए हमने यह सोचा कि क्यों न हमारे बैंकों को बासेल-III के पथ पर आगे बढ़ने के लिए पहले से ही तैयार किया जाए।

अब मैं इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकाश डालूँगा कि क्यों रिज़र्व बैंक ने भारतीय बैंकों के लिए बासेल-III में बताई गई न्यूनतम अपेक्षा से कहीं अधिक पूंजी और लीवरेज मानदंड विनिर्दिष्ट किए हैं। सारणी-4 में बासेल-III (अंतरराष्ट्रीय) में विनिर्दिष्ट मानकों,

साथ ही, बासेल-II के अंतर्गत भारत में मौजूदा अपेक्षाओं और बासेल-III के अंतर्गत विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं, जब इन्हें पूरी तरह लागू कर दिया जाएगा, को सार रूप में दर्शाया गया है।

हमारे 'बोझिल' पूंजी मानकों को कैसे न्यायसंगत ठहराया जा सकता है? ध्यान रहे कि भारत में स्थित बैंक बासेल-II के अंतर्गत मानकीकृत दृष्टिकोण का पालन करते हैं। पूंजी पर्याप्तता में निर्णयात्मक त्रुटियों, जैसे- मानकीकृत जोखिम भारों का गलत प्रयोग, आस्ति की गुणवत्ता का गलत वर्गीकरण आदि, को दूर करने की दृष्टि से उच्चतर पूंजी विनिर्दिष्ट की गई है। इसके अलावा, बासेल-II के अंतर्गत उन्नत दृष्टिकोण को मज़बूत किया गया है, तथापि, मानकीकृत जोखिम भारों के कैलिब्रेशन को व्यापक रूप से लागू नहीं किया गया है। और मुख्य बात यह है कि अब तक भारतीय बैंकों को बासेल-II के दूसरे स्तंभ की पूंजी अपेक्षाओं के अधीन नहीं लाया गया है। इस प्रकार उच्चतर पूंजी की अपेक्षा से जोखिम वाले एक्सपोज़रों के अवपूंजीकरण (under-capitalization) की संभाव्य चिंताएं दूर होंगी। इस परिप्रेक्ष्य में यह ज्ञात हो कि रिज़र्व बैंक ने बासेल-I और बासेल-II व्यवस्था के अंतर्गत भी अंतरराष्ट्रीय मानकों की तुलना में एक प्रतिशत अधिक अपेक्षा निर्धारित की थी। हमें

सारणी-4 : न्यूनतम विनियामक पूंजी का विनिर्दिष्ट स्तर
(जोखिम भारित आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

		बासेल-III (1 जनवरी 2019 की स्थिति के अनुसार)	रिज़र्व बैंक द्वारा विनिर्दिष्ट स्तर	
			मौजूदा (बासेल-II)	बासेल-III (31 मार्च 2018 की स्थिति के अनुसार)
क=(ख+घ)	न्यूनतम कुल पूंजी	8.0	9.0	9.0
ख	न्यूनतम टियर-1 पूंजी	6.0	6.0	7.0
ग	जिसमें से : न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी	4.5	3.6[4]	5.5
घ	अधिकतम टियर-2 पूंजी (कुल पूंजी के अंतर्गत)	2.0	3.0	2.0
ङ	पूंजी संरक्षण बफर (सीसीबी)	2.5	--	2.5
च = ग+ङ	न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी + सीसीबी	7.0	3.6	8.0
छ = क+ङ	न्यूनतम कुल पूंजी + सीसीबी	10.5	--	11.5
ज	लीवरेज अनुपात (कुल आस्तियों की तुलना में अनुपात)	3.0	--	4.5[5]

[4] न्यूनतम सामान्य इक्विटी संबंधी कोई अपेक्षा विनिर्दिष्ट नहीं की गई है। किंतु टियर-1 में गैर-सामान्य इक्विटी अंश टियर-1 पूंजी के 40 प्रतिशत से अधिक न हो। तदनुसार, परोक्ष रूप में यह माना जा सकता है कि न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी के 3.6 प्रतिशत के बराबर है।

[5] दिनांक 1 जनवरी 2013 से 1 जनवरी 2017 तक की टियर-1 लीवरेज अनुपात की समांतर चलन अवधि में बैंकों को लीवरेज अनुपात के मौजूदा स्तर को बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए, जबकि किसी भी दशा में यह 4.5 प्रतिशत से कम न हो जाए। ऐसे बैंकों को लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र कर लेनी चाहिए जिनका लीवरेज अनुपात 4.5 प्रतिशत से कम है। इस समांतर चलन अवधि में बासेल-III के अंतर्गत न्यूनतम टियर-1 लीवरेज 3 प्रतिशत होना चाहिए।

प्राप्त अनुभवों से यह पता चला है कि हमारा यह पूर्वविचार सहायक सिद्ध हुआ और यह लागत-लाभ की कसौटी पर खरा उतरा है।

कृपया यह भी ध्यान रखा जाए कि भारत उच्चतर पूंजी मानकों को निर्धारित करने वाला एक मात्र देश नहीं है। अन्य देशों, विशेष रूप से एशियाई देशों, ने भी बासेल-III के अंतर्गत उच्चतर पूंजी पर्याप्तता अनुपात का प्रस्ताव रखा है जिसे नीचे सारणी-5 में देखा जा सकता है।

इसी प्रकार एक और प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि क्यों रिज़र्व बैंक ने 4.5 प्रतिशत का उच्चतर लीवरेज अनुपात विनिर्दिष्ट किया है, जबकि बासेल-III के मानदंड में 3 प्रतिशत का अनुपात विनिर्दिष्ट किया गया है। यह एक पर्यवेक्षी सहजता का मामला है जहाँ भारतीय बैंकिंग प्रणाली में लीवरेज एग्रीगेट आधार पर अल्प स्तर पर ही है (लगभग टियर-1 पूंजी का 22 गुना)। हमने लीवरेज अनुपात के समांतर चलन अवधि में इस 'सहज' स्तर को कम करना ठीक नहीं समझा। बासेल समिति लीवरेज अनुपात के संभावित प्रभाव की निगरानी और विश्लेषण कर रही है। बासेल-III संबंधी हमारे ढांचे में बताए अनुसार हम बासेल समिति के अंतिम प्रस्ताव को ध्यान में रखकर लीवरेज अनुपात की अपेक्षा तय करेंगे।

आठवां प्रश्न : प्रतिचक्रीय पूंजी बफर को लागू करने से क्या-क्या चुनौतियां पैदा हो सकती हैं?

जैसा कि हमने पहले भी चर्चा की है कि बासेल-III पैकेज का एक महत्वपूर्ण घटक ऐसा प्रतिचक्रीय पूंजी बफर है जो बैंकों के लिए अच्छे समय में अधिक मात्रा में पूंजी जुटाने की अपेक्षा रखता है तथा आर्थिक संकुचन, सुरक्षा और सुदृढ़ता की आवश्यकताओं को पूरा करने में काम आता है। सैद्धांतिक रूप से यह सही लगता है, किंतु परिचालन की दृष्टि से यह चुनौतीपूर्ण है। हाल में स्पेन को इसका कटु अनुभव प्राप्त हुआ है। सबसे चुनौती भरा कार्य है आर्थिक चक्र में उस मोड़ का पता लगाना जब बफर का प्रयोग किया जाना ज़रूरी होता है। जाहिर है कि समष्टि-आर्थिक परिस्थितियों में समय-पूर्व या समय के बाद अंकुश लगाना काफी नुकसानदेह साबित हो सकता है। अतः इस मोड़ की पहचान वस्तुनिष्ठ और सुस्पष्ट मानदंड के आधार पर की जानी चाहिए। इसके लिए आर्थिक चक्रों से संबंधित कई क्रमबद्ध आंकड़ों की ज़रूरत पड़ सकती है। अतः हमारे पास एक उन्नत डेटाबेस होना चाहिए और इसके लिए आर्थिक चक्रों का विश्लेषण करने के लिए सुपरिष्कृत सांख्यिकीय कौशल भी ज़रूरी है।

बासेल-III में विनिर्दिष्ट प्रतिचक्रीय पूंजी बफर शुरू में ऋण/जीडीपी मेट्रिक पर आधारित था। क्या यह भारतीय परिप्रेक्ष्य में अच्छा आर्थिक संकेतक है? रिज़र्व बैंक द्वारा कराए गए अध्ययन से यह पता चला कि ऋण और जीडीपी अनुपात हमारी बैंकिंग प्रणाली में प्रणालीगत जोखिम के पैदा होने के संबंध में कभी भी अच्छा संकेतक साबित नहीं हुआ है।

इसके अलावा, रियल एस्टेट, आवास, सूक्ष्म वित्त और उपभोक्ता ऋण जैसे आर्थिक क्षेत्र भारत के लिए अपेक्षाकृत नई

सारणी-5 : भारत की तुलना में अन्य देशों के नमूने जिन्होंने उच्चतर पूंजी पर्याप्तता मानदंड निर्धारित किए हैं:

देश	न्यूनतम सामान्य इक्विटी अनुपात (पूंजी संरक्षण बफर सहित) (प्रतिशत)	न्यूनतम कुल पूंजी अनुपात (प्रतिशत)
बासेल-III	7.0	10.5
भारत	8.0	11.5
फिलीपींस	8.5	12.5
सिंगापुर	9.0	12.5
चीन	7.5	10.5
दक्षिण अफ्रीका	9.0	12.5

अवधारणा हैं तथा हाल ही में बैंकों ने इन क्षेत्रों को बड़े पैमाने पर वित्तपोषित करने का कार्य शुरू किया है। इन क्षेत्रों में पैदा होने वाले जोखिमों का कुल ऋण और जीडीपी अनुपात से ठीक तरह से पता नहीं लगाया जा सकता। रिज़र्व बैंक ने अब तक संपूर्ण क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए प्रतिचक्रीय नीतियां विनिर्दिष्ट की हैं और मेरा विचार है कि हमें यही दृष्टिकोण जारी रखना चाहिए। अब बासेल समिति ने यह भी पाया है कि ऐसा कोई तत्व नहीं है जो आर्थिक चक्र की गतिशीलता का पूरी तरह पता लगा सकता हो। समुचित रूप से बफर की जांच करने के लिए देश-विशेष की धारणा आवश्यक होती है जिसमें वित्तीय स्थिरता के मूल्यांकनों में प्रयुक्त अन्य सहज संकेतक भी बड़े पैमाने पर काम आते हैं।

नौवां प्रश्न : डी-एसआईबी क्या हैं? क्या किसी भारतीय बैंक को डी-एसआईबी की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाएगा?

संकट के बाद टू-बिग-टु-फेल संस्थाओं से जुड़ा नैतिक जोखिम बहुचर्चित मुद्दा बन गया है। यह अवधारणा बड़े-बड़े बैंकों को जोखिम से भरे कदम उठाने के लिए मज़बूर करती है। बासेल-III इस अवधारणा से बचाने के लिए सारे विश्व में प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों (जी-एसआईबी) की पहचान करने की अपेक्षा करता है और वह प्रणालीगत रूप से उनके महत्व के स्तर के अनुरूप अधिक/कम मात्रा में पूंजी रखने की शर्त रखता है। वार्षिक अंतराल पर इन जी-एसआईबी की सूची की समीक्षा की जानी है। वर्तमान में ऐसा कोई भारतीय बैंक नहीं है जो जी-एसआईबी की सूची में शामिल है।

बासेल समिति देश के स्तर पर प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों (डी-एसआईबी) के लिए कतिपय सिद्धांत और उनके संबंध में उच्चतर हानि की भरपाई (एचएलए) संबंधी पूंजी मानकों के लिए मानदंड तैयार करने की दिशा में अलग से कार्य कर रही है। इसके अलावा, डी-एसआईबी के लिए एक सुदृढ़ समाधान तंत्र विकसित करना बेहद ज़रूरी है।

टू-बिग-टु-फेल अवधारणा से उत्पन्न नैतिक जोखिम के मुद्दे और उससे निपटने के लिए किए जाने वाले विनियामक प्रयासों की वजह से यह सवाल उठ गया है कि अर्थव्यवस्था के आकार की तुलना में जी-एसआईबी और डी-एसआईबी का आकार कैसा होना चाहिए। यह सर्वविदित है कि परिचालन में किफायत की दृष्टि से बड़े-बड़े बैंक लाभकारी होते हैं और वे बुनियादी संरचना की बड़ी-बड़ी परियोजनाओं, जिन्हें अक्सर काफी जोखिमपूर्ण समझा जाता है, को वित्तपोषण करने की क्षमता रखते हैं। भारत के परिप्रेक्ष्य में हमें भी ऐसे बड़े बैंकों की ज़रूरत है जो विश्वस्तरीय भागीदार बनने की क्षमता रखते हों। खैर, हमें बड़े बैंकों से मिलने वाले लाभों और उनसे पैदा होने वाले नैतिक जोखिम की लागतों के बीच संतुलन स्थापित करना चाहिए।

दसवां प्रश्न : बासेल-III को लागू करने में, विशेष रूप से जोखिम प्रबंधन के क्षेत्र में किस तरीके से क्षमता निर्माण की ज़रूरत होगी? बैंकों को क्या कदम उठाना चाहिए और रिज़र्व बैंक को इस दिशा में क्या कार्रवाई करनी चाहिए?

इसमें कोई दो राय नहीं है कि बैंकों में आंतरिक रूप से क्षमता निर्माण करना ज़रूरी है, और साथ ही, रिज़र्व बैंक को एक विनियामक होने के नाते बासेल-III को कारगर ढंग से लागू करना है।

बैंकों को अपने जोखिम प्रबंधन दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहिए, यही सबसे महत्वपूर्ण सुधार है। भारत में स्थित बैंक वर्तमान में बासेल-II के मानकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार कार्य कर रहे हैं। बड़े आकार के बैंकों, खास तौर पर विदेशों में संचालित बैंकों, को उन्नत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। जोखिम प्रबंधन के उन्नत दृष्टिकोण अपनाने से बैंक प्रभावी तरीके से अपनी पूंजी का प्रबंध कर पाएंगे और उनकी लाभप्रदता में सुधार आएगा।

इस प्रकार उन्नत दृष्टिकोण को अपनाने के लिए तीन बातें ज़रूरी हो जाती हैं। पहली और सबसे अहम् बात है पूंजी के ढांचे को मात्र एक खानापूर्ति के रूप में देखने के हमारे नज़रिये में बदलाव आना चाहिए। अपितु, उसे बैंक को सुदृढ़, स्थिर रखने के लिए एक ऐसी पूर्व-शर्त के रूप में देखना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप लाभप्रदता हासिल की जा सकती है; दूसरी बात है जोखिम प्रबंधन के प्रति हमारी क्षमता प्रभावी व बहुमुखी हो; और आखिरी बात यह है कि आंकड़े पर्याप्त रूप में उपलब्ध हों और वे उच्चकोटि के हों।

निष्कर्ष

मेरे दस प्रश्नों की सूची और उनके उत्तर यहाँ आकर खत्म हो गए। मैंने इन पर विस्तार से चर्चा करने की चेष्टा की है, लेकिन

जानता हूँ कि मेरे प्रश्नों की यह सूची न तो व्यापक है; न ही इनके प्रति मेरे उत्तर संपूर्ण। खैर, यदि मेरा यह भाषण कई सवाल खड़ा करता है और आप में उनके जवाब ढूँढ़ने की उत्सुकता जगाता है तो मैं इसे सार्थक समझूँगा।

कई अनुत्तरित प्रश्न हो सकते हैं। किंतु मुझे पूरा विश्वास है कि बासेल-III को कारगर ढंग से लागू करने से भारतीय बैंक और मज़बूत, स्थिर तथा दुरुस्त हो जाएंगे। इससे वे अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्र (रियल सेक्टर) को बढ़ावा देने में सक्षम हो सकेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं इस सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ जिसमें द्वि-अंकी संवृद्धि हासिल करने के हमारे राष्ट्रीय ध्येय को पूरा करने में भारतीय बैंकों की भूमिका पर विचार-विमर्श किया जा रहा है।

❍❍❍

प्रयुक्त शब्दावली

Advanced approach	उन्नत दृष्टिकोण
Comprehensive disclosures	व्यापक प्रकटीकरण
Counter cyclical	प्रतिचक्रीय
Counter party credit default risk	प्रतिपक्षी क्रेडिट चूक जोखिम
Expected loss	प्रत्याशित हानि
Incurred loss	उपगत हानि
Onerous	बोझिल
Pro-cyclical	प्रचक्रीय
Provisioning norms	प्रावधानीकरण के मानदंड
Regulatory capital	विनियामक पूंजी
Risk based capital requirement	जोखिम आधारित पूंजी की अपेक्षाएं
Standardised approach	मानकीकृत दृष्टिकोण
Stressed input parameters	दबावग्रस्त निविष्टि मानदंड
Systemic risk	प्रणालीगत जोखिम
Toxic assets	नुकसानदेह आस्तियां

प्रयुक्त संयुक्ताक्षर

BCBS	Basel Committee on Banking Supervision	बीसीबीएस	बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति
BIS	Bank for International Settlements	बीआईएस	अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक
CCB	Capital Conservation Buffer	सीसीबी	पूंजी संरक्षण बफर
CVA	Credit Valuation Adjustment	सीवीए	क्रेडिट मूल्यांकन समायोजन
D-SIBs	Domestic Systemically Important Banks	डी-एसआईबी	देश के स्तर पर प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंक
G-SIBs	Global Sytemically Important Banks	जी-एसआईबी	सारे विश्व में प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंक
LCR	Liquidity Coverage Ratio	एलसीआर	चलनिधि कवरेज अनुपात
LoLR	Lender of Last Resort	एलओएलआर	अंतिम ऋणदाता
NIM	Net Interest Margins	निम	निवल ब्याज मार्जिन
NSFR	Net Stable Funding Ratio	एनएसएफआर	निवल स्थिर निधीयन अनुपात
RoE	Return on Equity	आरओई	इक्विटी पर प्रतिलाभ
SIB	Systemically Important Banks	एसआईबी	प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंक

बीआईएस का इतिहास और बासेल विनियमन

कुमार परिमलेन्दु सिन्हा
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, पटना

विश्व की सबसे पुरानी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्था बैंक आॅफ इंटरनेशनल सेटलमेंट (बीआईएस) की स्थापना 17 मई 1930 को हुई थी। यह संस्था केंद्रीय बैंकों के सहयोग के मुख्य केंद्र के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। इसकी स्थापना उस 'यंग योजना' (1930) के अंतर्गत की गई थी, जिसके माध्यम से प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुई बर्साय की संधि के पश्चात जर्मनी पर लगाए गए हर्जाने की राशि के भुगतान के मुद्दे को निपटाया गया था। नए बैंक को बर्लिन में अपने पहले एजेंट जनरल आॅफ रीपैरेशंस द्वारा किए जाने वाले कार्यों अर्थात हर्जाने की राशि के रूप में भुगतान की जाने वाली वार्षिक राशि के संग्रहण, प्रबंधन और वितरण को संभालना था। बैंक का नाम इसके मूल कार्य सेटलमेंट अर्थात निपटान के आधार पर ही रखा गया। बैंक आॅफ इंटरनेशनल सेटलमेंट का गठन डाज़ और यंग (Dawes and Young) ऋणों (हर्जाने की राशि के वित्तीयन के लिए जारी किए गए अंतरराष्ट्रीय ऋण) के लिए एक ट्रस्टी के रूप में कार्य करने तथा सामान्य तौर पर अंतरराष्ट्रीय केंद्रीय बैंकों के सहयोग को बढ़ावा देने के लिए भी किया गया था। हर्जाने वाला मुद्दा बहुत जल्दी ही गौण हो गया और बैंक की समग्र गतिविधियाँ मुख्य रूप से केंद्रीय बैंकों तथा अन्य एजेंसियों के बीच मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता की कोशिश के उद्देश्य से किए जाने वाले परस्पर सहयोग पर उत्तरोत्तर केंद्रित होती चली गईं।

'यंग योजना' के माध्यम से बैंक आॅफ इंटरनेशनल सेटलमेंट को यह निर्देश दिया गया था कि वह जर्मनी पर लगाए गए हरजाने के भुगतानों का प्रबंधन करे। छह देशों - बेल्जियम, फ्रांस, जर्मन, इटली, स्विट्ज़रलैंड तथा अमेरिका - के केंद्रीय बैंकों द्वारा इसे निधि प्रदान की गई तथा इसके कार्यालय-स्थल के लिए स्विट्ज़रलैंड के बासेल शहर को चुना गया। इन देशों द्वारा कार्यालय-स्थल के लिए स्विट्ज़रलैंड को इसकी तटस्थता और महत्वपूर्ण आर्थिक शक्तियों के रूप में स्थापित देशों के अनुचित प्रभाव से इसके अत्यंत कम संपर्क में रहने के कारण चुना गया। उस समय अंतरराष्ट्रीय यात्राओं का मुख्य माध्यम रेल था, इसलिए बासेल शहर के चयन के पीछे सभी दिशाओं में इसके विशिष्ट रेल संपर्कों का होना भी था।

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य और बीआईएस की बदलती भूमिका

1930 से बीआईएस में केंद्रीय बैंकों का सहयोग केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों और केंद्रीय बैंकों तथा अन्य संस्थाओं के विशेषज्ञों की बासेल में नियमित बैठकों के माध्यम से किया जाता था। इस सहयोग के समर्थन में बैंक ने वित्तीय और मौद्रिक अर्थशास्त्र में अपने अनुसंधान कराए तथा अर्थशास्त्रीय और वित्तीय सांख्यिकीय आंकड़ों के संग्रहण, समेकन तथा प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1930 के दशक के आरंभ में हुए वित्तीय और आर्थिक संकट के बीच में 'हर्जाने की राशि' के संग्रहण और वितरण से जुड़े मामले में कमी आई, जिससे बीआईएस को अपनी समस्त गतिविधियों को विश्व के केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग पर मुख्य रूप से केंद्रित करने का मौका मिला। इस प्रकार बीआईएस धीरे-धीरे विश्व की अर्थव्यवस्था और बैंकिंग प्रणाली को एक नई दृष्टि, नई दिशा और नया आयाम प्रदान करने लगा।

समय बीतने के साथ ही वैश्विक अर्थव्यवस्था और वैश्विक बैंकिंग क्षेत्र में बीआईएस की भूमिका बृहत्तर होती चली गई। बैंक के मुख्य कार्यों में अब जो कार्य शामिल हो गए थे, उनमें केंद्रीय बैंकों के बीच विचार विमर्श को बढ़ावा देना तथा उनके बीच सहयोग को आगे बढ़ाने में मदद करना, वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी अन्य प्राधिकरणों के साथ इनके संवाद का समर्थन करना, केंद्रीय बैंकों तथा वित्तीय पर्यवेक्षी प्राधिकरणों द्वारा सामना किए जाने वाले नीतिगत मुद्दों पर अनुसंधान कराना, केंद्रीय बैंकों के लिए उनके वित्तीय लेनदेनों में प्रमुख प्रतिपक्षी

(Counterparty) के रूप में कार्य करना तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय परिचालनों के संबंध में एजेंट अथवा ट्रस्टी के रूप में कार्य करना शामिल हो गए थे।

महामंदी और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बीआईएस की भूमिका

1930 के दशक की महामंदी और बढ़ रहे राजनीतिक-आर्थिक तनावों के कारण अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के अचानक विफल होने के बावजूद केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों का द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होने तक प्रत्येक महीने बासेल में मिलना जारी रहा। यद्यपि इस अवधि के दौरान प्रभावी अंतरराष्ट्रीय सहयोग की गुंजाइश सीमित थी, फिर भी ऐसे समय में बीआईएस ने वैश्विक बैंकिंग प्रणाली को एक ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जिसमें केंद्रीय बैंकर आपस में सक्रिय सहयोग बनाए रख सकें तथा अर्थव्यवस्था, बैंकिंग और वित्तीय गतिविधियों पर अपने विचार परस्पर बाँट सकें। इस दौरान बीआईएस ने केंद्रीय बैंकों को वित्तीय सेवाओं का एक विस्तृत दायरा उपलब्ध कराया और आर्थिक अनुसंधान तथा विश्लेषण के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित संस्था के रूप में तेजी से अपना स्थान बना लिया।

1939 में युद्ध शुरू होने के साथ ही युद्धरत देशों के प्रतिनिधियों के लिए अब अधिक दिनों के लिए यह संभव नहीं रह गया था कि वे बीआईएस की बैठकों में शामिल हो सकें। भले ही वह बैठक स्विट्ज़रलैंड जैसे एक तटस्थ देश में हो रही हो। लेकिन बोर्ड के सदस्य इस बात पर सहमत थे कि युद्ध के बाद वित्तीय और मौद्रिक पुनर्निर्माण में सहयोग के लिए बीआईएस को जीवित रखने की जरूरत है। इसलिए बैंक के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए बोर्ड ने यह निर्णय लिया कि युद्ध के दौरान बोर्ड की सभी बैठकों को स्थगित रखा जाए। इस दौरान एक तटस्थता घोषणा भी की गई। बीआईएस ने इस अवधि में केंद्रीय बैंकों को सहयोग प्रदान करने के लिए अपनी बैंकिंग सेवाएँ जारी रखीं तथा बैंक ने अपने दायित्वों को पूरा करने का प्रयास किया और अपनी तटस्थता की नीति के साथ कायम रहा।

युद्धकाल की परिस्थितियाँ तथा तटस्थता घोषणा के अवरोधों के परिणामस्वरूप बीआईएस के बैंकिंग परिचालनों में तेजी से गिरावट हुई। इसका मासिक टर्नओवर भी युद्धपूर्व की गतिविधियों की तुलना में थोड़ा गिर गया। पूरे युद्ध के दौरान बीआईएस ने उन निवेशों से संबंधित ब्याज का भुगतान जर्मनी से संगृहीत करना जारी रखा, जो निवेश उसने 1930-31 में जर्मन अर्थव्यवस्था में किए थे।

मौद्रिक नीति के क्षेत्र में द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल बाद से 1970 के आरंभ तक बीआईएस का सहयोग ब्रेटन वुड्स सिस्टम को लागू करने तथा उसका बचाव करने पर मुख्य रूप से केंद्रित था। 1970 और 1980 के दशक में यह सहयोग तेल संकट और अंतरराष्ट्रीय ऋण संकट के परिणामस्वरूप हो रहे सीमापार के पूंजी प्रवाहों पर मुख्य रूप से केंद्रित था। 1970 के दशक का संकट अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों के विनियामक पर्यवेक्षण का मुद्दा लेकर भी आया, जिसके फलस्वरूप 1988 का बासेल पूंजी समझौता तथा 2001-06 का इसका संशोधित रूप 'बासेल-II' सामने आए। हाल ही में, आर्थिक एकीकरण एवं भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप वित्तीय स्थिरता के मुद्दे ने, जिसे 1997 के एशिया संकट द्वारा विशिष्टता से दर्शाया गया था, बहुत अधिक ध्यान आकृष्ट किया है।

मौद्रिक नीति संबंधी सहयोग को प्रोत्साहित करने के अलावा बीआईएस ने हमेशा केंद्रीय बैंक समुदाय के लिए 'परंपरागत' बैंकिंग कार्य (सोने का लेनदेन और विदेशी लेनदेन) तथा ट्रस्टी और एजेंसी के रूप में भी कार्य किए हैं। बीआईएस यूरोपीय पेमेंट यूनियन (ईपीयू, 1950-58) के एजेंट के रूप में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय मुद्राओं की प्रत्यावर्तन परिवर्तनीयता में सहायता का कार्य करता था। इसी तरह, बीआईएस ने विभिन्न यूरोपीय विनिमय दर करारों के एजेंट के रूप में कार्य किया है, जिसमें यूरोपीय मौद्रिक प्रणाली (ईएमएस, 1979-94) शामिल है, जिसके बाद एकल मुद्रा का कदम उठाया गया था।

अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली को जब भी जरूरत पड़ी उसके समर्थन के लिए बीआईएस ने आकस्मिक वित्तपोषण भी उपलब्ध कराया है अथवा उसकी व्यवस्था की है। 1931-33 के वित्तीय संकट के दौरान बीआईएस ने ऑस्ट्रियन और जर्मन केंद्रीय बैंकों के लिए सहायता ऋणों की व्यवस्था की। 1960 के दशक में बीआईएस ने फ्रेंच फ्रैंक (1968) के लिए विशेष समर्थन ऋणों की व्यवस्था की तथा स्टर्लिंग को सहायता देने के लिए दो सामूहिक व्यवस्थाएँ कीं। बीआईएस ने विश्व मुद्रा कोष के नेतृत्व वाले स्थिरीकरण कार्यक्रमों के संदर्भ में मेक्सिको को 1982 में तथा ब्राजील को 1998 में वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई।

युद्धोत्तर काल : बीआईएस की भूमिका

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बीआईएस यूरोपीय मुद्राओं के लिए मुख्य समाशोधन गृह और केंद्रीय बैंकरों की बैठकों के पसंदीदा स्थल के रूप में उभरा। लेकिन ब्रेटन वुड्स करार (1944) में बीआईएस को समाप्त करने की बात की गई। युद्ध-काल की बीआईएस की गतिविधियों के कारण उसके प्रति व्यापक रूप से एक संदेह फैल गया था तथा कुछ देशों का विचार था कि बदली हुई परिस्थितियों में ब्रेटन वुड्स के ढाँचे में तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और विश्व बैंक के साथ बीआईएस द्वारा एक उपयोगी भूमिका निभाने का दायरा बहुत ही सीमित हो जाएगा। लेकिन अधिकांश केंद्रीय बैंक, खासकर यूरोपीय देशों के केंद्रीय बैंक, बीआईएस को जीवित रखने तथा युद्धोत्तर काल की अर्थव्यवस्था और बैंकिंग के विकास में उसकी सक्रिय भूमिका के सशक्त पक्षधर के रूप में सामने आए। सरकारों के नियंत्रण से अलग एक स्वायत्त संस्था के रूप में बीआईएस की पहचान उस समय एक अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय संस्था के रूप में स्थापित हुई जब उसने यूरोप की वित्तीय पुनर्रचना में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब 1960 के दशक में डॉलर पर संकट छाया उस समय बीआईएस द्वारा अमेरिका की मुद्रा के बचाव में बड़े स्तर पर मुद्रा और स्वर्ण की विनिमय व्यवस्था की गई।

शीतयुद्ध के दौरान भी बीआईएस ने केंद्रीय बैंकों के बीच संवाद और संपर्क के एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी मंच के रूप में अपनी भूमिका निभाई। इस अवधि में बीआईएस ने दोनों पक्षों (अमेरिका और सोवियत संघ) के बीच की संवादहीनता की दीवार तोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हुए आर्थिक और बैंकिंग क्षेत्र से जुड़े चिंतन तथा शोध, विश्व की अर्थव्यवस्था और आर्थिक गतिविधियों के संबंध में विचार-विमर्श तथा उनके बीच संपर्क का एक सार्थक मंच उपलब्ध कराकर पूर्व और पश्चिम के बीच ठंडे पड़ गए आर्थिक संबंधों को एक पुनर्जीवन देने का प्रयास किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति और 1970 के दशक के आरंभिक वर्षों में बीआईएस के मंच से प्रदान किया जा रहा केंद्रीय बैंक सहयोग मुख्य रूप से ब्रेटन वुड्स की अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली, जो स्थिर किंतु समायोज्य विनिमय दरों पर मुक्त परिवर्तनीय मुद्राओं पर आधारित प्रणाली थी, के कार्यान्वयन और उसका बचाव करने पर केंद्रित था। 1950 के दशक में बीआईएस ने यूरोपीय भुगतान संघ (ईपीयू) के एजेंट के रूप में यूरोपीय देशों को अपनी मुद्राओं को पूर्ण परिवर्तनीय बनाने में महत्त्वपूर्ण तकनीकी भूमिका निभाई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सभी यूरोपीय देशों में विदेशी मुद्रा नियंत्रण प्रणालियों ने अपना स्थान बना लिया था। ये विदेशी मुद्रा नियंत्रण मुक्त व्यापार के लिए गंभीर बाधक थे। यूरोपीय भुगतान संघ (ईपीयू) एक ऐसी व्यवस्था थी जिसे इन विनिमय प्रतिबंधों से धीरे-धीरे दूर होने के लिए तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में यूरोपीय मुद्राओं को मुक्त तौर पर परिवर्तनीय बनाने के लिए तैयार किया गया था। यह व्यवस्था अत्यंत सफल हुई। यह व्यवस्था इतनी सफल सिद्ध हुई कि 1958 के अंत में सारे यूरोप में पूर्ण परिवर्तनीयता पुन:स्थापित हो गई और यूरोपीय भुगतान संघ (ईपीयू) समाप्त कर दिया गया।

1958 के बाद स्थिर विनिमय दरों पर मुक्त परिवर्तनीय मुद्राओं की ब्रेटन वुड्स प्रणाली पूरी तरह परिचालनात्मक हो गई थी। लेकिन बहुत जल्दी ही यह लगने लगा कि इसे निर्बाध रूप से चलाने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग के एक अच्छे माहौल की बहुत जरूरत है। ऐसी परिस्थिति में बीआईएस ने केंद्रीय बैंकों के बीच संकट प्रबंधन के समन्वयक की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू किया। जहाँ कहीं भी सोने की कीमत, रिज़र्व मुद्राओं (डॉलर और पौंड स्टर्लिंग) की स्थिति अथवा अन्य मौद्रिक असंतुलनों से अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के दुर्बल होने का डर पैदा हो गया, वहाँ बीआईएस ने अपने महत्वपूर्ण योगदान से विश्व अर्थव्यवस्था और बैंकिंग क्षेत्र को नई दिशा और उचित मार्गदर्शन प्रदान किया। नव स्थापित समूह 10 के संदर्भ में स्वर्ण पूल, स्वैप्स नेटवर्क, स्टर्लिंग समर्थन व्यवस्था जैसे प्रयासों का बीआईएस में समन्वयन किया गया। बीआईएस के इन प्रयासों से अभूतपूर्व आर्थिक विकास की अवधि अर्थात् 1950 और 1960 के स्वर्णिम दशकों के दौरान ब्रेटन वुड्स प्रणाली की जीवन-अवधि बढ़ाने में सहायता मिली, लेकिन ये प्रयास भी अंतत: इसको टूटने से नहीं बचा सके। 1970 के दशक के आरंभ में डॉलर का मूल्य वस्तुत: बाजारों द्वारा निर्धारित होना ब्रेटन वुड्स प्रणाली की समाप्ति के संकेत थे। स्थिर विनिमय दरों की प्रणाली को पुन:स्थापित करने के अनेक प्रयास अल्पजीवी सिद्ध हुए और 1973 से मुक्त मुद्राओं का दौर आरंभ हुआ। सशक्त प्रयासों की कमी के बावजूद इस अवधि के दौरान ब्रेटन वुड्स प्रणाली के प्रबंधन तथा उसे बनाए रखने के लिए किए

गए प्रयासों से केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग को एक संस्थागत रूप देने की स्थायी रूपरेखा प्रतिष्ठापित की जा सकी। इनमें से बहुत सारे प्रयासों का श्रेय निश्चित रूप से बीआईएस को जाता है। यह सारा कुछ बीआईएस के अनौपचारिक और विवेकशील वातावरण में हुआ, जिसने केंद्रीय बैंकों के बीच सहयोग के एक मंच के रूप में इसकी भूमिका को विस्तार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यूरोपीय मौद्रिक संघ और बीआईएस का योगदान

बीआईएस यूरोपीय मौद्रिक एकीकरण की प्रक्रिया के साथ लगभग 30 वर्षों से अधिक समय तक अत्यंत नजदीकी तौर पर जुड़ा रहा। यूरोपीय मौद्रिक एकीकरण की प्रक्रिया के साथ बीआईएस के इस निकट संबंध से यूरोप के केंद्रीय बैंकरों के बीच न केवल विचार-विमर्श का एक असरदार मंच उपलब्ध हो पाया बल्कि इसने यूरोपीय विनिमय दर व्यवस्थाओं के लिए तकनीकी आधारभूत संरचना प्रदान करने का भी काम किया। 1964 से यूरोपीय आर्थिक समुदाय के सदस्य देशों के केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों की समिति द्वारा यूरोपीय आर्थिक समुदाय स्तर की मौद्रिक नीति के समन्वयन तथा एकीकरण के संबंध में विचार-विमर्श करने के लिए बीआईएस में नियमित रूप से बैठक करना आरंभ किया गया। 1970 के दशक की शुरुआत में, जब ब्रेटन वुड्स प्रणाली टूट गई थी, गवर्नरों की समिति सहभागी यूरोपीय मुद्राओं के बीच विनिमय दरों की अस्थिरता पर सीमाएँ लगाने की बात पर आपस में सहमत हुई। यूरोपीय मौद्रिक एकीकरण के क्षेत्र में यह पहला महत्वपूर्ण कदम था। 1973 में एक यूरोपीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य मौद्रिक एकीकरण की इस प्रक्रिया को सहयोग प्रदान करना था। बीआईएस द्वारा इस संस्था में अपना एजेंट नियुक्त किया गया। 1979 में यूरोपीय मौद्रिक प्रणाली सामने आने के बाद इन उत्तरदायित्वों में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ और बीआईएस ने यूरोपीय मौद्रिक संघ की स्थापना होने तक इन उत्तरदायित्वों को बखूबी निभाने की निरंतर कोशिश की। खासकर उस समय जब संपूर्ण यूरोपीय अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त बाजार परिस्थितियों का सामना कर रही थी, बीआईएस ने यूरोपीय अर्थव्यवस्था को एक मजबूत समर्थन प्रदान किया। कालांतर में, यूरोपीय आर्थिक समुदाय के केंद्रीय बैंकों के गर्वनरों की समिति, जिसे बीआईएस का सचिवालयीन सहयोग प्राप्त था, नीतिगत आदान-प्रदान तथा समन्वयन के उद्देश्य से एक साहचर्यपूर्ण संस्था के रूप में विकसित हुई। 1988-89 में इसके कुछ सदस्यों ने डेलॉर्स समिति (Delors Committee) के लिए व्यक्तिगत हैसियत से अपनी सेवा प्रदान की। इस समिति ने 1989 में एक रिपोर्ट जारी की, जिसमें मूल्य स्थिरता के लिए प्रतिबद्ध एक स्वतंत्र केंद्रीय बैंक के मॉडल की बात बताई गई थी। इस समिति की सिफारिशों ने 1992 में हुई मास्ट्रिक्ट संधि (Maastrict Treaty) में निर्दिष्ट यूरोपीय आर्थिक और मौद्रिक संघ की रूपरेखा को निर्णयात्मक तौर पर प्रभावित किया था। यूरोपीय मौद्रिक संस्थान, जो यूरोपीय केंद्रीय बैंक की पूर्वगामी संस्था थी, 1994 में फ्रैंकफर्ट में स्थानांतरित होने के पहले तक बीआईएस में अवस्थित था।

बीआईएस: बैंकिंग पर्यवेक्षण, पूंजी पर्याप्तता और वैश्विक वित्तीय स्थिरता

20 वीं सदी के अंतिम दशकों में वित्तीय बाजारों के विकास और वैश्वीकरण ने बीआईएस के स्तर पर केंद्रीय बैंक सहयोग के स्वरूप को नया आकार प्रदान किया। इस दौरान बीआईएस ने वैश्विक मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता का लक्ष्य पाने में निरंतर अपना सहयोग प्रदान किया। बीआईएस ने केंद्रीय बैंकों को जरूरत के समय आकस्मिक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर वैश्विक अर्थव्यवस्था को एक शक्ति प्रदान की। बीआईएस ने अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना और खासकर अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग पर्यवेक्षण को मजबूत करने के उद्देश्य से प्रस्तावित उपायों तथा विकसित मानकों के लिए राष्ट्रीय केंद्रीय बैंकों और पर्यवेक्षण एजेंसियों के विशेषज्ञों को उपलब्ध कराकर अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग व्यवस्था को महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

1970 के दशक में अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों के विकास और सीमापार मुद्रा प्रवाहों के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक प्रभावी बैंकिंग पर्यवेक्षण की कमी महसूस की गई। राष्ट्रीय बैंकिंग पर्यवेक्षी प्राधिकरण मूलत: घरेलू बैंकों और अंतरराष्ट्रीय बैंकों की घरेलू गतिविधियों का विनियमन देखते थे, जबकि इन बैंकों की अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों का हमेशा सघन पर्यवेक्षण नहीं हो पाता था। 1974 में जर्मनी में Bankhaus Herstatt तथा अमेरिका में फ्रैंकलिन नेशनल बैंक की विफलता ने जी-10 के देशों के केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों को बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति के गठन के लिए प्रेरित किया। बीआईएस द्वारा संचालित इस समिति में बैंक

पर्यवेक्षी प्राधिकरणों तथा बेल्जियम, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, लक्ज़मबर्ग, नीदरलैंड, स्पेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, इंग्लैंड तथा अमेरिका के केंद्रीय बैंकों के वरिष्ठ प्रतिनिधि शामिल थे। समिति का मुख्य कार्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों की पूंजी पर्याप्तता को विनियमित करना तथा वैश्विक बैंकिंग पर्यवेक्षण की गुणवत्ता में सुधार करना था। 1988 में इस समिति द्वारा बासेल पूंजी समझौता (Basel Capital Accord) सामने लाया गया, जिसके माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय वैश्विक स्तर पर स्वीकृत मानकों वाले बैंकों के लिए ऋण जोखिम (Credit Risk) के मापन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इस प्रणाली के माध्यम से 1992 तक 8 प्रतिशत के न्यूनतम पूंजी मानक की एक ऋण जोखिम मापन रूपरेखा के कार्यान्वयन की बात कही गई थी। इसके अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों द्वारा अपनी जोखिम भारित आस्तियों के 8 प्रतिशत के बराबर पूंजी अपने पास रोक कर रखनी थी। बैंकों की आस्तियों को वर्गीकृत किया गया तथा उन्हें ऋण जोखिम और भारित जोखिम के अनुसार पाँच समूहों में बाँटा गया था। ऋण जोखिम मापन की यह रूपरेखा केवल सदस्य देशों में ही प्रवर्तित नहीं की गई थी बल्कि अन्य सभी देशों के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों के लिए भी प्रस्तुत की गई थी।

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बनी बासेल समिति (बीसीबीएस) द्वारा 1997 में प्रभावी बैंकिंग पर्यवेक्षण के लिए पच्चीस मूल सिद्धांत प्रकाशित किए गए। इन सिद्धांतों की रूपरेखा को लाइसेंसिंग और संरचना (Licensing and structure), विवेकपूर्ण विनियमन तथा अपेक्षाएँ (Prudential Regulations and Reqiurements), चालू बैंक पर्यवेक्षण की प्रविधियाँ (Methods of Ongoing Bank Supervision) तथा सीमापार बैंकिंग (Cross-Border Banking) शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया था। इन सिद्धांतों को जारी करने का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि सभी देश विकसित देशों द्वारा उपयोग में लाई जा रही बैंकिंग पर्यवेक्षण तकनीकों को कार्यान्वित करें।

प्रभावी बैंकिंग पर्यवेक्षण सिद्धांतों के अलावा समिति ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों के लिए पूंजी पर्याप्तता के दिशानिर्देश बनाए जाने पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया। समिति द्वारा 1988 में पूंजी पर्याप्तता से संबंधित अपने दिशानिर्देश प्रकाशित किए गए, जिन्हें बासेल-I कहा गया। बासेल-I ऋण जोखिम के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों की पूंजी पर्याप्तता के परिकलन के उद्देश्य से विकसित किया गया था। जून 1999 में समिति द्वारा एक संशोधित पूंजी पर्याप्तता की रूपरेखा का प्रस्ताव लाया गया। प्रस्तावित पूंजी पर्याप्तता रूपरेखा में इन तीन स्तंभों को शामिल किया गया - न्यूनतम पूंजी अपेक्षाएँ, एक संस्था की आंतरिक मूल्यांकन प्रक्रिया तथा पूंजी पर्याप्तता की पर्यवेक्षी समीक्षा और पर्यवेक्षी प्रयासों के एक समर्थक तत्व के रूप में बाजार अनुशासन पर बल देने के लिए डिस्क्लोजर का प्रभावी उपयोग।

पहला स्तंभ एक बैंक द्वारा सामना किए जाने वाले जोखिम के तीन प्रमुख घटकों - ऋण जोखिम (Credit Risk), परिचालन संबंधी जोखिम (Operational Risk) तथा बाजार जोखिम (Market Risk) के लिए परिगणित विनियामक पूंजी बनाए रखने के बारे में निर्दिष्ट करता है।

दूसरा स्तंभ पहले स्तंभ की विनियामक प्रतिक्रिया के बारे में निर्दिष्ट करता है। यह बासेल-I के अंतर्गत विनियामकों को उपलब्ध 'टूल' से बेहतर और सुधरे हुए 'टूल' भी प्रदान करता है। यह बाकी उन जोखिमों - यथा प्रणालीगत जोखिम (Systemic Risk), संकेंद्रण जोखिम (Concentration Risk), रणनीतिक जोखिम (Strategic Risk), प्रतिष्ठा संबंधी जोखिम (Reputational Risk) चलनिधि जोखिम (Liquidity Risk), विधि संबंधी जोखिम (Legal Risk) जैसे अवशिष्ट जोखिमों (Residual Risks) - से निपटने के लिए भी रूपरेखा प्रदान करता है, जिनका सामना एक बैंक को करना पड़ता है। इससे बैंकों को अपनी जोखिम प्रबंधन प्रणाली की समीक्षा करने की शक्ति प्राप्त हुई। आंतरिक पूंजी पर्याप्तता मूल्यांकन प्रक्रिया (Internal Capital Adequacy Assessment Process - ICAAP) स्तंभ-II का ही परिणाम है।

तीसरे स्तंभ का उद्देश्य डिस्क्लोजर अपेक्षाओं का एक सेट विकसित करते हुए, जिनसे बाजार के सहभागियों के लिए एक संस्था की पूंजी पर्याप्तता को आँकने की गुंजाइश हो, न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं और पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया को समर्थन प्रदान करना था। तीसरे स्तंभ में बाजार अनुशासन का महत्त्व निर्दिष्ट किया गया है। बाजार अनुशासन, बैंक की सूचना सुविधाओं के बारे में दूसरों के मूल्यांकन, जिनमें निवेशक, विश्लेषक, ग्राहक, अन्य बैंक तथा रेटिंग एजेंसियाँ शामिल होती हैं, के आदान-प्रदान के रूप में

विनियमों के पूरक का काम करता है, जिससे बैंक को अच्छे कॉरपोरेट गवर्नेंस की ओर जाने में सहायता मिलती है। स्तंभ-III का उद्देश्य बाजार अनुशासन को यह अनुमति देना था कि वह संस्थाओं से पूंजी तथा जोखिम एक्सपोज़र से संबंधित विवरणों के प्रकट करने की अपेक्षा करके संस्था की जोखिम मूल्यांकन प्रक्रियाओं तथा पूंजी पर्याप्तता को परिचालित करे। जब बाजार के सहभागियों को बैंक की गतिविधियों और उनके एक्सपोज़र का प्रबंधन करने के लिए उनकी नियंत्रण प्रणाली की समझ होती है, तो वे बैंकिंग संगठनों के बीच बेहतर तरीके से अंतर कर पाने में सक्षम होते हैं। ऐसा होने से वे उन बैंकों को पुरस्कृत कर सकते हैं, जिन्होंने अपने जोखिमों का विवेकपूर्ण तरीके से प्रबंधन किया हो तथा उन बैंकों को दंडित कर सकते हैं, जिन्होंने ऐसा नहीं किया हो।

बैंकों, औद्योगिक समूहों और पर्यवेक्षी प्राधिकरणों के साथ, जो समिति के सदस्य नहीं थे, व्यापक विचार-विमर्श किए जाने के बाद 26 जून 2004 को इन मानकों से संबंधित एक संशोधित रूपरेखा जारी की गई। इस पूंजी समझौते का संशोधित रूप जून 2006 में जारी किया गया, जिसे बासेल-II के नाम से जाना गया। ऐसे मानकों का उद्देश्य संकट की स्थिति में उसका असर फैलने की संभावना सीमित करने तथा वैश्विक वित्तीय बुनियादी संरचना को समग्र रूप से मजबूत करने के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों द्वारा उठाए गए विभिन्न जोखिमों का एक बेहतर और पारदर्शी मापन करना था। बासेल-II का उद्देश्य एक ऐसी अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग रूपरेखा का निर्माण किया जाना था, जिसके माध्यम से यह सुनिश्चित किया जा सके कि बैंक सुसंगत बैंकिंग पूंजी पर्याप्तता विनिमय के उपयोग से सभी संबद्ध जोखिमों की परिगणना कर रहे हैं, और फिर एक मज़बूत और स्थिर अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग प्रणाली संस्थापित की जा सके। बासेल-II के माध्यम से समिति ने यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों के बीच न्यूनतम पूंजी अपेक्षाएँ असमानता पैदा न करें।

बासेल-III पूंजी पर्याप्तता, दबाव परीक्षण (Stress Testing) तथा बाजार चलनिधि जोखिम पर एक वैश्विक विनियामक मानक है, जिस पर बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बनी 'बासेल समिति (बीसीबीएस)' के सदस्यों द्वारा सहमति प्रदान की गई है। इसे 2000 के दशक के उत्तरार्द्ध में आए वित्तीय संकट द्वारा सामने आई वित्तीय विनियमन की कमियों से निपटने के उद्देश्य से विकसित किया गया। बासेल-III बैंक पूंजी अपेक्षाओं को मजबूती प्रदान करता है और बैंक चलनिधि तथा बैंक लीवरेज पर नई विनियामक अपेक्षाएँ प्रस्तुत करता है।

बासेल III का उद्देश्य बैंकों तथा संपूर्ण बैंकिंग प्रणाली के लिए बेहतर विनियामक रूपरेखा उपलब्ध कराना, वित्तीय संकट और उसकी गंभीरता की संभावना कम करना तथा वित्तीय संकट के वित्तीय क्षेत्र से मूल अर्थव्यवस्था तक फैलने के जोखिम को कम करना है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू हैं - पूंजी आधार की गुणवत्ता और पारदर्शिता में सुधार किया जाना, पूंजी अपेक्षाओं को पूरा करना, पूंजी के सुरक्षित भंडार (Capital Buffers) के बारे में निर्दिष्ट करना, प्रणालीगत जोखिम तथा इसकी अंत:संबद्धता से निपटना, वैश्विक चलनिधि मानक प्रस्तुत करना तथा विवेकपूर्ण पूंजी वितरण नीतियाँ सुनिश्चित करना आदि। इस प्रकार बासेल-III के मानक 2000 के दशक के उत्तरार्द्ध में आए विश्वव्यापी आर्थिक संकट के प्रभावों से उबरने, उससे सबक लेने तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा बैंकिंग क्षेत्र को भविष्य की आर्थिक और वित्तीय चुनौतियों से निपटने तथा मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता बनाए रखने के लिए आवश्यक विनियामक अपेक्षाओं की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा देने में सहायता करने के उद्देश्य से बीआईएस द्वारा गठित तथा संचालित विभिन्न समितियों में बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बनी बासेल समिति के अलावा वैश्विक वित्तीय प्रणाली समिति (Committee on Global Financial System, CGFS - 1971), भुगतान और निपटान प्रणाली समिति (Committee on Payment and Settelment System, CPSS, 1990), बाजार समिति (Markets Committee, 1964) प्रमुख हैं। 1999 में बीआईएस के प्रयास से वित्तीय स्थिरता संस्थान (FSI) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य पर्यवेक्षी प्राधिकरणों द्वारा लिए गए कार्यों के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना तथा विश्व भर के वित्तीय क्षेत्र के पर्यवेक्षकों को व्यावहारिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराना है। बीआईएस अपने आर्थिक, मौद्रिक और वित्तीय अनुसंधानों के माध्यम से बासेल स्थित इन

समितियों तथा संगठनों के कार्यों में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है।

इस प्रकार बीआईएस अपने वर्तमान परिचालनों में मुख्य रूप से दो लक्ष्यों की ओर अपना ध्यान केंद्रित कर रहा है - अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय सहयोग को प्रोत्साहित करना तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था में मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता बनाए रखने के प्रयास करना। इसके लिए बीआईएस आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र से संबंधित महत्त्वपूर्ण अनुसंधानों को बढ़ावा देने, केंद्रीय बैंकों के बीच सांख्यिकीय सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा वैश्विक बैंकिंग, प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार तथा डेरिवेटिव बाजार के आँकड़ों के प्रकाशन के मुख्य केंद्र के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। बीआईएस के अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र हैं - मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता, मौद्रिक नीति और विनिमय दरें, वित्तीय संस्थान और आधारभूत संरचना, वित्तीय बाजार, केंद्रीय बैंक गवर्नेंस तथा बैंकिंग और आर्थिक क्षेत्र से जुड़े कानूनी मुद्दे। इन अनुसंधानों का मुख्य उद्देश्य गवर्नरों की बैठकों तथा बीआईएस की समितियों को उन महत्त्वपूर्ण मुद्दों से संबंधित अपने कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने में सहायता करना है, जिनसे अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग समुदाय प्रभावित होते हैं।

बीआईएस गवर्नरों, केंद्रीय बैंकों के प्रतिनिधि अधिकारियों तथा मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता के विशेषज्ञों की नियमित रूप से बैठकें आयोजित करता है। इन बैठकों में विश्व अर्थव्यवस्था और वित्तीय बाजारों की गतिविधियों के बारे में विस्तार से विचार-विमर्श किया जाता है। इन बैठकों के माध्यम से बीआईएस सहभागियों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए एक प्रभावी मंच उपलब्ध कराता है जहाँ लिए गए नीतिगत निर्णयों से अंतरराष्ट्रीय वित्तीय समुदाय के चिंतन की दृष्टि और दिशा प्रभावित होती है। बैंक इन बैठकों के अलावा तकनीकी सहयोग, सूचना प्रौद्योगिकी समर्थित प्रणालियों, आंतरिक लेखापरीक्षा आदि विषयों पर विशेषज्ञों की बैठकें आयोजित कर वित्तीय समुदाय को सहयोग देने का काम भी करता है।

इसके अलावा बीआईएस केंद्रीय बैंकों तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों को अनेक वित्तीय सेवाएँ भी प्रदान करता है। इन सेवाओं में केंद्रीय बैंकों द्वारा अपने वैश्विक विदेशी मुद्रा भंडारों का बीआईएस के पास निवेश करना शामिल है। इसके साथ ही, बैंक विश्व के वित्तीय समुदाय के लिए विभिन्न वित्तीय लिखतों, मुद्रा बाजार लिखतों, ट्रेडिंग योग्य लिखतों (Tradable Instruments) से जुड़ी सेवाएँ तथा विदेशी मुद्रा और स्वर्ण संबंधी सेवाएँ भी प्रदान करता है। बैंक अंतरराष्ट्रीय वित्तीय समुदाय को मजबूत करने के लिए अन्य वित्तीय संस्थानों जैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व बैंक तथा अन्य क्षेत्रीय विकास बैंकों से जुड़कर आंकड़ों के प्रसारण, राजकोषीय, मौद्रिक और वित्तीय पारदर्शिता, बैंकिंग विनियमन और पर्यवेक्षण, प्रतिभूति और बीमा विनियमन, लेखांकन, लेखा-परीक्षा तथा कॉरपोरेट गवर्नेंस जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय मानकों के निर्धारण का महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस प्रकार वैश्विक अर्थव्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग को अपने अप्रतिम योगदानों से हमेशा नई दृष्टि और अभिनव दिशा प्रदान करने वाले, वैश्विक अर्थव्यवस्था और बैंकिंग क्षेत्र के हर उतार-चढ़ाव में अपनी सशक्त भूमिका निभाने वाले बैंक फॉर इन्टरनेशनल सेटलमेंट (बीआईएस) का विश्व के आर्थिक, वित्तीय और बैंकिंग इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

❍❍❍

वित्तीय संस्थाओं के स्वामित्व का स्वरूप
(31 मार्च 2012 की स्थिति के अनुसार)

संस्था	स्वामित्व	प्रतिशत
1	2	3
एक्जिम बैंक	भारत सरकार	100
नाबार्ड	भारत सरकार	99.3
	भारतीय रिज़र्व बैंक	0.7
एमएचबी	भारतीय रिज़र्व बैंक	100
सिडबी*	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	62.5
	बीमा कंपनियां	21.9
	वित्तीय संस्थाएं	5.3
	अन्य	10.3

*आईडीबीआई बैंक लिमिटेड (19.2 प्रतिशत), भारतीय स्टेट बैंक (15.5 प्रतिशत) और भारतीय जीवन बीमा निगम (14.4 प्रतिशत) सिडबी के तीन बड़े शेयरधारक है।

बासेल दिशा-निर्देशों की मुख्य-मुख्य बातें

डॉ. रमाकांत शर्मा
महाप्रबंधक (सेवानिवृत्त)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

बैंक और जोखिम

बैंक कई तरह के काम करते हैं। लेकिन, उनका प्रमुख काम जमाओं के रूप में जनता आदि से उधार लेना और व्यवसाय या उपभोग के लिए धन उधार देना है। बैंक यह जानते हुए भी ऋण देते हैं कि ऋण के रूप में दी गई राशि के डूबने या समय पर वसूल न होने का खतरा हमेशा मौजूद रहता है। यह जोखिम उठाना उनके काम का एक अनिवार्य हिस्सा है। साथ ही, बैंकों को जिस उतार-चढ़ाव वाले माहौल में काम करना पड़ता है, उसमें ये जोखिम और भी गंभीर रूप ले लेते हैं। इन जोखिमों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:-

I. ***ऋण संबंधी जोखिम –*** बैंक ने जो ऋण दिया है, उसे ऋण लेने वाला ब्याज सहित चुकाएगा या नहीं या चुकाने में देरी तो नहीं करेगा, इस बात का जोखिम हमेशा मौजूद रहता है। ऋण डूबे या उसकी चुकौती देर से हो, दोनों ही हालत में बैंक की आय पर विपरीत असर पड़ेगा और इसके परिणामस्वरूप वह अपनी देनदारियों को चुकाने में दिक्कत महसूस करेगा। इससे निश्चित तौर पर उसकी प्रतिष्ठा पर भी आंच आएगी।

II. ***बाजार संबंधी जोखिम –*** बाजार में होने वाले उतार-चढ़ाव किसी भी व्यवसाय की आय को प्रभावित कर सकते हैं। जहां तक बैंकों का संबंध है, इनमें बैंक के उत्पादों या सेवाओं की मांग में अचानक भारी कमी होना, ब्याज-दरों में कमी/वृद्धि होना, किसी वित्तीय लिखत के बाजार मूल्य में होने वाली कमी/वृद्धि आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए, ब्याज दरों में होने वाले परिवर्तनों से बैंकों की आय में भी परिवर्तन होगा। इसी तरह विनिमय दर (जैसे रुपये को डालर में बदलने की दर) में होने वाले परिवर्तन भी आय में कमी का कारण बन सकते हैं क्योंकि बैंक विदेशी मुद्रा में लेनदेन का काम भी करते हैं। इसके अलावा, बाजार जोखिम में निवेश जोखिम का भी समावेश होता है क्योंकि यह आशंका सदैव बनी रहती है कि निश्चित समय के लिए बैंकों के पास रखी हुई राशि या सावधि जमा की अवधि पूरी होने के बाद निवेशक फिर से उसे बैंक में निवेश करेगा या नहीं।

साथ ही, किसी नकद लेनदेन के लिए यदि नकदी का प्रबंध नहीं किया जा सके या फिर अपनी देनदारियां चुकाने के लिए बैंक पर्याप्त नकद राशि का प्रबंध न कर सके तो इससे भी उसकी आय और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुंचेगी।

III. ***परिचालन संबंधी जोखिम –*** बैंक के आंतरिक कार्यों को चलाने के लिए जो प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं, उनमें व्याप्त कमियों तथा नियंत्रण/निगरानी की दोषपूर्ण प्रणालियों के कारण उत्पन्न जोखिम भी हमेशा मौजूद रहते हैं। इनमें प्रणालियों का पर्याप्त न होना, प्रबंध तंत्र की असफलता, धोखाधड़ी, कानूनी शिकंजे, कर कानूनों में परिवर्तन के अलावा मानवीय भूलों से उत्पन्न जोखिम भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, कोई कर्मचारी गलती से कंप्यूटर का कोई ऐसा बटन दबा सकता है जिससे सारी फाइलें नष्ट हो जाएं और इससे मूल्यवान तथा जरूरी जानकारियां और आंकड़े नष्ट हो जाएं। इसके परिणामस्वरूप बैंक के कार्यों के संपादन/परिचालन में भारी रुकावट आ सकती है और बैंक की आय तथा प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंच सकता है।

जोखिम से बचाव

जोखिमों के उपर्युक्त स्वरूप को समझने के बाद इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुंचा जा सकता है कि बैंकों को इन जोखिमों से

बचने के लिए यथासंभव सभी उपाय करने होंगे। अब इस बात को भी आसानी से समझा जा सकता है कि किसी भी बैंक की सुरक्षा और मजबूती के लिए जोखिम प्रबंधन करना कितना जरूरी है। जोखिम प्रबंधन में शामिल हैं–

- **ऋण देने के लिए सीमा निर्धारित करना** – ताकि बेहिसाब ऋण देने से बचा जा सके और बैंक अनावश्यक जोखिम न उठाएं।
- **प्रतिरक्षा या बचाव करना** – कीमतों में उतार–चढ़ाव के जोखिम से बचने के लिए की गई व्यवस्था। यह एक स्थिति के जोखिम को दूसरे लेनदेन के जोखिम के साथ प्रतिसंतुलित करके की जाती है।
- **प्रारक्षित निधियां और प्रावधानीकरण** – अर्थात् समय पर काम आने के लिए अलग से निधियां रखना और जो ऋण डूब गए हों या डूबने वाले हों उनके लिए खाता–बहियों में प्रावधान करना।
- **पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करना** – पूंजी बैंकों की संपत्ति या आस्ति का वह हिस्सा है जिसे वापस नहीं लौटाया जाना होता है, इसलिए यदि किसी बैंक को हानि होती है तो उसके प्रतिरोधक के रूप में पूंजी हमेशा उपलब्ध रहती है। इसे देखते हुए यह बात सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है कि संभावित जोखिम से बचने के लिए बैंक के पास पर्याप्त पूंजी हो। यही कारण है कि प्रत्येक देश का केंद्रीय बैंक या विनियामक यह चाहता है कि बैंक जो जोखिम उठाते हैं उससे उत्पन्न संभावित हानि का सामना करने के लिए उनके पास पर्याप्त पूंजी मौजूद हो।

यह उल्लेखनीय है कि कोई बैंक जब ऋण देने के उद्देश्य से बचत खाते या अन्य किसी खाते में जमा स्वीकार करता है तो उस जमाराशि को लौटाने के लिए जहां उसकी देनदारी बढ़ जाती है, वहीं उस राशि को किसी को उधार दे देने से उसकी आस्ति या संपत्ति भी बढ़ जाती है। पर, इससे बैंक की पूंजी में कोई बढ़ोतरी नहीं होती। इस कारण दिए गए ऋण की तुलना में उसका पूंजी अनुपात कम हो जाता है। दूसरे शब्दों में, बैंक ऋण देकर जो जोखिम उठा रहा है, उसकी तुलना में उसकी पूंजी का अनुपात कम हो जाएगा। यदि बैंक पर एक निश्चित अनुपात में पूंजी रखने का अंकुश न लगाया जाए तो बैंक ज्यादा से ज्यादा उधार देकर ज्यादा से ज्यादा जोखिम उठाता रहेगा और एक स्थिति यह आ जाएगी कि उन जोखिमों का सामना करने के लिए बैंक के पास पर्याप्त पूंजी नहीं होगी और बैंक डूबने के कगार पर आ जाएगा या डूब जाएगा।

यहां इस बात पर भी चर्चा करना उपयुक्त रहेगा कि बैंकों की तेजी से बढ़ती ऋण आस्तियों अर्थात् बेहिसाब उधार देने पर अंकुश लगाने के लिए जहां उससे एक निश्चित मात्रा में पूंजी बनाए रखने के लिए कहा जा सकता है, वहीं अपनी देनदारियों की चुकौती के लिए उसे अलग से निधियां रखने के लिए भी कहा जा सकता है। अत: जहां पूंजी पर्याप्तता की अपेक्षाएं बैंकों की ऋण आस्तियों पर लागू होती हैं, वहीं प्रारक्षित निधियों संबंधी अपेक्षाएं बैंकों की देनदारियों पर लागू होती हैं। इसका उद्देश्य यही होता है कि बैंकों को जिन जोखिमों का सामना करना पड़ सकता है, उनके लिए उनके पास पर्याप्त पूंजी हो और अपनी देनदारियों को चुकाने के लिए उनके पास अलग से पर्याप्त निधियां मौजूद हों ताकि बैंकों की नींव सुदृढ़ बनी रहे और उनकी प्रतिष्ठा पर भी कोई विपरीत असर न पड़े।

उपर्युक्त चर्चा के बाद हम निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण तकनीकी शब्दों को आसानी से समझ सकते हैं।

जोखिम भारित अस्तियां (Risk Weighted Assets)

जोखिम वाली आस्तियों की राशि। दूसरे शब्दों में, वह राशि जो किसी बैंक ने अपने कारोबार के सिलसिले में जोखिम में डाली हुई हो। मुख्यत: बैंकों द्वारा दिए गए उधार इसमें शामिल होते हैं। क्योंकि ब्याज सहित उनकी वसूली या फिर समय पर वसूली सुनिश्चित नहीं होती। यह उल्लेखनीय है कि किसी ऋण आस्ति या दिए गए उधार की वसूली में ज्यादा जोखिम हो सकता है और किसी में कम। अत: ऐसी आस्तियों पर क्रमश: अधिक या कम जोखिम भार कहलाएगा। इस प्रकार, जोखिम वाली समस्त आस्तियों (उधारों) की राशि किसी बैंक की जोखिम भारित आस्तियां कहलाती हैं।

पूंजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio)

इसका तात्पर्य जोखिम वाली आस्तियों (दिए गए उधारों) के मुकाबले बैंक के पास उपलब्ध खुद की पूंजी और प्रारक्षित निधियों

के अनुपात से है। दूसरे शब्दों में, यह जोखिम से बचने के लिए किसी बैंक द्वारा की जाने वाली पूंजीगत व्यवस्था का परिचायक है। यदि किसी बैंक का पूंजी पर्याप्तता अनुपात अधिक है तो इसका अर्थ यह होगा कि उसके पास अनुमानित जोखिम का सामना करने के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध है। पूंजी पर्याप्तता अनुपात को किसी बैंक के जोखिम वाले उधारों (आस्तियों) के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसकी गणना निम्नानुसार की जाती है-

$$\textbf{पूंजी पर्याप्तता अनुपात} = \frac{\text{पात्र पूंजी}}{\text{जोखिम भारित आस्तियां}} \times 100$$

माना किसी बैंक की पात्र पूंजी (टियर I और टियर II पूंजी, जिसकी व्याख्या इस लेख में आगे की गई है) 20 करोड़ रुपये की है और उसके जोखिमपूर्ण उधार या जोखिमपूर्ण आस्तियां 400 करोड़ रुपये हैं तो पूंजी पर्याप्तता अनुपात होगा - 20/400 = 1/20 x 100 या 5 प्रतिशत।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि पूंजी पर्याप्तता अनुपात से यह पता चलता है कि बैंकों के पास जोखिम या अप्रत्याशित हानि का सामना करने के लिए पर्याप्त पूंजी मौजूद है या नहीं। यदि जोखिम अधिक है तो इसके लिए अधिक पूंजी और यदि कम है तो उसी अनुपात में कम पूंजी की जरूरत होगी। इस प्रकार, पूंजी के स्तर से बैंक की मजबूती या कमजोरी को आंका जा सकता है।

भारतीय बैंक और अंतरराष्ट्रीय मानक

भारत में बैंकों की नींव सुदृढ़ बनाने और इस हेतु उन्हें जोखिमों का सामना करने में सक्षम बनाने हेतु वर्ष 1992 में विवेकशील मानदंड अपनाए गए, जिनमें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बैंकों द्वारा अपनाए जा रहे पूंजी पर्याप्तता संबंधी मानदंड या दिशानिर्देशों को लागू किया जाना शामिल है। ये मानदंड बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति द्वारा निर्धारित किए गए थे।

बासेल समिति क्या है?

अक्सर यह मान लिया जाता है कि बासेल नाम के किसी व्यक्ति की अध्यक्षता में गठित समिति के कारण इसे बासेल समिति के नाम से जाना जाता है, पर ऐसा है नहीं। बासेल स्विट्ज़रलैंड के एक शहर का नाम है। यहां विभिन्न देशों के केंद्रीय बैंकों का एक संगठन ''बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट (बीआईएस)'' के नाम से कार्यरत है। यह बैंक केंद्रीय बैंकों के बैंक के तौर पर कार्य करता है तथा अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय सहयोग विकसित करने में सहायता करता है। बासेल स्थित बीआईएस ने बैंकिंग पर्यवेक्षण पर जिस समिति का गठन किया है, उसे ही बासेल समिति के नाम से जाना जाता है। यह समिति बैंकिंग पर्यवेक्षण संबंधी मामलों पर नियमित सहयोग के लिए एक अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान करती है। इसका उद्देश्य बैंकों के पर्यवेक्षण से संबंधित महत्त्वपूर्ण मुद्दों की समझ विकसित करना और विश्व भर में बैंकिंग पर्यवेक्षण को और तर्कसंगत तथा बेहतर बनाना है। इस हेतु यह समिति अपने सदस्य केंद्रीय बैंकों से विचार-विमर्श करती है, उनकी समस्याओं और दृष्टिकोण को समझती है और फिर ऐसे उपाय विकसित करती है जिनसे सदस्य देशों में बैंक-पर्यवेक्षण को बेहतर बनाया जा सके।

बासेल करार और बासेल मानदंड क्या है?

उक्त समिति ने वर्ष 1988 में पहली बार यह अवधारणा लागू की थी कि बैंकों के प्रमुख काम अर्थात् ऋण देने में मौजूद जोखिम का सामना करने के लिए उनके पास अपनी पर्याप्त पूंजी होनी चाहिए। इस अवधारणा को ही ''पूंजी पर्याप्तता'' के नाम से जाना जाता है। चूंकि यह अवधारणा समिति के सभी सदस्य केंद्रीय बैंकों की सहमति से लागू की गई, अतः इसे ''बासेल समझौता या करार'' कहा गया और इस हेतु समिति ने जो मानदंड तय किए उन्हें ''बासेल मानदंड या दिशानिर्देश'' के नाम से जाना गया। इन मानदंडों को और बेहतर बनाने के उद्देश्य से वर्ष 2004 में तथा उसके बाद 2010 में नए मानदंड/दिशानिर्देश जारी किए गए जिन्हें क्रमशः बासेल-II और बासेल-III के नाम से जाना जाता है। अब हम इन तीनों मानदंडों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

बासेल-I मानदंड

जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्विट्ज़रलैंड के बासेल नामक शहर में स्थित बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट ने बैंकिंग पर्यवेक्षण के लिए जो समिति (बासेल समिति) गठित की थी, उसके सदस्यों के बीच पहली बार वर्ष 1988 में बैंकों में पूंजी पर्याप्तता संबंधी मानदंडों को लेकर सहमति बनी थी। बासेल समझौता या करार के नाम से विख्यात पूंजी पर्याप्तता संबंधी ये दिशानिर्देश या नियम या

मानदंड वर्ष 1988 से ही बैंकों पर औपचारिक रूप से लागू कर दिये गए। सदस्य देशों के बैंकों द्वारा वर्ष 1992 तक इनका अनुपालन कर लिया जाना था। बैंकिंग के इतिहास में यह पहली बार हुआ था कि बैंकों को अपने द्वारा दिए गए उधारों में निहित जोखिम को देखते हुए एक निर्धारित अनुपात में न्यूनतम पूंजी बनाए रखने के लिए बाध्य किया गया।

इन दिशानिर्देशों में बैकों से यह अपेक्षा की गई कि वे अपनी जोखिम वाली आस्तियों यानि दिए गए उधारों के कम से कम 8 प्रतिशत के बराबर पूंजी (टियर-I और II पूंजी) अनिवार्यत: बनाए रखें।

टियर-I और टियर-II पूंजी क्या है?

बासेल दिशानिर्देशों में जब बैंकों से यह कहा गया कि वे अपने जोखिमपूर्ण उधारों के संदर्भ में 8 प्रतिशत का न्यूनतम पूंजी अनुपात प्राप्त करें और उसे बनाए रखें तो इसमें दो प्रकार की पूंजी को शामिल किया गया। तकनीकी शब्दों में, पहले प्रकार की पूंजी को टियर-I तथा दूसरे प्रकार की पूंजी को टियर-II पूंजी का नाम दिया गया।

पहले प्रकार की पूंजी यानि टियर-I में मोटे तौर पर शामिल हैं :

i. बैंकों की चुकता पूंजी (शेयरों का बही मूल्य)।

ii. सांविधिक रूप से रखी गई प्रारक्षित निधियां।

iii. बैंकों की चालू तथा पिछले वर्षों की ऐसी आय जिसे न तो शेयरधारकों को लाभांश के रूप में बांटा गया हो और न ही उसे अधिशेष खाते में अंतरित किया गया हो।

iv. बैंकों द्वारा उनकी सहायक कंपनियों/संस्थाओं में लगाई गई पूंजी।

v. अमूर्त आस्तियों में निवेश। अमूर्त आस्तियां वे होती हैं जिनका कारोबारी मूल्य होता है, पर कोई मूर्त या भौतिक स्वरूप नहीं होता। उदाहरण के लिए, साख, प्रारंभिक निर्माण व्यय, विकास संबंधी खर्चे आदि।

यहां यह उल्लेखनीय है कि टियर-I पूंजी जोखिम वाले उधारों या जोखिम भारित आस्तियों के कम से कम 4 प्रतिशत के बराबर होनी चाहिए। शेष टियर-II से पूरा करना होगा। टियर-I पूंजी को पूंजी का अधिक विश्वसनीय रूप माना जाता है।

दूसरे प्रकार की पूंजी यानि टियर-II में मोटे तौर पर शामिल हैं :

i. हानि के लिए रखी गई प्रारक्षित निधियां।

ii. गौण ऋण (सबॉरडिनेट ऋण) - इसमें ऐसे ऋण शामिल होते हैं जिनकी चुकौती तब तक नहीं की जाती जब तक पिछले सभी ऋणों की चुकौती न हो जाए।

iii. ऐसी प्रारक्षित निधियां जिनकी घोषणा नहीं की गई हो।

iv. बैंक के परिसर और बेची जाने योग्य प्रतिभूतियों के बाजार मूल्य में वृद्धि हो जाने के कारण सृजित प्रारक्षित निधियां- जैसे बैंक के किसी भवन का बहियों में मूल्य 10 करोड़ रुपये हो, पर इस समय उसका बाजार मूल्य बढ़कर 20 करोड़ रुपये हो गया हो तो बैंक उस भवन का पुन: मूल्यांकन कर सकता है, इससे उसकी संपत्तियों का कुल मूल्य 10 करोड़ रुपये बढ़ जाएगा।

v. ऐसे डिबेंचर जिन्हें आंशिक या पूर्ण रूप से शेयरों में परिवर्तित किया जा सकता हो।

vi. निवेशों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव के लिए रखी गई प्रारक्षित निधियां।

vii. मानक आस्तियों के लिए किए गए सामान्य प्रावधान तथा देश विशेष में दिए गए उधारों से संबंधित जोखिम के लिए किए गए प्रावधान।

जोखिम भारित आस्तियों की गणना कैसे हो?

ऊपर हमने यह देखा है कि जोखिम वाली आस्तियों के संदर्भ में ही न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता अनुपात की गणना की जानी है। अत: सबसे पहले तो यह देखना होगा कि किसी बैंक की जोखिम भारित आस्तियां कितनी हैं।

बासेल-I दिशानिर्देशों में सिर्फ ऋण जोखिम को ही शामिल किया गया था। इनमें जमानती और गैर-जमानती दोनों प्रकार के जोखिमपूर्ण उधार शामिल हैं। यह सामान्य समझ की बात है कि

जमानती उधारों की वसूली में कम जोखिम (विशेषकर विलंब से भुगतान का जोखिम) और गैर-जमानती उधारों (जैसे शैक्षणिक या उपभोग ऋण जैसे व्यक्तिगत ऋण) की वसूली में अधिक जोखिम होगा। इस बात पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है कि इस कम और अधिक जोखिम को ही जोखिम भार कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, जमानती उधार/आस्तियां कम जोखिम भार वाली होंगी क्योंकि उनकी वसूली में कम जोखिम है और गैर-जमानती उधार/आस्तियां अधिक जोखिम भार वाली होंगी क्योंकि उनकी वसूली में ज्यादा जोखिम मौजूद है। उदाहरण के लिए, यदि जमानती उधारों की वसूली में हम 50 प्रतिशत का जोखिम मानते हैं और गैर-जमानती उधारों की वसूली में 100 प्रतिशत का, तो इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक 1 रुपये से जमानती उधार पर 0.5 (50 प्रतिशत) और प्रत्येक 1 रुपये के गैर-जमानती उधार पर 1.0 (शत प्रतिशत) का जोखिम भार है। इस उदाहरण के आधार पर किसी बैंक की जोखिम भारित आस्तियों की गणना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

आस्तियों का स्वरूप	**जोखिम भार**	**राशि**
जमानती उधार	0.5	200 लाख रुपये
गैर-जमानती उधार	1.0	300 लाख रुपये
कुल उधार आस्तियां		**500 लाख रुपये**

इस उदाहरण में कुल जोखिम भारित आस्तियां होंगी -

जमानती उधार 0.5 X 200 = 100 लाख रुपये
(200 में से 100 लाख रु. जोखिमपूर्ण)

गैर-जमानती उधार 1.0 X 300 = 300 लाख रुपये
(संपूर्ण उधार राशि जोखिमपूर्ण)

कुल जोखिम भारित आस्तियां = 400 लाख रुपये
(500 लाख रुपये में से)

इस उदाहरण में चूंकि जोखिम भारित आस्तियां 400 लाख रुपये की हैं अत: बैंक को उसका 8 प्रतिशत अर्थात् 32 लाख रुपये की न्यूनतम पूंजी रखनी होगी। इसमें जोखिम भारित कुल 400 लाख रुपए की आस्तियों का कम-से-कम 4 प्रतिशत अर्थात 16 लाख रुपए की टियर-I पूंजी रखनी होगी।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि बैंकों के लिए पूंजी पर्याप्तता के न्यूनतम मानदंड तय करने की दिशा में बासेल-I सबसे पहला प्रयास था। वर्ष 1998 में तय किए गए उक्त मानदंडों/दिशानिर्देशों को बैंकों द्वारा वर्ष 1992 तक पूरा कर लिया जाना था।

बासेल-II मानदंड

बासेल-I की कमियों को दूर करने के लिए बीआईएस के सदस्य देशों के बीच बैंक पर्यवेक्षण संबंधी नए मानदंड अपनाने का करार वर्ष 1999 में किया गया। इसे बासेल-II करार के नाम से जाना जाता है। इस करार के अनुक्रम में वर्ष 2004 में पूंजी पर्याप्तता संबंधी नए दिशानिर्देश जारी किए गए, जिनका अनुपालन वर्ष 2006 तक कर लिया जाना था।

बासेल-II के अंतर्गत जारी किए गए दिशानिर्देशों को बासेल-I के दिशानिर्देशों में सुधार के रूप में देखा जा सकता है। जहां बासेल-I में सिर्फ "न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं" की ही बात की गई थी, वहीं बासेल-II में बैंकों की क्रियाविधियों की पर्यवेक्षी समीक्षा तथा उनके कार्यकलापों में और पारदर्शिता लाने के लिए अधिक प्रकटीकरण मानदंडों को शामिल किया गया। इस प्रकार, बासेल-II के मानदंड मुख्यत: तीन बातों पर आधारित हैं, जिन्हें इसके 3 स्तंभों (pillars) के रूप में जाना जाता है। ये हैं -

स्तंभ-I न्यूनतम पूंजी अपेक्षाएं या पूंजी पर्याप्तता अपेक्षाएं :

इसके अंतर्गत बैंकों को अपनी जोखिम वाली आस्तियों का कम से कम 8 प्रतिशत खुद की पूंजी बनाए रखनी होगी। इस अपेक्षा को ही पूंजी पर्याप्तता अनुपात (Capital Adequacy Ratio) अथवा जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात [Capital to Risk weighted Assets Ratio (CRAR)] कहा जाता है।

बैंकों के पास न्यूनतम कितनी पूंजी होनी चाहिए, इसकी गणना के लिए बासेल-I में केवल ऋण जोखिम को ही विचार में लिया गया था। लेकिन, बासेल-II में इस बात पर जोर दिया गया कि ऋण जोखिम के साथ-साथ बैंकों को बाजार जोखिम और परिचालन जोखिम भी उठाना पड़ता है। इसलिए उनके लिए पूंजी पर्याप्तता का निर्धारण करने हेतु सिर्फ ऋण जोखिम को ही नहीं, बल्कि बाजार जोखिम और परिचालन जोखिम को भी विचार में

लिया जाना होगा ताकि बैंकों के समक्ष मौजूद वास्तविक या कुल जोखिमों को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था की जा सके।

एक और बात जो इस संबंध में समझने की है, वह यह है कि जहां बासेल-I में बैंकों की जोखिम वाली सभी आस्तियों पर एक समान जोखिम भार (जैसे बिना किसी अन्य बात या तथ्य को विचार में लिए सभी गैर-जमानती उधारों पर 100 प्रतिशत का भार) लगाया जाता था, वहीं बासेल-II में इन आस्तियों से संबद्ध ऋण जोखिम के अनुपात में उन्हें जोखिम भारित करने का प्रावधान किया गया है। जिस आस्ति (दिए गए उधार) में ज्यादा जोखिम है उस पर अधिक जोखिम भार और जिसमें तुलनात्मक रूप से कम जोखिम है, उस पर कम जोखिम भार लगाया जाएगा। किस आस्ति अर्थात् किस उधार पर कम जोखिम भार लगाया जाना है और किस पर अधिक, यह बैंक या तो खुद तय कर सकते हैं या फिर किसी बाहरी एजेंसी से तय करा सकते हैं। हमारे देश में पहले चरण में यह CARE (Credit Analyis and Research Ltd.) और ICRA (Investment Information and Credit Rating Agency of India) जैसी मान्यता प्राप्त रेटिंग एजेंसियों द्वारा तय किया जाएगा। इसका उद्देश्य यह है कि एक बाहरी और प्रोफेशनल एजेंसी बैंकों की विभिन्न ऋण आस्तियों में निहित जोखिम की मात्रा का निष्पक्ष तौर पर निर्धारण कर सकेगी।

स्तंभ-II पर्यवेक्षी समीक्षा

इसका मतलब यह है कि बैंक पूंजी पर्याप्तता से संबंधित मानदंडों का पालन कर रहे हैं या नहीं, इसकी पर्यवेक्षकों द्वारा समीक्षा की जाए ताकि कमियों पर समय रहते ध्यान दिया जा सके और जरूरी सुधार किए जा सकें। ऐसी पर्यवेक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत यह सुनिश्चित किया जाएगा कि -

- बैंक के कारोबार में मौजूद समस्त जोखिमों के लिए उसके पास पर्याप्त पूंजी उपलब्ध है।
- बैंक अपने जोखिमों का आकलन करने और उन पर निगरानी रखने के लिए जोखिम प्रबंधन की बेहतर तकनीकें विकसित कर रहा है और उनका कारगर उपयोग कर रहा है।

पर्यवेक्षक से यह भी देखने की अपेक्षा की जाती है कि बैंक अपने समस्त जोखिमों के परिप्रेक्ष्य में पूंजी संबंधी जरूरतों का ठीक-ठीक आकलन कर रहा है। यदि नहीं, तो वह यह बात बैंक के ध्यान में तुरंत लाएगा और उससे इस संबंध में उपयुक्त कदम उठाने के लिए कहेगा ताकि बासेल दिशानिर्देशों के अनुसार जितनी न्यूनतम पूंजी चाहिए, उससे कम न हो जाए। वास्तव में, पर्यवेक्षक का प्रयास यही रहेगा कि बैंक न्यूनतम पूंजी से अधिक पूंजी स्तर प्राप्त करने और उसे बनाए रखने में समक्ष बनें।

बेहतर जोखिम प्रबंध प्रणालियां अपनाने वाले बैंकों को पुरस्कृत भी किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने पर्यवेक्षी समीक्षा करने के लिए कई कदम उठाए हैं।

स्तंभ-III बाजार अनुशासन

बाजार अनुशासन से तात्पर्य यह है कि बैंकों के व्यवसाय के संबंध में कोई बात गलत ढंग से छुपाई न जाए। इस हेतु बैंकों को निम्नलिखित के बारे में अपनी स्थिति **अनिवार्य रूप से** प्रकट करनी होगी -

- उनका पूंजी ढांचा क्या और कैसा है?
- जोखिमों की माप करने के लिए उन्होंने क्या व्यवस्था की है?
- उनके जोखिमों का स्वरूप क्या है?
- पूंजी पर्याप्तता की स्थिति क्या है?

इस प्रकार, ''बाजार अनुशासन'' यह सुनिश्चित करने के लिए लागू किया गया है कि बैंकों की वास्तविक स्थिति जनता के सामने आए और बैंक अपना व्यवसाय सुरक्षित, सुदृढ़ और कारगर तरीके से चलाने के लिए प्रेरित हों। इस हेतु बैंकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे उपर्युक्त के संबंध में अपनी स्थिति अर्धवार्षिक रूप से (वर्ष में दो बार) या यथोचित रूप से अधिक बार प्रकट (प्रकाशित) करें, ताकि उनकी पूंजी पर्याप्तता की सही स्थिति सामने आ सके।

बासेल-III

बासेल-III मानदंड दिसंबर 2010 में जारी किए गए, जिन्हें बैंकों द्वारा विभिन्न चरणों में 2011 से लेकर 2019 तक पूरा किया जाना है।

बासेल-I और बासेल-II की तरह बासेल-III भी बैंकों और बैंकिंग प्रणाली को और सुदृढ़ बनाने के लिए विश्व स्तर पर उठाया गया ऐसा कदम है जिसके अंतर्गत बैंकों के लिए पूंजी पर्याप्तता संबंधी नए मानदंड निर्धारित किए गए हैं। लेकिन, इसमें एक कदम आगे बढ़कर चलनिधि यानि नकदी में तुरंत परिवर्तित होने वाली आस्तियों की माप, मानक और निगरानी संबंधी दिशानिर्देश शामिल किए गए हैं।

बासेल – III की जरूरत क्यों पड़ी ?

यह प्रश्न उठ सकता है कि बासेल-II दिशानिर्देशों को 2006 (भारत में 2009) तक लागू किया जाना था, फिर ऐसी क्या जरूरत पड़ी कि वर्ष 2010 में बासेल समिति को नए दिशानिर्देश जारी करने पड़े। वास्तव में, इसी बीच में पूरे विश्व को एक अभूतपूर्व वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा जिसमें अमरीका सहित कई देशों में बहुत मजबूत समझे जाने वाले बैंक भी एक-एक कर धराशायी होते गए और विश्व भर में पूरी बैंकिंग व्यवस्था के चरमरा जाने का खतरा पैदा हो गया। इससे बैंकों की संकट का सामना करने की क्षमताओं पर गंभीर सवाल खड़े हुए और यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें सुदृढ़ बनाने के लिए नए उपाय किए जाएं। इसी कारण से बासेल-III की आवश्यकता महसूस की गई।

बासेल-III के उद्देश्य

उपर्युक्त को देखते हुए बासेल-III के निम्नलिखित दो मुख्य उद्देश्य हैं:

- अचानक आए संकट का सामना करने और आघात सहन करने के लिए बैंकों और समूचे बैंकिंग क्षेत्र की क्षमता को बढ़ाना
- बैंकों के संकट को समूची अर्थव्यवस्था में फैलने से रोकना या उसके प्रभाव को कम करना।

उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बासेल-III में निम्नलिखित क्षेत्रों में आधारभूत परिवर्तन करने का प्रस्ताव किया गया है:

- प्रत्येक बैंक के स्तर पर
- पूरी बैंकिंग प्रणाली के स्तर पर।

बासेल-III दिशानिर्देश

बासेल-III के दिशानिर्देशों में बासेल-II के तीनों स्तंभों अर्थात् न्यूनतम पूंजी अपेक्षा, पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया और बाजार अनुशासन को ही आधार बनाया गया है। लेकिन, इन तीनों ही स्तंभों के अंतर्गत और कड़े तथा नए मानदंड निर्धारित करते हुए उन्हें और मजबूती देने का प्रयास किया गया है। इन दिशानिर्देशों को सार रूप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है।

- **टियर-I की न्यूनतम पूंजी अपेक्षा में वृद्धि –** इसे 6 प्रतिशत कर दिया गया है, जिसे तीन चरणों में प्राप्त किया जाना है। ये तीन चरण हैं:

  1 जनवरी 2013 से 4.5 प्रतिशत

  1 जनवरी 2014 से 5.5 प्रतिशत

  1 जनवरी 2015 से 6.0 प्रतिशत

- **पूंजी संरक्षण बफर (Capital conservation Buffer) –** अचानक होने वाले वित्तीय और आर्थिक संकटों से उत्पन्न दबावों/हानियों को झेलने के लिए यह एक बिलकुल नया प्रावधान है। बैंकों से कहा गया है कि वे इस हेतु अलग से 2.5 प्रतिशत पूंजी रखेंगे जिसे "पूंजी संरक्षण बफर" का नाम दिया गया है। यह बफर साधारण शेयरों (इक्विटी) में से ही बनाया जाएगा। इसका उपयोग वित्तीय और आर्थिक संकट के दौरान ही किया जा सकेगा। इस प्रकार का कोई भी दिशानिर्देश बासेल-I या II में नहीं था। अत: स्पष्ट है कि यह बिलकुल नया दिशानिर्देश है।

- **प्रतिचक्रीय पूंजी बफर (countercylical capital buffer) –** प्रत्येक अर्थव्यवस्था में तेजी और उसके बाद मंदी के ऐसे दौर नियमित रूप से आते रहते हैं जिन्हें चाह कर भी रोका नहीं जा सकता। लेकिन, उनका सामना करने और उनकी तीव्रता कम करने के लिए पहले से तैयार रहा जा सकता है। इस दृष्टि से बैंकों को सक्षम बनाने के लिए बासेल-III में बैंकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे इसके लिए अलग से कुछ पूंजी सुरक्षित

रखें। इसे ही ''प्रतिचक्रीय पूंजी बफर'' का नाम दिया गया है।

संबंधित देश की परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्येक बैंक को अपनी साधारण इक्विटी अथवा हानियों को झेलने के लिए रखी गई अन्य पूंजी के 0 प्रतिशत से लेकर 2.5 प्रतिशत के दायरे में एक प्रतिचक्रीय बफर रखना होगा। देखा जाए तो यह ''पूंजी संरक्षण बफर'' का ही विस्तार है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि यह बफर रखना अनिवार्य न होकर संबंधित देश के केंद्रीय बैंक के विवेक पर छोड़ दिया गया है। जब भी केंद्रीय बैंक यह महसूस करेगा कि बैंक बहुत ज्यादा उधार देकर बहुत ज्यादा जोखिम उठा रहे हैं तो वह उनसे 2.5 प्रतिशत तक की यह अतिरिक्त पूंजी रखने के लिए कह सकता है।

चलनिधि मानक (liquidity standard)

जरूरत पड़ने पर बैंकों के पास नकदी और आसानी से नकदी में परिवर्तित होने वाली आस्तियों की कमी हो इसके लिए बासेल-III के दिशानिर्देशों में चलनिधि कवरेज अनुपात (Liqidity Coverage Ratio) को भी पहली बार शामिल किया गया है। यह 1 जनवरी 2015 से लागू होगा। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जब बैंक नकदी की घोर कमी महसूस करे तो कम से कम एक महीने तक उसका सामना करने के लिए उसके पास ऐसी पर्याप्त आस्तियां उपलब्ध हों जिन्हें आसानी से और तत्काल नकदी में परिवर्तित किया जा सके। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि नकदी की कमी के संकट के समय कम से कम एक माह नकद भुगतान के लिए बैंक के पास नकदी की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु यह चलनिधि मानक निर्धारित किया गया है।

इसके अलावा, बैंकों से यह भी अपेक्षा की गई है कि वे अपने कार्यकलापों के लिए नकदी और चलनिधि की निरंतर कमी न होने देने के लिए और इस सबंध में लगातार निगरानी रखने के लिए उपयुक्त प्रणालियां विकसित करें।

लीवरेज अनुपात (Leverage Ratio)

उपर्युक्त सभी उपायों के अनुपूरक के तौर पर बासेल-III में यह अपेक्षा भी की गई है कि बैंक अपनी उन आस्तियों के 3 प्रतिशत का एक अतिरिक्त ''लीवरेज अनुपात'' भी बनाए रखें जिनमें कोई जोखिम निहित नहीं है। बैंकों की जिन आस्तियों में कोई जोखिम निहित नहीं होता, उनके उदाहरण हैं- नकदी, अंतर-बैंक उधार, केंद्रीय बैंक के पास जमाराशियां आदि, इस संबंध में अनुपालन 2013 से लेकर 2017 के बीच कर लिया जाना चाहिए।

न्यूनतम कुल पूंजी अनुपात (Minimum Total Capital Ratio)

हर बैंक को अपनी जोखिम वाली आस्तियों (उधारों) के प्रति कम से कम 8 प्रतिशत पूंजी रखनी होगी। इस प्रकार, इस संबंध में बासेल-II की अपेक्षाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। लेकिन, ''पूंजी संरक्षण बफर'' लागू किए जाने के कारण वास्तव में अब हर बैंक को अपनी जोखिम वाली आस्तियों की कुल मिला कर कम से कम 10.5 प्रतिशत (8 प्रतिशत न्यूनतम पूंजी अपेक्षा और 2.5 प्रतिशत पूंजी संरक्षण बफर = 10.5 प्रतिशत) पूंजी बनाए रखनी होगी। इसमें से 8.5 प्रतिशत अनिवार्य रूप से टियर-I पूंजी होनी चाहिए। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि इन अनिश्चितताओं से भरे विश्व में अपना अस्तित्त्व बनाए रखने के लिए बैंकों को कुशल जोखिम प्रबंधन करना ही होगा। पिछले वर्षों में विश्वव्यापी वित्तीय संकट के कारण जिस प्रकार बड़े और मजबूत समझे जाने वाले बैंक धराशायी हुए हैं, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बैंकों का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि वे अपने जोखिम का प्रबंधन कारगर ढंग से करते हैं या नहीं। इस संदर्भ में, बासेल दिशानिर्देश बैंकों को अपने जोखिमों का आकलन करने और उनका सामना करने के लिए तैयार रखने में अहम् भूमिका निभा रहे हैं। विश्व की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप बासेल समिति ने अब तक दो बार अपने दिशानिर्देशों में परिवर्तन करते हुए बासेल-II और III के रूप में सुधारित मानदंड जारी किए हैं। वास्तव में, दिशानिर्देशों के जरिए बासेल समिति बैंकों को उस रास्ते पर ले जाने का प्रयास कर रही है जहां वे अपने स्वयं के हित में सतर्कता के साथ जोखिम प्रबंधन करने के लिए प्रवृत्त हों और अपनी पूंजी अपेक्षाओं को निम्न स्तर पर ला सकें।

OOO

बासेल-II तथा बासेल-III : एक तुलनात्मक परिचय

विजय प्रकाश श्रीवास्तव
संकाय सदस्य
प्रबंधन विकास संस्थान, मुंबई

व्यक्ति चाहे या न चाहे उसे कदम-कदम पर जोखिमों का सामना करना पड़ता है। यह बात संगठनों के लिए भी सच है। अगर हम करीब से देखें तो पाएंगे कि व्यापारिक संगठन जोखिम में ही लाभ के अवसर ढूंढ़ते हैं। इसका आशय यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि इन संगठनों द्वारा जोखिम को जान-बूझ कर न्योता दिया जाता है। वास्तव में इनकी कोशिश यह रहती है कि जोखिम से होने वाले नुकसान को कम से कम रखते हुए अधिक से अधिक लाभ कैसे कमाया जाए। इस प्रकार जोखिम प्रबंधन ऐसे सभी संगठनों की कार्य प्रणाली का अहम् हिस्सा है।

एक देश की अर्थव्यवस्था को संभालने और इसके विकास में बैंकों की भूमिका से हम सभी परिचित हैं। बैंकिंग प्रणाली विभिन्न स्तरों पर अपना कार्य करती है। अपने देश भारत को लें तो हमारे यहाँ केंद्रीय बैंक के रूप में भारतीय रिज़र्व बैंक है। नाबार्ड और एक्ज़िम बैंक जैसे विकास बैंक हैं फिर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, निजी बैंक, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक, ग्रामीण बैंक आदि हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक देश में बैंकिंग कारोबार का विनियमन करता है। इसका उद्देश्य देश की बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ बनाना, बैंकों में जोखिम प्रबंधन प्रणाली को मजबूत करना तथा बैंकों के ग्राहक वर्ग के हितों की रक्षा सुनिश्चित करना है।

बैंकिंग कारोबार की अपनी विशिष्टताएँ हैं और अन्य किसी भी कारोबार की तुलना में इसमें संवेदनशीलता ज्यादा है। बैंक जनता से जमाराशियां एकत्र करते हैं और इसी का बड़ा हिस्सा ऋण के रूप में वितरित करते हैं। बैंकों के और भी कार्य हैं पर कुल मिलाकर बैंकों का कारोबार पैसों का है वह भी वित्तीय मध्यस्थ के रूप में। इस प्रकार से बैंकों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है और जरूरी हो जाता है कि वे बहुत सावधानी से कार्य करें ताकि ग्राहकों का धन सुरक्षित रहे। सुरक्षा का एक पहलू यह है कि जमाकर्ताओं का धन उनकी जरूरत के अनुसार समय पर लौटाने की व्यवस्था होनी चाहिए और जो राशि ऋण के रूप में दी गई है उससे जुड़े जोखिमों के लिए भी प्रावधान होना चाहिए। कुछ हद तक आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलननिधि अनुपात (एसएलआर) भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में इस आवश्यकता को पूरा करते हैं।

बैंकिंग कारोबार में जोखिम प्रबंधन किसी देश की चिंता नहीं है बल्कि यह अंतरराष्ट्रीय विमर्श का विषय रहा है। बैंक केंद्रीय बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार अपने स्तर पर जोखिम प्रबंधन के तरीके अपनाते रहे हैं इसके साथ उन्हें कुछ अंतरराष्ट्रीय मानकों का भी पालन करना होता है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हैं बासेल मानक।

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति, जिसे बीसीबीएस के संक्षिप्त नाम से जाना जाता है, 1975 में 10 देशों के समूह (जी-10) द्वारा गठित की गई थी। समिति का मुख्य उद्देश्य बैंकिंग विनियमन व पर्यवेक्षण प्रणाली में सुधार लाना तथा विभिन्न देशों में इस हेतु अपनाई जाने वाली प्रणालियों के बीच के अंतर को कम करना है। इस समिति की संस्तुतियों के पीछे कोई विधिक शक्ति नहीं है और ये जी-10 देशों के अलावा अन्य देशों पर बाध्यकारी नहीं हैं। परन्तु अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक किसी देश की बैंकिंग प्रणाली का आकलन करते समय बासेल मानकों को बेंचमार्क मानते हैं और इससे इन मानकों के महत्त्व को समझा जा सकता है।

1988 में बासेल समिति ने बैंकों के लिए पूंजी मापन की एक प्रणाली शुरू की जिसे बासेल पूंजी समझौता कहा गया। इसके तहत न्यूनतम 8% के पूंजी मापन के साथ ऋण जोखिम मापन का ढांचा लागू करने की व्यवस्था थी। इसमें 8% पूंजी पर्याप्तता के मानक हेतु पूंजी को कुल आस्तियों से विभाजित करने की बजाए जोखिम भारित आस्तियों को ही गणना में लिया गया था। समझौते में तुलन पत्र आस्तियों के लिए 0 से 100% का जोखिम भार तय किया गया था और आस्ति की कीमत इसके मूल्य को जोखिम भार से गुणा करके निकाली जाती थी। तुलन पत्र से बाहर की मदों हेतु

भी ऋण एक्सपोज़र की गणना की जानी थी। 1998 का बासेल समझौता 1992 में लागू हुआ था। 1996 में संशोधन कर इसमें बाज़ार जोखिम को भी सम्मिलित किया गया। इसके बावजूद यह महसूस किया जा रहा था कि बासेल-I के प्रावधान अपने आप में परिपूर्ण नहीं हैं तथा इनका दायरा बढ़ाने की जरूरत है।

बासेल-I एक शुरुआत थी। जनवरी 2001 में बासेल-II नाम से नए व्यापक मानदंड जारी किए गए। इनमें परिचालन जोखिम हेतु भी पूंजी आवश्यकता का ध्यान रखा गया था। व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो बासेल-II मानदंडों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि बैंकों के पास उनके व्यावसायिक कार्यकलापों के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध रहे। पूंजी पर्याप्तता का निर्धारण कारोबार में निहित जोखिमों को ध्यान में रखकर किया जाना था। जितना ज्यादा जोखिम होगा उतनी ही अधिक पूंजी रखनी पड़ेगी और जहां ज्यादा पूंजी होगी वहाँ जोखिम भी ज्यादा होंगे। पूंजी पर्याप्तता इतनी होनी चाहिए कि अप्रत्याशित जोखिमों से होने वाली हानि की भरपाई की जा सके। हानियों का अनुमान 'वैल्यू एट रिस्क' को आधार बनाकर किया जा सकता है। 'वैल्यू एट रिस्क' की सरलतम व्याख्या एक जोखिमयुक्त आस्ति के मूल्य में एक निर्धारित अवधि हेतु और विश्वास के एक निर्धारित स्तर पर संभावित हानि के रूप में की जा सकती है। समझौता यह भी कहता है कि किसी कारोबार पर लाभ की गणना उठाए गए जोखिम हेतु क्षतिपूर्ति को घटाकर करनी चाहिए। कारोबारों की तुलना हेतु सही आधार पूंजी पर जोखिम आधारित समायोजित लाभ ही हो सकता है।

बासेल-II भारत में 2008 में लागू हुआ। बासेल-II के बाद अब बासेल-III की घोषणा हो चुकी है। ये नए दिशानिर्देश दिसंबर 2010 में जारी किए गए थे। भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार भारत में बासेल-III मानकों को चरणबद्ध तरीके से कार्यान्वित किया जाना है। इस कार्यान्वयन की शुरुआत जनवरी 2013 से होगी जिसे 31 मार्च 2018 तक पूरा कर लिया जाना अपेक्षित है। बासेल-III को लागू करने हेतु जो लंबी समयावधि दी गई है उसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके मानदंड कठोर हैं और इन्हें पूरी तरह अपनाने हेतु काफी तैयारी की जरूरत होगी।

बासेल-III के बाद से अब तक विश्व अर्थव्यवस्था में कई बदलाव देखने को मिले हैं। स्वाभाविक रूप से ये बदलाव बैंकिंग प्रणाली से भी जुड़े हुए हैं। वैसे भी बैंकिंग प्रणाली व अर्थव्यवस्था का चोली दामन का साथ है और दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं रह सकते। विगत 5 वर्षों में विश्व के सामने दो बड़े आर्थिक संकट उभर कर आ चुके हैं। अमेरिका में सब प्राइम संकट और उसके फलस्वरूप वर्ष 2008 में आई वित्तीय मंदी से उबरना अभी पूरा नहीं हो पाया था कि ग्रीस में आए आर्थिक संकट ने पूरी दुनिया को हिलाकर रख दिया जिसका असर अभी भी महसूस किया जा रहा है। इन संकटों से बैंकों और उनके विनियमनकर्ताओं को कई नए सबक मिले हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं परिचालनों में और अधिक एहतियात बरतना, जोखिमों को गंभीरता से लेना, जोखिम प्रबंधन प्रणाली पर अतिरिक्त ध्यान देकर इसे अधिक मजबूत बनाना एवं संभावित जोखिमों हेतु पूंजीकरण को पर्याप्त बनाना। बासेल इन सभी के लिए प्रासंगिक है और बदलते आर्थिक परिवेश में इन्हें अपनाना बैंकों के लिए और उपयोगी हो गया है।

बासेल-III मानदंड बासेल-II मानदंडों से किस प्रकार भिन्न और बेहतर हैं यह जानना उन सभी के लिए जरूरी है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसके कार्यान्वयन से जुड़े हुए हैं। निश्चित रूप से बासेल-III मानदंड अब तक इस श्रृंखला के सभी मानदंडों में सबसे अधिक कठोर हैं।

बैंकों के लिए चलनिधि बहुत महत्व रखती है। समय पर चलनिधि न हो तो बैंक दिवालिया भी घोषित हो सकते हैं। विगत 5 वर्षों में प्रकट हुए वित्तीय संकटों में सबसे अधिक नुकसान उठाने वाली संस्थाएं वे थीं जिनके पास चलनिधि की अचानक कमी हो गई। बासेल-II की आलोचना इसलिए की जाती रही है कि इसके प्रावधान इन वित्तीय संकटों को रोक नहीं पाए। चलनिधि और पूंजी पर्याप्तता हेतु उन्नत मानदंडों की आवश्यकता महसूस की गई जो बासेल-III के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

बासेल-II तीन स्तंभों पर आधारित था जो बासेल-III के लिए भी लागू है। बासेल-III के अंतर्गत बैंकिंग क्षेत्र के विनियमन, पर्यवेक्षण एवं जोखिम प्रबंधन को मजबूत करने के इरादे से अनेक नए पूंजी, लीवरेज व चलनिधि मानकों का प्रस्ताव किया गया है। पूंजी मानक व पूंजी बफर की नई अपेक्षाओं के चलते अब बैंकों को वर्तमान बासेल-II नियमों की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में और उच्चतर गुणवत्ता की पूंजी रखने की जरूरत होगी। उच्चतर गुणवत्ता की पूंजी वह होगी जिसमें हानि वहन करने की क्षमता ज्यादा हो। नए लीवरेज

अनुपात के जरिए जोखिम आधारित न्यूनतम पूंजी आवश्यकता को पूरा करने हेतु गैर जोखिम आधारित उपाय की शुरुआत की गई है। नए चलनिधि अनुपातों से यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि संकट की स्थिति में बैंकों के पास पर्याप्त निधियाँ मौजूद हैं। बासेल-III में जोखिम प्रबंधन व पूंजी आयोजना हेतु पर्यवेक्षी प्रक्रिया को व्यापक रूप दिया गया है, बाज़ार अनुशासन को अपनाने पर ज्यादा ज़ोर दिया गया है तथा जोखिम खुलासों का दायरा और बढ़ा दिया गया है।

टियर-I पूंजी – बासेल-II में टियर-I पूंजी 4% निर्धारित थी। बासेल-III में इसे 6% तक कर दिया गया है। 1 जनवरी 2013 से इसे 4.5%, 1 जनवरी 2014 से 5.5% एवं 1 जनवरी 2015 से 6% के स्तर पर लाना है। टियर-I पूंजी, जिसे कोर पूंजी भी कहते हैं, में बैंक की इक्विटी व जाहिर की गई रिज़र्व राशि शामिल होती है।

पूंजी संरक्षण बफर – बासेल-II में पूजी संरक्षण जैसा कोई प्रावधान नहीं था। बासेल-III में बैंकों से अपेक्षा की गई है कि वे 2.5% की दर से पूंजी संरक्षण बफर रखें। यह प्रतिशत टियर-I पूंजी का होगा। बैंकों को यह बफर इसलिए रखने को कहा गया है कि वित्तीय व आर्थिक संकट की दशा में वे हानि का सामना करने में सक्षम हों। जो बैंक यह बफर नहीं रखेंगे उन पर लाभांश भुगतान, शेयर पुनर्खरीद, बोनस भुगतान के मामले में पाबन्दियाँ लगाई जाएंगी।

प्रतिचक्रीय बफर – इसे भी बासेल-III में ही पहली बार लाया गया है। इसका पालन करना अनिवार्य नहीं बल्कि बैंक विशेष की इच्छा पर है। प्रतिचक्रीय बफर की दर 0% से 2.5% के बीच होगी जो कोर पूंजी अर्थात पूरी तरह हानि से बचाव करने वाली पूंजी से ली जाएगी। इस बफर का प्रावधान जनवरी 2016 से शुरू कर 1 जनवरी 2019 तक पूरा किया जाना है। 1 जनवरी 2018 से 1.875% तथा 1 जनवरी 2019 से 2.5% होगा। प्रतिकूल परिस्थितियों में इस बफर का स्तर ऊंचा रहेगा।

लीवरेज अनुपात – वर्ष 2008 के वित्तीय संकट के दौरान बहुत सारी आस्तियों की कीमतों में आई गिरावट पिछले अनुभवों के आधार पर लगाए गए अनुमानों से भी काफी अधिक रही। इसे ध्यान में रखते हुए बासेल-III में लीवरेज अनुपात को शामिल किया गया है। लीवरेज अनुपात कुल आस्तियों से टियर-I पूंजी का अनुपात है। बासेल-III मानदंडों के अनुसार जहां कोई जोखिम भार नहीं भी है, वहाँ भी टियर-I पूंजी कुल आस्तियों का कम से कम 3% होनी चाहिए।

चलनिधि अनुपात – यह सुनिश्चित करने हेतु कि संकट की स्थिति में बैंकों के पास न्यूनतम 1 माह के लिए उच्च गुणवत्ता वाले चल संसाधन (नकद राशि या नकद योग्य राशि) की पर्याप्तता हो, बासेल-III में चलनिधि मानक नियत किए गए हैं जिनमें से एक मानक चलनिधि कवरेज अनुपात है। इसे 1 जनवरी 2015 से लागू किया जाना है। निवल स्थिर निधीकरण अनुपात दूसरा मानक है जो बैंकों को अतिरिक्त प्रोत्साहन देकर उन्हें निधीकरण के अधिक स्थिर स्रोतों के जरिए अपने कार्यकलापों हेतु निधियाँ जुटाने को प्रेरित करता है। इस मानक को अपनाना लंबे समय के लिए बैंकों की आंतरिक मजबूती सुनिश्चित करेगा। चलनिधि पर निगरानी रखने हेतु बैंकों के लिए अपेक्षित है कि वे बेमेल परिपक्वता तथा कुछ खास क्षेत्रों को अत्यधिक वित्तपोषण के अवसरों को न्यूनतम रखें।

न्यूनतम कॉमन इक्विटी तथा टियर-I पूंजी आवश्यकता – कॉमन इक्विटी, जो हानि से बचाव करने वाली पूंजी का सबसे उन्नत रूप है, के लिए न्यूनतम पूंजी की अपेक्षा बासेल-II में जोखिम भारित आस्तियों का 2% थी जिसे बासेल-III में बढ़ाकर 4.5% कर दिया गया है। टियर-I पूंजी जिसमें कॉमन इक्विटी के साथ अन्य पात्र वित्तीय लिखित भी शामिल हैं, मौजूदा न्यूनतम 4% से बढ़ाकर 6% कर दिया गया है। इस परिवर्तन के बाद न्यूनतम कुल पूंजी आवश्यकता 8% के वर्तमान स्तर पर बनी रहेगी, पर संरक्षण बफर के साथ मिलाकर देखें तो कुल पूंजी आवश्यकता बढ़कर 10.5% हो जाएगी। इससे समझा जा सकता है कि बासेल-III को अपनाने से बैंकों की पूंजी की आवश्यकता में क्रमिक रूप से काफी बढ़ोत्तरी होगी।

बहुत से विदेशी बैंकों की तुलना में भारतीय बैंकों के लिए सख्त पूंजी आवश्यकता वाले वातावरण को अपनाना आसान होगा क्योंकि पूंजी पर्याप्तता हेतु भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित विनियामक मानक हमारे देश में पहले से ही काफी कड़े हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीय बैंकों ने अपनी कोर और समग्र पूंजी

को न्यूनतम नियत पूंजी से काफी ऊँचे स्तर पर बनाए रखा है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली को मजबूत मानने का यह एक मुख्य कारण है। भारतीय रिज़र्व बैंक के निर्देशों के अनुसार हमारे देश के बैंक बासेल-III को अपने यहाँ लागू करने की तैयारी में गंभीरता से जुटे हुए हैं। बासेल-III के अंतर्गत पूंजी अपेक्षाओं को पूरा करने हेतु भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को बड़ी मात्रा में अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी जिसे जुटाने के तरीकों पर विचार-विमर्श चल रहा है। कुछ विश्लेषकों का मानना है कि सरकार और बैंकों की वर्तमान हालत को देखते हुए बासेल-III उन पर एक बोझ की तरह है। एक आशंका यह जताई जा रही है कि इन मानदंडों को अपनाने के बाद बैंकों के पास ऋण देने के लिए कम राशि उपलब्ध होगी जो अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा नहीं है। बासेल-II के आने के समय पर भी इस तरह की बहुत सी आशंकाएं व्यक्त की गई थीं।

व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो बासेल-III मानक निश्चित तौर पर बैंकों को और सुदृढ़ करने तथा उन्हें संभावित जोखिमों का सामना करने हेतु और सक्षम बनाने के लिए हैं। बासेल-II के अनुभव बैंकों के पास पहले से हैं। आशा की जा सकती है कि बासेल-III का कार्यान्वयन बैंकों के अभिशासन को और उन्नत तथा गुणवत्तापूर्ण बनाएगा, केंद्रीय बैंक द्वारा किए जाने वाले विनियमन को मजबूती प्रदान करेगा एवं बैंकिंग व्यवस्था में जनता के विश्वास को और मजबूत करेगा।

❍❍❍

रिज़र्व बैंक का आउटरीच कार्यक्रम @

भारतीय रिज़र्व बैंक के आउटरीच कार्यक्रम में रिज़र्व बैंक का उच्च प्रबंध-तंत्र शामिल होता है - जैसे गवर्नर, उप गवर्नर और कार्यपालक निदेशक। वे देश के विभिन्न गांवों में जाते हैं। आर्थिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में विशेष रूप से ग्रामांचल के लोगों को जोड़ने के लिए बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और स्थानीय सरकार को प्रोत्साहित करते हैं। वे लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को समझने के लिए उनसे बातचीत करते हैं। साथ ही, वे उन्हें यह बताते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक उनके लिए क्या कर रहा है ताकि यह पता लगाया जा सके कि वे आरबीआई से क्या उम्मीद रखते हैं। आउटरीच दौरों के समय, औपचारिक बैंकिंग क्षेत्र तथा रिज़र्व बैंक की कार्यप्रणाली से जुड़ने के लाभों की जानकारी भाषण, स्किट, पोस्टर, लघु फिल्म, पैम्फलेट, वित्तीय साक्षरता पर कॉमिक पुस्तकों के वितरण (राजू और दि मनी ट्री, मनी कुमार आदि), स्कूली बच्चों के लिए क्विज प्रतियोगिता और निबंध प्रतियोगिता, सभा स्थल पर रखे किओस्क के जरिए दी जाती है। सभास्थल पर जानकारी दिए जाने के अलावा नोटों और सिक्कों का विनिमय भी किया जाता है। लक्ष्य समूह में विद्यार्थियों, स्वयं सहायता समूह के सदस्यों, गांववासियों, किसानों, गैर-सरकारी संगठनों, बैंकरों, सरकारी कर्मचारियों, वरिष्ठ नागरिकों, गृहिणियों, पंचायत के सदस्यों, दैनिक मजदूरी कमाने वालों और सुरक्षा कार्मिकों को शामिल किया गया है।

पिछले 3 साल के दौरान रिज़र्व बैंक के उच्च कार्यपालकों द्वारा देश भर में फैले 115 गांवों में आउटरीच दौरे किये गये हैं। इन गांवों में, वित्तीय समावेशन की प्रगति के विश्लेषण से पता चलता है कि 73 प्रतिशत गांव सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आधारित बिजनेस करेस्पांडेंट मॉडल के माध्यम से बैंकिंग सेवाएं प्राप्त कर रहे हैं, जबकि शेष गांवों को ईंट-गारे की शाखाओं के माध्यम से कवर किया गया है। खातों, विशेष रूप से नोफ्रिल खातों, की संख्या कई गुना बढ़ गई है। लेनदेन हैंड हेल्ड उपकरण पर स्मार्ट कार्ड का प्रयोग करके प्रयोक्ता अनुकूल तरीके से बिजनेस करेस्पांडेंट के माध्यम से किए जा रहे हैं। सामाजिक लाभों को सीधे उनके बैंक खातों में जमा किया जा रहा है। इस प्रकार रिज़र्व बैंक के आउटरीच कार्यक्रम ने कई छोटे-छोटे गांवों के समग्र कल्याण में सुधार लाने में मदद की है।

@ स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011-12

बासेल–II के पिलर–III के अंतर्गत प्रकटीकरण

प्रदीप कुमार
उप महाप्रबंधक – जोखिम प्रबंधन विभाग
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
केंद्रीय कार्यालय, मुंबई

बैंकों के जोखिम प्रबंधन व्यवहार के लिए बासेल समझौते अंतरराष्ट्रीय मानक हैं। यह बैंकों में जोखिम प्रबंधन अनुशासन के औपचारिक ढांचे की आधारभूत संरचना है। जर्मनी में हेस्टैंट बैंक तथा फ्रैंकलिन नेशनल के डूबने की घटनाओं ने दुनिया भर के नियामकों को सोचने पर मजबूत कर दिया और बैंकों में जोखिम प्रबंधन के लिए समान मानक तय करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। बीसीबीएस (बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति) ने 1988 में बैंकों के ऋण जोखिम पूंजीगत भारग्रस्तता की गणना को समाहित करते हुए प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें रिस्क कैपिटल चार्ज के मापन को शामिल किया गया है। तत्पश्चात 1992 में इसने बाजार जोखिम की मापन पद्धति भी विकसित कर बैंकों का मार्गदर्शन किया।

बासेल समझौते में समय के अनुसार रूपांतरण हुआ और वित्तीय प्रणाली में एकरूपता स्थापित करने हेतु प्राप्त अनुभवों के आधार पर उसमें संशोधन किए गए। वर्ष 2004 में, बासेल समझौता विकसित हुआ और बासेल - II दिशा–निर्देश जारी किए गए तथा वैश्विक वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा एवं सुदृढ़ता को सुनिश्चित करने हेतु व्यापक एवं जोखिम संवेदी दिशानिर्देश जारी किए गए। इससे पूर्व बैंकों द्वारा किए जा रहे जोखिम प्रबंधन की क्रियाविधि में बासेल - II ने क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। बासेल - II के प्रस्तावित ढांचे में निम्नलिखित तीन स्तंभों का प्रारंभ करके महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया:

1 न्यूनतम पूंजी आवश्यकता

यह ऋण जोखिम, बाजार जोखिम एवं परिचालन जोखिम के लिए आवश्यक पूंजी की गणना हेतु बनाई गई विनियमावली है। यह सार्वजनिक एवं आंतरिक रेटिंग से जुड़े ऋण जोखिम का ही संवर्धित दृष्टिकोण है।

2 पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया

यह बैंक के जोखिम प्रोफाइल के अनुरूप पूंजी आवश्यकता का आकलन करने की विधि है तथा यह पर्यवेक्षी समीक्षा एवं मूल्यांकन प्रक्रिया (एसआरईपी) के लिए एक आधार उपलब्ध कराती है।

3 बाजार अनुशासन–प्रकटीकरण

जोखिम प्रोफाइल एवं पूंजी पर्याप्तता का बेहतर प्रकटीकरण नए पूंजी पर्याप्तता ढांचे एवं (बासेल - II) में बाजार अनुशासन को बासेल - II के तीन स्तंभों में से एक स्तंभ के रूप में मान्यता देते हुए इसे समुचित महत्व प्रदान किया गया है। भारतीय रिज़र्व बैंक, भारत में इसे लागू करने के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने तथा सर्वोत्तम प्रथा अपनाने की इच्छाशक्ति के महत्व को भलीभांति समझता है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने बासेल - II के दिशानिर्देशों के अनुसार बैंकों के लिए जोखिम प्रबंधन की प्रथाओं एवं प्रक्रियाओं के मात्रात्मक एवं गुणात्मक पहलुओं का प्रकटीकरण अनिवार्य किया है।

बाजार अनुशासन को प्रोत्साहित करने की दिशा में, रिज़र्व बैंक ने विगत वर्षों में प्रकटीकरण की अपेक्षाएं निर्धारित की हैं, जो बाजार सहभागियों को पूंजी पर्याप्तता, ऋण जोखिम, जोखिम मूल्यांकन प्रक्रिया एवं मुख्य व्यवसाय मापदंडों की प्रमुख सूचनाएं उपलब्ध कराती हैं। इससे सतत तथा समझने–योग्य प्रकटीकरण ढांचा साकार होगा, परिणामस्वरूप तुलना करने की क्षमता में वृद्धि होगी। बैंकों को भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान (आईसीएआई) द्वारा जारी लेखांकन नीतियों के प्रकटीकरण पर लेखा मानक (एएस–I) का अनुपालन करना भी आवश्यक है।

बाजार अनुशासन क्यों?

बाजार अनुशासन का मुख्य उद्देश्य सूचना के प्रचार-प्रसार में पारदर्शिता बढ़ाना एवं प्रकटीकरण आवश्यकताओं के नियम निर्धारित करके बाजार अनुशासन को प्रोत्साहित करना है। यह बाजार सहभागियों को अनुप्रयोग के कार्यक्षेत्र, पूंजी, जोखिम आकलन प्रक्रिया संबंधी सूचनाओं का मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान करता है। इससे संस्था की पूंजी पर्याप्तता की स्थिति का आकलन संभव हो पाएगा।

बाजार अनुशासन से कई लाभ होंगे जो निम्नानुसार हैं:

- बैंकों का कामकाज सीधे तौर पर जन सामान्य से जुड़ा होता है। इसलिए बैंकों को अपने कार्यकलापों के प्रकटीकरण में और अधिक पारदर्शी होना चाहिए। जोखिम प्रबंधन की प्रकटीकरण प्रक्रिया बैंकों को शेयरधारकों एवं जमाधारकों दोनों के विकास को बनाए रखने में सहायक होगी।
- इससे बैंकों को जोखिम प्रबंधन व्यवहार के प्रकटीकरण में एवं उन्हें सुदृढ़ जोखिम प्रबंधन व्यवहार के लिए समान अवसर प्राप्त होता है।
- यह नैतिक जोखिम एवं अत्यधिक जोखिम उठाने की प्रवृत्ति पर अंकुश रखेगा।
- यह बैंक की कार्यकुशलता में वृद्धि करने में सहायक होगा।
- बाजार अनुशासन बढ़ने से पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण पर आनेवाली लागत को कम करने में सहायता होगी।
- यह अनुपालन मानदंडों को पूरा करने के प्रमाण के रूप में कार्य करेगा।

प्रकटीकरण के सामान्य सिद्धांत

प्रकटीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री वाली अवधारणा पर आधारित होना चाहिए। सूचना महत्वपूर्ण तब मानी जाएगी, जब इसकी त्रुटि या गलत प्रस्तुति आर्थिक निर्णयों के उद्देश्य से इन सूचनाओं पर विश्वास करने वाले उपयोगकर्ता का आकलन अथवा निर्णय परिवर्तित अथवा प्रभावित होता हो।

बैंकों को सूचना प्रकटीकरण में विशेष रूप से मालिकाना सूचनाओं (प्रोपराइटरी इन्फर्मेशन) के मामलों में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। इसके अंतर्गत ऐसी सूचनाएं होती हैं (उदाहरणार्थ उत्पाद अथवा सिस्टम संबंधी), जिनका प्रतिस्पर्धियों के साथ आदान-प्रदान करने से इन उत्पाद/प्रणालियों में किए गए बैंक के निवेशों का मूल्य कम हो जाएगा। परिणामत: प्रतिस्पर्धी से होड़ में वह पिछड़ जाएगा।

ग्राहकों के बारे में सूचनाएं गोपनीय होती हैं, जिन्हें एक विधिक समझौते या अन्य संबंध के समझौते के अंतर्गत उपलब्ध कराया जाता है। ऐसे में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि बैंक को अपने ग्राहक आधार के बारे में किस तरह की सूचनाएं बतानी चाहिए। यहां तक कि अपनी आंतरिक व्यवस्थाओं यथा-प्रयुक्त कार्यपद्धति, अनुमान के पैरामीटर, आंकड़े इत्यादि भी महत्वपूर्ण हैं।

प्रकटीकरण और इसकी आवधिकता

समेकित बैंकों सहित सभी बैंकों के लिए अपेक्षित है कि वे प्रति वर्ष मार्च की समाप्ति पर वार्षिक वित्तीय विवरणियों के साथ गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकटीकरण उपलब्ध कराएं। बैंक ये प्रकटीकरण अपनी वार्षिक रिपोर्ट के साथ-साथ अपनी वेबसाइट पर भी प्रदर्शित करें।

रु. 100 करोड़ या अधिक पूंजी निधि वाले बैंकों को प्रत्येक वर्ष सितंबर के अंत में एकल आधार पर मात्रात्मक (क्वान्टिटेटिव) पहलुओं का अंतरिम प्रकटीकरण अपनी वेबसाइट पर करना चाहिए।

गुणात्मक प्रकटीकरण, जो कि बैंक के जोखिम प्रबंधन के उद्देश्यों एवं नीतियों, सूचना प्रणाली एवं परिभाषाओं संबंधी सामान्य जानकारी उपलब्ध कराता है, को केवल वार्षिक आधार पर प्रकाशित किया जाना चाहिए।

संशोधित ढांचे की बढ़ती हुई जोखिम संवेदनशीलता एवं पूंजी बाजारों में बहुधा रिपोर्टिंग की सामान्य प्रकृति के मद्देनज़र रु. 500 करोड़ या उससे अधिक पूंजी निधि वाले बैंकों के लिए यह अपेक्षित है कि वे अपनी अनुषंगियों सहित, अपनी टियर-1 पूंजी, कुल आवश्यक पूंजी एवं टियर-1 अनुपात तथा कुल पूंजी पर्याप्तता अनुपात का तिमाही आधार पर प्रकटीकरण अपनी वेबसाइट पर अवश्य करें। प्रत्येक वित्त वर्ष के इस प्रकार के प्रकटीकरण आगामी वर्ष की तीसरी तिमाही (मार्च अंत) तक वेबसाइट पर उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

पिलर–III के अंतर्गत बैंक की वार्षिक गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों आधार पर प्रकटीकरण

नाम	विवरण
टेबल डीएफ – 1	प्रयोज्य कार्यक्षेत्र
टेबल डीएफ – 2	पूंजी संरचना
टेबल डीएफ – 3	पूंजी पर्याप्तता
टेबल डीएफ – 4	ऋण जोखिम – सभी बैंकों के लिए सामान्य प्रकटीकरण
टेबल डीएफ – 5	पूंजी संरचना – मानक दृष्टिकोण के अंतर्गत पोर्टफोलियो का प्रकटीकरण
टेबल डीएफ – 6	ऋण जोखिम न्यूनीकरण – मानकीकृत दृष्टिकोण का प्रकटीकरण
टेबल डीएफ – 7	प्रतिभूतीकरण – मानकीकृत दृष्टिकोण संबंधी प्रकटीकरण
टेबल डीएफ – 8	ट्रेडिंग बहियों में निहित बाजार जोखिम
टेबल डीएफ – 9	परिचालनात्मक जोखिम
टेबल डीएफ – 10	बैंकिंग बुक में ब्याज दर जोखिम (आईआरआरबीबी)

मध्यस्थता का व्यापार जोखिम से भरा होता है और सामाजिक दायित्व एवं शेयरधारकों के लिए संपत्ति सृजन करना बैंकों के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्रमुख कार्यकलापों का प्रकटीकरण केवल अनुपालन के लिए नहीं बल्कि उससे बढ़कर सार्थक होना चाहिए। बैंकों को इसे विवेकपूर्ण कार्य समझना चाहिए।

बासेल–II के अंतर्गत किए जाने वाले प्रकटीकरण प्रभावी जोखिम प्रबंधन व्यवस्था तथा जोखिम प्रबंधन और व्यापार क्रियाकलापों में पारदर्शिता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। ये गतिविधियां बैंकों को जोखिम प्रबंधन व्यवहारों को प्रकट करने में समान रूप से अवसर उपलब्ध कराती हैं तथा उन्हें बेहतर जोखिम प्रबंधन प्रथा अपनाने हेतु प्रेरित करती हैं।

सूचना प्रकट करते समय बैंकों को सूचनाओं के स्वरूप को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए। पिलर 3 में अपेक्षित कतिपय सूचनाओं का, जो या तो स्वामित्व संबंधी होती हैं या गोपनीय प्रकृति की, सार्वजनिक प्रकटीकरण बैंक की स्थिति पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

बैंक को विशेष स्वरूप की मदों को प्रकट नहीं करना चाहिए। लेकिन अपेक्षित विषय-वस्तु संबंधी सामान्य प्रकृति की सूचना प्रकट करनी चाहिए। साथ ही, उसे यह तथ्य भी बता देना चाहिए कि वह किन-किन कारणों से विशेष स्वरूप की सूचना प्रकट नहीं कर पा रहा है।

❍❍❍

लीवरेज अनुपात 4.5 प्रतिशत से काफी अधिक बना रहा

2011-12 में टियर-I पूंजी (बासेल-II के तहत) के रूप में गणना किया गया लीवरेज अनुपात पिछले वर्ष की तुलना में बढ़ गया और 4.5 प्रतिशत से ऊपर बना रहा जो कि भारतीय बैंकों की पूंजी की स्थिति में सुधार दर्शाता है। यह बात सीआरएआर (बासेल-II के तहत) में हुई वृद्धि के अनुरूप ही थी। देखें चार्ट-I।

चार्ट-I : पूंजी पर्याप्तता की प्रवृत्ति (मार्च 2012 को समाप्त)

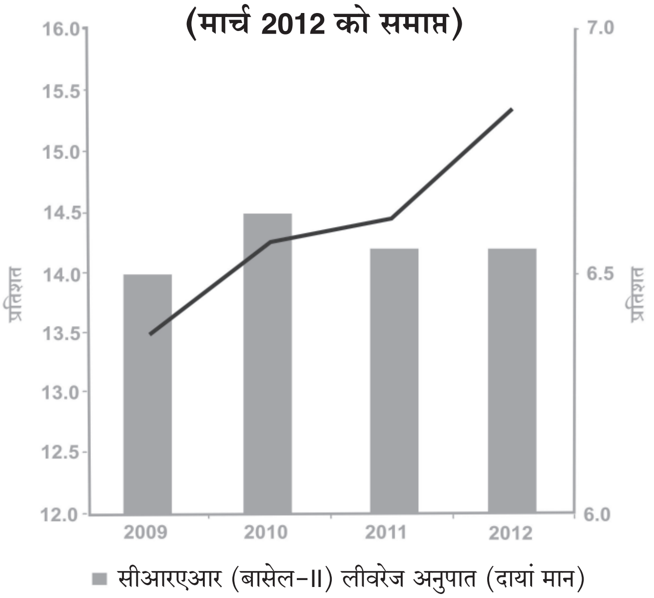

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट, 2011-12

बासेल-III : एक विहंगावलोकन

आर. एस. तिवारी
सहायक प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, चंडीगढ़

बैंकों और वित्तीय संस्थानों को आर्थिक गतिविधियों का केंद्र माना जाता है। इसीलिए दुनिया भर के बैंकों और वित्तीय संस्थानों की आर्थिक स्थिति को विश्वस्तरीय तथा भरोसेमंद बनाने के लिए अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (Bank for International Settlement) की बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (Basel Committee on Banking Supervision) ने बासेल समझौते के माध्यम से दिशानिर्देश जारी किए हैं। बासेल-III वर्ष 2010 में बासेल समझौते द्वारा जारी दिशानिर्देशों की तीसरी कड़ी है। इससे पूर्व बासेल-I तथा बासेल-II दिशानिर्देश जारी किए गए थे। बासेल-III में बैंकों के लिए उसी तरह दिशानिर्देश जारी किए गए हैं जैसे कि बासेल-I तथा बासेल-II द्वारा जारी किए गए थे। अंतर महज़ इतना है कि बासेल-I के बाद पूँजी पर्याप्तता संबंधी दिशानिर्देशों को आवश्यकतानुसार बासेल-II में थोड़ा सख्त किया गया था। उसी तरह 2008 में संपूर्ण विश्व में फैले आर्थिक संकट के मद्देनज़र कुछ परिवर्तनों के साथ बासेल-III को तैयार किया गया है।

बासेल-II की आधारभूत संरचना में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। बासेल-II की तरह बासेल-III भी तीन स्तम्भों पर आधारित है। बासेल-III दिशानिर्देशों में सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान है-पूंजी की परिभाषा से जुड़े अपेक्षाकृत सख्त दिशानिर्देश। इसमें बैंकों के लिए टियर-I पूंजी तथा न्यूनतम कॉमन पूंजी के प्रतिशत में बढ़ोतरी के साथ-साथ पूंजी कंजर्वेशन बफ़र तथा प्रतिचक्रीय पूंजी बफ़र बनाकर पूंजी की गुणवत्ता को बेहतर बनाने का प्रयास किया गया है ताकि बैंकों की घाटा सहने की क्षमता अधिक हो सके। इसके साथ ही 2008 के आर्थिक संकट के बाद अमेरिका और यूरोप में बड़े वित्तीय संस्थानों के डूबने के कारण उपजे संकट के मद्देनज़र दुनिया की प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं (Systemically Important Financial Institutions-SIFI) के लिए विशेष उपाय सुझाए गए हैं।

पृष्ठभूमि

बासेल समझौते का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 1975 में अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक ने जी-10 देशों के समूह के केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों की सदस्यता वाली एक समिति गठित की जिसे बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति के नाम से जाना जाता है। (वर्तमान में इस समिति के सदस्यों में शामिल 27 देश हैं-अर्जेंटीना, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, ब्राज़ील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, हांगकांग, भारत, इंडोनेशिया, इटली, जापान, दक्षिण कोरिया, लक्ज़मबर्ग, मैक्सिको, नीदरलैंड, रूस, सऊदी अरब, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, तुर्की, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका। इस समिति ने दुनिया भर की बैंकिंग नीतियों में एकरूपता लाने के लिए एक समझौता किया। यह समझौता अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक के स्विट्ज़रलैंड के बासेल शहर में स्थित मुख्यालय में किया गया। इसीलिए इस समझौते का नाम बासेल समझौता हो गया।

बासेल समिति ने पहली बार 1988 में दिशानिर्देश जारी किए। इन दिशानिर्देशों को बासेल-I का नाम दिया गया। इसके बाद जून 2004 में बासेल-II दिशानिर्देश जारी किए गए जिन्हें 2006 तक लागू किया जाना था। बासेल-III भी बासेल समिति द्वारा तैयार किया गया है। जी-20 देशों के समूह ने इसे नवंबर 2010 में सियोल (दक्षिण कोरिया) में हुए सम्मेलन में स्वीकार कर लागू करने का निर्णय लिया। बासेल-III को 01 जनवरी 2013 से चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाएगा और 01 जनवरी 2019 तक इसे पूरी तरह से कार्यान्वित कर लेने का लक्ष्य है। इस समझौते की कोई कानूनी मान्यता नहीं है, फिर भी 100 से भी अधिक देशों ने

इसका स्वागत किया है और अपने-अपने देश की जरूरतों के अनुकूल इसे अपनाने के नियम बनाए हैं।

बासेल दिशानिर्देश – कार्यान्वयन के चरण

जुलाई 1988	बासेल-I दिशानिर्देश जारी किए गए।
दिसंबर 1992	बासेल-I पूरी तरह से लागू किया गया।
दिसंबर 1996	बासेल-I बाजार जोखिम दिशानिर्देश जारी किए गए।
जून 2004	बासेल-II दिशानिर्देश जारी किए गए।
दिसंबर 2006	बासेल-II पूरी तरह से लागू किया गया।
दिसंबर 2009	बासेल-III का ड्राफ्ट तैयार किया गया।
नवंबर 2010	बासेल-III का ड्राफ्ट जी-20 देशों ने सियोल, दक्षिण कोरिया में पास किया।
01 जनवरी 2013	बासेल-III आरंभ करना है।
01 जनवरी 2019	बासेल-III पूर्णतया लागू करना है।

बासेल-III की आवश्यकता

सबसे अहम सवाल यह है कि बासेल-III की आवश्यकता क्यों पड़ी जबकि बासेल-II दिशानिर्देश जारी किए हुए मात्र पाँच साल का समय ही बीता था और उसे चरणबद्ध तरीके से लागू किया जा रहा था।

- वास्तव में 2008 में दुनिया भर में अचानक तेजी से फैले आर्थिक संकट ने यूरोप और अमेरिका के बैंकिंग क्षेत्र को बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया।
- 2006 में बासेल-II समझौते द्वारा जारी दिशानिर्देशों को लागू करने के बावजूद यूरोप और अमेरिका के अनेक बैंक इस आर्थिक संकट से अछूते नहीं रह सके और दो वर्षों के दौरान 100 से भी अधिक बैंक बंद हो गए।
- 2011 से एक और गंभीर आर्थिक संकट ने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है और एक बार फिर दुनिया भर के बैंकों को मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।

बासेल-II की तरह बासेल-III भी तीन स्तंभों पर आधारित है-

प्रथम स्तंभ – न्यूनतम पूंजी अपेक्षाएँ (Minimum Capital Requirements)

ऋण जोखिम के लिए पूंजी (Capital for Credit Risk)

1. मानकीकृत दृष्टिकोण (Standardized Approach)
2. आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण (Internal Rating Based Approach)
   - i. बेसिक दृष्टिकोण (Foundation Approach)
   - ii. उन्नत दृष्टिकोण (Advanced Approach)

बाजार जोखिम के लिए पूंजी (Capital for Market Risk)

1. मानकीकृत दृष्टिकोण (Standardized Approach)
2. आंतरिक मॉडल दृष्टिकोण (Internal Models Approach)

परिचालन जोखिम के लिए पूंजी (Capital for Operational Risk)

1. आधारभूत संकेतक दृष्टिकोण (Basic indicator Approach)
2. मानकीकृत दृष्टिकोण (Standardized Approach)
3. उन्नत मापन दृष्टिकोण (Advanced Measurement Approach)

द्वितीय स्तंभ-पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया (Supervisory Review Process)

पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया के अंतर्गत चार प्रमुख सिद्धांत बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं –

1. **पहला सिद्धांत** – बैंक के पास पूंजी पर्याप्तता का समग्र आकलन करने तथा उसके स्तर को बनाए रखने के लिए एक रणनीति होनी चाहिए।
2. **दूसरा सिद्धांत** – पर्यवेक्षकों को बैंक की आंतरिक पूंजी का मूल्यांकन करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उचित पर्यवेक्षी कार्रवाई करनी चाहिए।

3. **तीसरा सिद्धांत** – पर्यवेक्षकों का यह दायित्व है कि वे बैंकों में न्यूनतम पूंजी निर्धारण सुनिश्चित करें और उनसे बैंक में न्यूनतम विनियामक पूंजी अनुपात से ऊपर का स्तर बनाए रखने की आशा करनी चाहिए।
4. **चौथा सिद्धांत** – पर्यवेक्षकों को बैंक की पूंजी आवश्यकता न्यूनतम स्तर से नीचे गिरने से रोकने के लिए प्रारंभिक चरण में ही हस्तक्षेप करना चाहिए।

तृतीय स्तंभ–बाजार अनुशासन (Market Discipline)

1. विस्तृत प्रकटीकरण (Enhanced disclosure)
2. मुख्य और अनुपूरक प्रकटीकरण (Core and supplementary disclosures)
3. समयबद्ध – छमाही (Timely - Semi - annual)।

बासेल समझौते के अनुसार पूंजी को निम्नलिखित दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।

टियर – I

इसे सबसे शुद्ध पूंजी माना गया है। इसमें निम्नलिखित को शामिल किया जाता है —

- प्रदत्त पूंजी (Paid up Capital)
- मुक्त रिज़र्व (Free Reserves)
- शाश्वत गैर परिवर्तनीय अधिमान शेयर (Perpetual Non Convertible Preference Share)
- भवन फंड (Building Fund)।

टियर – II

इसे पूरक पूंजी (Supplementary Capital) भी कहा जाता है। इसमें निम्नलिखित को शामिल किया जाता है —

- पुनर्मूल्यन रिज़र्व (Revaluation Reserves)
- अप्रकटित रिज़र्व (Undisclosed Reserves)
- शाश्वत परिवर्तनीय अधिमान शेयर (Perpetual Convertible Preference Share)
- दीर्घ कालीन ऋण (Long Term Debt)।

बासेल–III के महत्वपूर्ण प्रावधान

बेहतर पूंजी गुणवत्ता

बासेल–III दिशानिर्देशों का सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान है– पूंजी की परिभाषा के पहले की अपेक्षा सख्त नियम। बेहतर पूंजी का अर्थ है – घाटे को सहने की अधिक क्षमता।

न्यूनतम कॉमन पूंजी (Minimum Common Capital)

बासेल–III दिशानिर्देशों में दूसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है – न्यूनतम कॉमन पूंजी। बासेल–III में पूंजी को जोखिम भारित आस्तियों के 8 प्रतिशत के बराबर रखा गया है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि पूंजी की अपेक्षा में कोई बदलाव नहीं किया गया है। चूँकि बासेल–II में भी पूंजी को जोखिम भारित आस्तियों के 8 प्रतिशत के बराबर रखा गया था। लेकिन बासेल–III में पूंजी की गुणवत्ता को बेहतर बनाया गया है।

- बासेल–III में न्यूनतम कॉमन पूंजी को जोखिम आधारित आस्तियों का 4.5 प्रतिशत कर दिया गया है। बासेल–II में न्यूनतम कॉमन पूंजी 2 प्रतिशत ही थी।
- बासेल–II में टियर–I पूंजी 4 प्रतिशत थी जिसे बासेल–III में बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया है।
- बासेल–III में टियर–II पूंजी को पहले के 4 प्रतिशत से घटाकर 2 प्रतिशत कर दिया गया है।
- इस प्रकार टियर–I पूंजी और न्यूनतम कॉमन पूंजी के हिस्से को बढ़ाकर पूंजी की गुणवत्ता को बेहतर बनाया गया है। कॉमन पूंजी में घाटे को सहने की सबसे अधिक क्षमता है। इसलिए कॉमन पूंजी के हिस्से को बढ़ाने से पूंजी की गुणवत्ता में बढ़ोतरी होना स्वाभाविक है।

पूंजी संरक्षण बफर – (Capital Conservation Buffer)

बासेल–III दिशानिर्देशों का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य पूंजी संरक्षण बफ़र है –

- बैंकों के लिए 2.5 प्रतिशत का पूंजी संरक्षण बफ़र बनाना।
- यह बफ़र न्यूनतम 8 प्रतिशत पूंजी पर्याप्तता अनुपात के अतिरिक्त होगा। इस प्रकार कुल पूंजी पर्याप्तता अनुपात बढ़कर 10.5 प्रतिशत हो जाएगा।

- बैंकों को 2.5 प्रतिशत का पूंजी संरक्षण बफ़र अच्छे कारोबार की अवधि में तैयार करना होगा जिसका उपयोग विषम आर्थिक परिस्थितियों में किया जा सकेगा।
- इसके लिए बैंकों को अपनी आय का अधिक भाग पूंजी में हस्तांतरित करना होगा। इसलिए जो बैंक पूंजी संरक्षण बफ़र नहीं रखेंगे उन बैंकों को अपने लाभ को लाभांश, बोनस आदि वितरित करने से रोका जाएगा।
- इसका उद्देश्य बैंकों के लिए मुश्किल वक्त के लिए एक कुशन तैयार करना है ताकि बैंक आर्थिक मुश्किलों के दौर में घाटे को सहने के लिए सक्षम बन सकें।

प्रतिचक्रीय पूंजी बफर – (Contra Cyclical Capital Buffer)

बासेल-III दिशानिर्देशों के अनुसार बैंकों के लिए प्रतिचक्रीय पूंजी बफ़र बनाना भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

- बैंकों को यह बफ़र अपनी जोखिम भारित आस्तियों के 2.5 प्रतिशत के बराबर का बनाना होगा।
- बैंकों के लिए प्रतिचक्रीय पूंजी बफ़र बनाने का उद्देश्य अच्छे कारोबारी समय में अपनी पूंजी आवश्यकताओं को बढ़ाना तथा बुरे वक्त में इसे कम करना है।
- साथ ही, इससे बैंकों को अत्यधिक आर्थिक गतिविधियों के बढ़ने के समय संयम बरतने तथा अपेक्षाकृत धीमी आर्थिक गतिविधियों के दौरान तीव्रता से काम करने को प्रोत्साहन भी मिलेगा।

बासेल-II के मुकाबले बासेल-III दिशानिर्देशों के अनुसार बैंकों के लिए निम्नलिखित बदलाव किए गए हैं :

क्रम	विवरण	प्रतिशत जोखिम भारित आस्ति	
		बासेल-II	बासेल-III
I	न्यूनतम टियर-I पूंजी	4	6
II	न्यूनतम टियर-II पूंजी	4	2
III	न्यूनतम पूंजी (I+II)	8	8
IV	न्यूनतम कॉमन पूंजी	2	4.5
V	पूंजी कंजर्वेशन बफर	-	2.5
VI	कुल कॉमन पूंजी (पूंजी कंजर्वेशन बफ़र सहित) (IV + V)	-	7
VII	टियर-I पूंजी बफ़र सहित (I+V)	-	8.5
VIII	कुल पूंजी (पूंजी कंजर्वेशन बफ़र सहित) (III + V)	-	10.5
IX	प्रतिचक्रीय पूंजी बफ़र	-	2.5

लीवरेज अनुपात – (Leverage Ratio)

2008 के आर्थिक संकट के दौरान यह देखने को मिला कि संकट के दौरान तमाम आस्तियों का मूल्य इतनी तेजी से कम हुआ था जितना पहले कभी नहीं हुआ। इसीलिए बासेल-III दिशानिर्देशों में सुरक्षा के रूप में लीवरेज अनुपात को शामिल किया गया है। जनवरी 2018 से पूर्णतया लागू करने से पूर्व प्रयोग के तौर पर लीवरेज अनुपात टियर-I पूंजी के 3 प्रतिशत से आरंभ किया जाएगा। लीवरेज अनुपात को निम्नलिखित समय-सारणी के अनुसार लागू करने की योजना बनाई गई है:

2011	पर्यवेक्षी निगरानी (Supervisory monitoring): लीवरेज अनुपात और अंतर्निहित घटकों का पता लगाने के लिए टेम्प्लेट्स का विकास।
2013	पहला समानांतर रन (Parallel run - I): लीवरेज अनुपात और उसके घटकों का पर्यवेक्षकों द्वारा पता लगाया जाएगा लेकिन खुलासा अनिवार्य नहीं।
2015	दूसरा समानांतर रन (Parallel run - II): लीवरेज अनुपात और उसके घटकों का पता लगाया जाएगा लेकिन खुलासा अनिवार्य नहीं।
2017	अंतिम समायोजन (Final adjustments): समानांतर रन के परिणाम पर आधारित, लीवरेज अनुपात में कोई भी समायोजन।

2018	लीवरेज अनुपात बासेल-III दिशानिर्देशों की अनिवार्य अपेक्षा (Mandatory Requirement) बन जाएगा।

चलनिधि कवरेज अनुपात – (Liquidity Coverage Ratio)

बासेल–III दिशानिर्देशों के अनुसार चलनिधि जोखिम प्रबंध की योजना तैयार की जाएगी। एक नया चलनिधि कवरेज अनुपात 2015 में तथा निवल स्थिर निधि अनुपात (Net Stable Fund Ratio) 2018 में आरंभ किया जाएगा।

2011	प्रेक्षण अवधि (Observation period) के दौरान टेम्प्लेट्स और चलनिधि अनुपात के पर्यवेक्षी निगरानी का विकास
2015	चलनिधि कवरेज अनुपात का परिचय
2018	निवल स्थिर निधि अनुपात का परिचय

प्रणालीबद्ध महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थान –

बासेल–III दिशानिर्देशों का पालन करने के अलावा नवंबर 2011 में विश्व के प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं के लिए यह निर्देश दिया गया है कि वे विश्व आर्थिक मंच पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण अधिक पूंजी रखें। कमेटी ने कुछ गुणात्मक तथा संख्यात्मक मानक तय किए हैं जिनके आधार पर प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं की पहचान की जाएगी। इन संस्थाओं में बैंक, बीमा कंपनियाँ या अन्य वित्तीय संस्थाएं शामिल हो सकती हैं। इन महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं को विश्व आर्थिक मंच पर उनके महत्त्व के अनुसार बासेल–III दिशानिर्देशों के अधीन अपेक्षित पूंजी के अतिरिक्त 1 प्रतिशत से 2.5 प्रतिशत तक कॉमन टियर–I पूंजी रखनी होगी।

बासेल – III दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन की दिशा में कदम

भारत सहित कुछ देशों ने बासेल–III दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन की दिशा में कदम उठाना आरंभ कर दिया है। बीसीबीएस की मार्च 2012 की बासेल–III के अनुपालन की प्रगति रिपोर्ट (Progress Report on Basel - III Adoption) के अनुसार भारत के अलावा जापान, ऑस्ट्रेलिया, सऊदी अरब, स्विट्ज़रलैंड आदि देशों ने ड्राफ्ट जारी कर दिया है।

बासेल–III दिशानिर्देशों को निकट भविष्य में बिना किसी परेशानी के लागू करने के लिए बीसीबीएस ने चरणबद्ध तरीके से इसके कार्यान्वयन की योजना तैयार की है।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने पहले 30 दिसंबर 2011 को बासेल–III दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देश जारी किए तथा 02 मई 2012 को अंतिम (Final) दिशानिर्देश जारी किए। पहले की ही तरह भारतीय रिज़र्व बैंक ने बासेल समिति द्वारा बताए गए न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता मानदंड (8 प्रतिशत) से 1 प्रतिशत अधिक मानदंड भारतीय बैंकों के लिए सुझाए हैं।

अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा तैयार किए गए बासेल–III दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन का चरणबद्ध कार्यक्रम

(एलएबी और आरआरबी को छोड़कर)

न्यूनतम पूंजी अनुपात	01 जनवरी 2013	31 मार्च 2014	31 मार्च 2015	31 मार्च 2016	31 मार्च 2017	31 मार्च 2018
न्यूनतम कॉमन अंश टियर–I पूंजी	4.5	5	5.5	5.5	5.5	5.5
पूंजी कंजरवेशन बफ़र	-	-	0.625	1.25	1.875	2.5
न्यूनतम कॉमन अंश टियर –I बफ़र सहित	4.5	5	6.125	6.75	7.375	8
न्यूनतम टियर–I पूंजी	6	6.5	7	7	7	7
न्यूनतम कुल पूंजी	9	9	9	9	9	9
न्यूनतम कुल पूंजी बफ़र सहित	9	9	9.625	10.25	10.875	11.5

बासेल-III एकदम नया पूंजी समझौता नहीं है। वास्तव में बासेल-II दिशानिर्देशों के बाद दुनिया भर में फैले आर्थिक संकट के बाद बैंकिंग क्षेत्र को मजबूत बनाने के लिए किए गए बदलाव के साथ बासेल-III को तैयार किया गया है। बासेल-III में पूंजी के लिए जो प्रावधान किए गए हैं वे वास्तव में काफी कड़े हैं। इनको लागू करने के लिए बैंकों को बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होगी जिसका प्रबंध करना बैंकों के लिए बेहद मुश्किल कार्य होगा। भारतीय रिज़र्व बैंक की 2011-12 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि बासेल-III के पूंजी संबंधी दिशानिर्देशों को लागू करने के लिए सरकारी बैंकों को लगभग 1.4 से 1.5 लाख करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी जबकि रेटिंग एजेंसी फिच ने अनुमान लगाया है कि भारत के तीन बड़े निजी बैंकों आईसीआईसीआई बैंक, एचडीएफसी बैंक और एक्सिस बैंक को 70,000 करोड़ रुपये की ज़रूरत होगी। इतनी बड़ी पूंजी जुटाने के बावजूद दुनिया भर के बैंक भविष्य में किसी भी आर्थिक संकट से निपटने में कितना सक्षम हो सकेंगे यह तो आने वाला समय ही बताएगा।

❍❍❍

भारत में बैंकों के ग्राहकों के लिए विशिष्ट ग्राहक पहचान कोड

वित्तीय आंकड़ों की मूलभूत सर्जक सामग्रियों में से एक है – कंपनियों, संगठनों, फर्मों और अलग-अलग ग्राहकों के बारे में संदर्भ आंकड़ा। संदर्भ आंकड़ों का एक आवश्यक घटक है – ऐसी प्रणालीगत संरचना अथवा कोड जिससे प्रत्येक संस्था/व्यक्ति की पहचान विशिष्ट तौर पर की जाती है। पूरे विश्व में विनियामकों द्वारा सामान्य पहचान व्यवस्था लागू किए जाने पर विचार किया जा रहा है। वित्तीय आंकड़ों के लिए एक विशिष्ट विधिक संस्था पहचान (एलईआई) को आदर्श माना जाता है क्योंकि इससे विनियमन एवं जोखिम प्रबंधन में सुधार लाने में मदद मिलती है। वित्तीय स्थिरता बोर्ड तथा जी-20 के वित्त मंत्रियों और नेताओं ने सामान्य पहचान प्रणाली बनाने के महत्त्व को स्वीकार किया है। वित्तीय स्थिरता बोर्ड वित्तीय लेनदेनों वाले व्यक्तियों/संस्थाओं के विशिष्ट संघटन के लिए एकल वैश्विक प्रणाली स्थापित करने हेतु वित्तीय विनियामकों और उद्योग द्वारा किए जानेवाले कार्यों का समर्थन कर रहा है।

भारत में बैंकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे नये खाते खोलते समय ग्राहक पहचान प्रक्रियाओं का अनुपालन करें ताकि धोखाधड़ी और धनशोधन संबंधी जोखिम को कम किया जा सके। हालांकि भारत स्थित कुछ बैंकों ने स्वेच्छा से विशिष्ट ग्राहक पहचान कोड (यूसीआईसी) विकसित किया है, तथापि विनियामक निर्धारण के अभाव में इस प्रथा का अनुसरण सभी बैंकों द्वारा एकसमान रूप से नहीं किया गया। यूसीआईसी से बैंकों को ग्राहक की पहचान करने, उसके द्वारा प्राप्त की गयी सुविधाओं का पता लगाने, विभिन्न खातों में हुए वित्तीय लेनदेनों पर निगरानी रखने, जोखिम प्रोफाइल में सुधार लाने, ग्राहक की प्रोफाइल के बारे में समग्र राय बनाने तथा ग्राहक के लिए बैंकिंग परिचालनों को सरल बनाने में मदद मिलेगी। इस संबंध में भारत सरकार द्वारा गठित कार्यदल ने यह प्रस्ताव किया है कि विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के ग्राहकों के लिए विशिष्ट पहचान की शुरुआत की जाए। जहां संपूर्ण वित्तीय प्रणाली के लिए इस प्रकार की प्रणाली वांछनीय है, वहीं इस बात की संभावना है कि इसे पूर्णतः लागू करने में कुछ समय लगेगा।

इस पृष्ठभूमि में, रिज़र्व बैंक ने बैंकों को सूचित किया है कि वे शुरुआती तौर पर उनके सभी नये ग्राहकों को यूसीआईसी नंबर आबंटित करने के लिए कदम उठाएं। बैंकों को यह भी सूचित किया गया है कि वे अप्रैल 2013 के अंत तक वर्तमान व्यक्तिगत ग्राहकों को भी यूसीआईसी आबंटित करें।

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति संबंधी रिपोर्ट, 2011-12

बासेल-III : एक परिचय

संदीप गुप्ता
संकाय, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र , लखनऊ

हम सभी जानते हैं कि बैंकिंग का मूल आधार निवेशकों का भरोसा ही होता है। आज चूंकि एक देश की ही नहीं अपितु समूचे विश्व की बैंकिंग व्यवस्था आपस में गहरी जुड़ी है। ऐसे में किसी एक बैंक की व्यवस्था में खराबी या उसके कार्यकलापों से उसके निवेशकों को हानि न केवल उस बैंक विशेष के लिए ख़तरा बन सकता है वरन यह समूची बैंकिंग प्रणाली के लिए भी संकट पैदा कर सकता है। ऐसे में यह नितांत आवश्यक होता है कि बैंक निर्धारित नियमों के अंतर्गत कार्य करें तथा आज भूमंडलीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में जब बैंकों के कार्य क्षेत्र भौगोलिक सीमाओं से आगे निकल गए हैं तो नियमों का वैश्वीकरण होना भी आवश्यक है। अब ग्राहकों का प्रकार तथा उनकी अपेक्षाएं भी वैश्विक हो गई हैं तथा वैश्विक पटल पर कार्यरत बैंक उनके लिए नित-नए तथा लुभावने उत्पाद तथा सेवाएं प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हें कम्प्यूटरीकरण ने बेहद जटिल तथा गतिशील कर दिया है। ऐसे में ग्राहकों को विश्वसनीय सेवा मिलती रहे तथा किसी एक बैंक या कुछ बैंकों के चरमराने से समूची प्रणाली ध्वस्त (Systemic Failure) न हो जाए, इसके लिए बृहद स्तर के नियम तथा उनका कड़ाई से पालन बेहद आवश्यक है ताकि वैश्विक तथा देशी वातावरण सुरक्षित बना रहे तथा निवेशकों का बैंकों तथा बैंकिंग व्यवस्था में विश्वास बना रहे।

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति [BCBS (Basel Committee on Banking Supervision)]- बासेल समिति के नाम से मशहूर 1974 में स्थापित इस संस्था का उद्देश्य विभिन्न देशों के बैंकों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने के लिए अनौपचारिक दिशानिर्देश तथा सुरक्षात्मक उपाय सुझाना है ताकि बैंकों को सुरक्षित वातावरण मिल सके तथा वैश्विक स्तर पर बैंकों के आपसी संव्यवहार में समन्वय, सामंजस्य, पारदर्शिता तथा विश्वास का माहौल रहे। वर्तमान में इस संस्था में विश्व के 27 देश सदस्य हैं तथा इसका सचिवालय स्विट्ज़रलैंड के शहर बासेल में स्थित है। सदस्य देशों के केंद्रीय बैंकों के प्रमुखों से विचार-विमर्श करने के उपरांत यह समिति समय-समय पर दिशानिर्देश जारी करती है। समिति ने वर्ष 1988 में बासेल-I तथा वर्ष 2004 में बासेल-II के रूप में अपनी सिफारिशें जारी की थीं जिनका सदस्य देशों के बैंकों ने निर्धारित समय सीमा के अनुसार अनुपालन किया। समिति की सिफारिशें बैंकिंग परिचालनों में निहित तथा संभावित जोखिमों के मद्देनजर जारी की जाती हैं ताकि उनकी सार्थकता तथा वैधता बनाए रखी जा सके। लेकिन चिर गतिशील बैंकिंग परिप्रेक्ष्य में समिति की अपनी सीमाएँ हैं इसलिए इसके द्वारा अनुशंसित सिफारिशें कभी-कभी अप्रभावी साबित हुई हैं। परिणामस्वरूप, कुछ बैंकों की अति क्लिष्ट तथा बृहत् पैमाने के बैंकिंग संव्यवहार ने उनके साथ समूची बैंकिंग प्रणाली और उसके साथ-साथ देशों की वित्तीय आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था को काफी प्रभावित किया है। इसका ताजा उदाहरण 2008 का वित्तीय संकट है जब अमेरिका के कुछ बैंकों तथा वित्तीय घरानों ने अति क्लिष्ट वित्तीय परिचालनों के माध्यम से ऐसे बैंकिंग संव्यवहार किए जिनकी परिणति में अमेरिका के बैंक, वहाँ की अति सुदृढ़ अर्थव्यवस्था तो ध्वस्त हुई ही साथ ही साथ समूचे विश्व की अर्थव्यवस्था भी इतनी चरमरा गई कि अभी तक बहुत से देश उबर नहीं पाए हैं। निश्चित तौर पर इससे बैंकों के ग्राहक तथा देशों के नागरिक सर्वाधिक प्रभावित हुए जिन्हें वित्तीय रूप से बेहद क्षति का सामना तो करना पड़ा ही लेकिन साथ ही बैंकिंग व्यवस्था पर से उनका विश्वास भी डगमगा गया है।

ऐसे में समिति द्वारा अपनी सिफारिशों का पुनरीक्षण करना आवश्यक था जिसके अंतर्गत समिति ने बैंकिंग क्षेत्र को और अधिक मजबूत करने के लिए बासेल-III के रूप में अपनी सिफारिशें नए सिरे से प्रस्तुत कीं। उसने यह निर्णय लिया कि इन सिफारिशों को 1 जनवरी 2013 से लागू किया जाए।

बासेल-III

प्रथम तथा द्वितीय चरण में प्रस्तुत सिफारिशों में समिति ने बैंकों के परिचालनात्मक अथवा संभावित बाजार जोखिमों को ध्यान में रखते हुए समुचित पूंजी रखने तथा अपनी गतिविधियों की स्पष्ट रिपोर्टिंग के माध्यम से पारदर्शिता बनाए रखने की जो सिफारिशें की थीं उन्हीं को और अधिक सुदृढ़ एवं परिवर्तित कर आने वाले समय में उन्हें और अधिक प्रभावशाली तथा तर्कसंगत बनाते हुए बासेल-III में शामिल किया गया। इनका विवरण तथा बासेल-II के साथ तुलनात्मक विवेचन नीचे दर्शाया गया है।

(i) बासेल-II भले ही जोखिम के आधार पर समुचित पूंजी की व्यवस्था पर ज़ोर देता रहा है परंतु इन सिफारिशों के आलोचकों ने पाया कि बासेल-II में पूंजी उस समय अधिक रखना आवश्यक किया गया जब बाजार में मंदी का दौर हो। जबकि उस समय बाजार से पूंजी प्राप्त कर पाना बेहद कठिन कार्य होता है, वहीं अच्छे समय में अधिक पूंजी निर्धारण पर कोई ज़ोर नहीं है। बासेल-III में इस विसंगति को दूर करते हुए अच्छे समय में अतिरिक्त पूंजी रखने का प्रावधान किया गया है ताकि इसका उपयोग कठिन समय में किया जा सके, जिससे निर्धारित पूंजी पर इसका असर न हो तथा निवेशकों को उनके निवेश पर प्रतिफल मिलता रहे और प्रणाली पर उनका भरोसा बना रहे।

(ii) बासेल-II में पूंजी पर्याप्तता पर बल तो दिया गया था परंतु उसमें बदलते बाजार परिवेश में संभावित जोखिमों विशेषकर डेरिवेटिव जैसे जटिल संव्यवहार से संभावित हानि के लिए नियामक पूंजी की परिभाषा, संरचना तथा गुणवत्ता में विशेष बल नहीं दिया गया था। साथ ही, उसमें ऐसी किसी प्रकार की हानि से निपटने के लिए स्थायी पूंजी (Core Capital) की पर्याप्तता पर भी विशेष बल नहीं दिया गया था जिसे बासेल-III में सुधारा गया है।

बासेल-II तथा बासेल-III के अंतर्गत पूंजी पर्याप्तता

		(जोखिम भारित आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)	
	आवश्यकता	बासेल-II	बासेल-III (यथा 01.01.2019)
1=(2+4)	न्यूनतम कुल पूंजी	8.0	8.0
2.	न्यूनतम टियर-1 पूंजी	4.0	6.0
3.	जिसमें: न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी	2.0	4.5*
4.	अधिकतम टियर-2 पूंजी (कुल पूंजी के अंतर्गत ही)	4.0	2.0
5.	पूंजी संरक्षण बफर	—	2.5**
6=(3+5)	न्यूनतम सामान्य इक्विटी (टियर 1 + पूंजी संरक्षण बफर)	2.0	7.0
7=(1+5)	न्यूनतम कुल इक्विटी + पूंजी संरक्षण बफर	8.0	10.5

* इसे विभिन्न चरणों में प्राप्त करना है। यह 2013 से पूर्व 2.00%, 1 जनवरी 2013 से 3.5%, 1 जनवरी 2014 से 4% तथा 1 जनवरी 2015 से 4.5% होगा।

** यह वर्ष 2016 से पहले 0%, 1 जनवरी 2016 से 0.625%, 1 जनवरी 2017 से 1.25%, 1 जनवरी 2018 से 1.875% तथा 1 जनवरी 2019 से 2.5% होगा।

जैसा कि स्पष्ट है कि बासेल-III के अंतर्गत अधिक तथा बेहतर गुणवत्ता वाली पूंजी का निर्धारण किया गया है। भले ही न्यूनतम सकल पूंजी 8% में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है तथापि बासेल-III के अंतर्गत इस पूंजी के अतिरिक्त पूंजी संरक्षण बफर 2.5% (जोखिमभारित आस्ति) का प्रावधान किया गया है। इसे चरणबद्ध तरीके से 2019 तक हासिल करना है ताकि हानि से निपटने के लिए स्थायी पूंजी को प्रभावित किए बिना इस अतिरिक्त पूंजी का उपयोग किया जा सके।

प्रतिचक्रीय बफर अनुपात

बासेल-III के अंतर्गत बैंकों को अच्छे समय में इस तरह का बफर 0%-2.5% सामान्य इक्विटी के रूप में रखना होगा जिससे प्रतिकूल समय में बैंकिंग प्रणाली को बचाया जा सके। इस बफर की व्यवस्था 1 जनवरी 2016 से शुरू होगी तथा चरणबद्ध रूप में 1 जनवरी 2019 तक प्रत्येक वर्ष 0.625% की दर से बढ़ते-बढ़ते 2.5% तक होनी है। जिन बैंकों का पूंजी अनुपात 2.5% से कम होगा, उन पर लाभांश या बोनस भुगतान करने पर रोक लगा दी जाएगी।

अंतरराष्ट्रीय न्यूनतम चलनिधि मानक

इसके अन्तर्गत दो नए अनुपातों पर ज़ोर दिया गया है: (i) चलनिधि कवरेज अनुपात - इसके अनुसार बैंकों को चल आस्तियां इस प्रकार रखनी चाहिए कि कम से कम 30 दिन का नकदी बहिर्गमन (आउट फ्लो) सरलता से हो सके। इसका अनुपात हमेशा 100% से अधिक होना चाहिए (इसे 1 जनवरी 2015 से लागू किया जाना है)।

इसके अतिरिक्त दीर्घावधि के लिए निवल स्थिर निधीयन अनुपात का प्रावधान किया गया है जिसके अंतर्गत ''उपगत हानि'' (Incurred Loss) की अपेक्षा ''संभावित हानि'' (expected loss) को आधार माना जाएगा, ताकि वित्तीय अभिलेखों की रिपोर्टिंग में और अधिक पारदर्शिता हो सके जिसका लाभ सभी संबद्ध पक्षों, जिसमें विनियामक, पर्यवेक्षक तथा शेयरधारक शामिल हैं, को मिल सके।

प्रतिपक्षी पार्टी क्रेडिट जोखिम

इस पहलू पर बासेल-II के विफल होने के चलते बासेल-III में प्रतिपक्षी क्रेडिट जोखिम को आंकने तथा समुचित प्रावधान करने की व्यवस्था की गई है ताकि प्रतिपक्षी की क्रेडिट विफलता के चलते हो सकने वाले संभावित नुकसान से निपटा जा सके।

बासेल-III और भारतीय बैंक

वास्तव में भारतीय बैंक बासेल-III के अंतर्गत अपेक्षित न्यूनतम पूंजी को पहले ही पार कर चुके हैं भले कुछ एक बैंकों को कुछ अतिरिक्त व्यवस्था करनी पड़े। भारत की संवृद्धि दर जिस तरह से बढ़ रही है ऐसे में निश्चित रूप से बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों का अनुपात बढ़ेगा जिससे अतिरिक्त जोखिम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वर्तमान में भारत में ऋण तथा जीडीपी अनुपात लगभग 55% है जिसके आने वाले समय में और अधिक बढ़ने की संभावना है। ऐसे में अतिरिक्त ऋण प्रदान करने तथा जोखिमों से निपटने के लिए भारतीय बैंकों को अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी।

भारतीय रिज़र्व बैंक के 31 मार्च 2018 की समयावधि को ध्यान में रखते हुए किए गए आकलन के अनुसार, भारतीय बैंकों को ₹ 5 ट्रिलियन अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी जिसमें से इक्विटी पूंजी का अंश ₹ 1.75 ट्रिलियन तथा गैर-इक्विटी पूंजी का अंश ₹ 3.25 ट्रिलियन के लगभग होगा। जहाँ तक इक्विटी पूंजी ₹ 1.75 ट्रिलियन का सवाल है इसकी भरपाई के लिए बैंकों के पास दो विकल्प हैं बाजार तथा सरकार। पिछले 5 वर्षों के आँकड़ों से पता चला है कि भारतीय बैंकों ने प्राथमिक बाज़ार से लगभग ₹ 520 बिलियन पूंजी जुटाई है। बैंकों को ₹ 700 बिलियन से ₹ 1 ट्रिलियन पूंजी की अतिरिक्त आवश्यकता होगी जिसे बासेल-III के अगले 5 वर्षों तक पूरी तरह लागू होने तक जुटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

इसके साथ ही, सरकार से प्राप्त होने वाली सहायता को यदि देखा जाए तो अभी भारतीय बैंकों में करीब 70% हिस्सेदारी सरकार की है। यदि सरकार अपनी हिस्सेदारी इसी स्तर पर रखे तो उसे ₹ 900 बिलियन की पूंजी प्रदान करनी होगी। वहीं आने वाले समय में सरकार अपनी हिस्सेदारी घटाकर 51% के आसपास रखती है तो भी यह राशि लगभग ₹ 700 बिलियन की होगी जो निश्चित रूप से सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती होगी।

बासेल-III और संवृद्धि की दर

कुछ आलोचकों का मानना है कि बासेल-III के लागू होने से संवृद्धि की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस संबंध में भले ही अभी कुछ भी कहना कठिन होगा लेकिन यहाँ यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि आने वाले समय में जैसे-जैसे जीडीपी दर बढ़ेगी वैसे-वैसे बैंकों से ऋणों की माँग बढ़ेगी। इसके साथ ही वित्तीय समावेशन, जिसे भारतीय रिज़र्व बैंक तथा सरकार बहुत ज़ोर-शोर से लागू करने में जुटी है, के चलते निम्न आय वर्ग के लाखों लोग औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जुड़ जाएंगे तथा उन्हें भी बैंकों से ऋणों की दरकार रहेगी। ऐसे में निश्चित रूप से बैंकों को बासेल-III

के अंतर्गत अतिरिक्त पूंजी उस समय जुटानी है जब उन पर अधिक ऋण वितरण करने का दबाव भी रहेगा। ऐसी स्थिति में बैंकों के लिए सामंजस्य स्थापित करना एक चुनौती होगा लेकिन विशेषज्ञ मानते हैं कि भले ही बासेल-III के कारण पूंजी जुटाने में लघु अवधि में कुछ अतिरिक्त भार का वहन करना पड़े लेकिन दीर्घावधि में यह संवृद्धि को गति प्रदान करने के लिए बेहतर सिद्ध होगा।

बासेल-III और भारतीय रिज़र्व बैंक

भारतीय रिज़र्व बैंक ने विगत मई 2012 में बासेल-III संबंधी अन्तिम दिशानिर्देश जारी किए हैं जिन्हें आगामी 1 जनवरी 2013 से लागू किया जाना है तथा जिसे 31 मार्च 2018 तक पूरा कर लिया जाना है। भले ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बासेल-III की सिफारिशों को लागू किए जाने की अंतिम तिथि 31 दिसंबर 2018 है लेकिन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 31 मार्च 2018 तिथि नियत किए जाने के पीछे तर्क यह दिया गया है कि भारत में वित्तीय वर्ष 31 मार्च को समाप्त होता है। इसलिए वित्तीय वर्ष की समाप्ति को ध्यान में रखते हुए इसे चुना गया है। अन्यथा इस तिथि को भारतीय वित्तीय वर्ष के अनुसार 31 मार्च 2019 रखना पड़ता, जो न केवल समिति की सिफारिशों का उल्लंघन होता अपितु जिसके लिए संभव है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आलोचना झेलनी पड़ती। इसलिए उस प्रतिकूल स्थिति से बेहतर है कि अभी कुछ अतिरिक्त बोझ सह लिया जाए।

इसके साथ ही, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित मानक बासेल-III द्वारा वांछित न्यूनतम मानकों से कुछ अधिक हैं जिसका विवरण आगे दी गई सारणी में दर्शाया गया है:

न्यूनतम विनियामक पूंजी मानक
(जोखिम भारित आस्तियों के प्रतिशत रूप में)

		बासेल-III : 1 जनवरी 2019 की स्थिति	रिज़र्व बैंक के अनुसार विनिर्दिष्ट स्तर	
			वर्तमान में लागू (बासेल-II)	बासेल-III : 31 मार्च 2018 की स्थिति
1=(2+4)	न्यूनतम सकल पूंजी	8.0	9.0	9.0
2.	न्यूनतम टियर-1 पूंजी	6.0	6.0	7.0
3.	जिसमें: न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी	4.5	3.6#	5.5
4.	अधिकतम टियर-2 कैपिटल (सकल पूंजी के अंतर्गत)	2.0	3.0	2.0
5.	पूंजी संरक्षण बफर	2.5	0	2.5
6=(3+5)	न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी + सीसीबी	7.0	3.6	8.0
7=(1+5)	न्यूनतम कुल पूंजी + सीसीबी	10.5	-	11.5

: चूंकि टियर-1 पूंजी में गैर-सामान्य इक्विटी पूंजी की सीमा अधिकतम 40% है इसलिए न्यूनतम सामान्य इक्विटी को 3.6% दर्शाया गया है।

बासेल-III के अंतर्गत निर्धारित मानकों से अधिक पूंजी रखने के भारतीय रिज़र्व बैंक के निर्देश के पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि चूंकि वर्तमान में भारतीय बैंकों के लिए बासेल-II के अंतर्गत मानकीकृत दृष्टिकोण (Standardised Approach) अपनाया गया है जिसके अनुसार आस्तियों की गुणवत्ता तथा मूल्यांकन के जोखिम भार लागू कर पूंजी की गणना करनी है ऐसे में हो सकता है कि बैंकों द्वारा आस्तियों के मूल्यांकन तथा पूंजी के सही निर्धारण में कहीं कोई विसंगति हो। इसलिए कुछ अधिक पूंजी रखने से ऐसे जोखिम से बचा जा सकता है जो किसी जोखिम भरे ऋण के लिए उचित पूंजी के प्रावधान न करने से उत्पन्न हो सकता हो। वैसे भी भारतीय रिज़र्व बैंक की यह दूरदर्शिता तथा सूझबूझ का ही परिणाम है कि 2008 में अमेरिका में आए वित्तीय संकट से भारतीय बैंकों पर विशेष आँच नहीं आई और भारतीय बैंकिंग व्यवस्था सुदृढ़ बनी रही।

यदि एक नजर हम आगे दी गई सारणी पर डालें तो हम पाते हैं कि भारत के अलावा विश्व के अन्य देशों में भी पूंजी पर्याप्तता निर्धारित मानकों से अधिक है:

देश	न्यूनतम सामान्य इक्विटी अनुपात (सीसीबी सहित)%	न्यूनतम कुल पूंजी अनुपात (%)
बासेल-III	7.0	10.5
भारत	8.0	11.5
फिलीपिंस	8.5	12.5
सिंगापुर	9.0	12.5
चीन	7.5	10.5
दक्षिण अफ्रीका	9.0	12.5

निष्कर्षतः हम यह पाते हैं कि बासेल-II की कमियों को बासेल-III में दूर करने का प्रयास किया गया है। भारतीय बैंक इसे लागू करने हेतु पूर्णतया तैयार हैं। वित्तीय वर्ष 2012 में भारतीय बैंकों के सीआरएआर का प्रतिशत 13 से अधिक रहा है। भले ही भारतीय बैंकों के लिए यह अनुपात अच्छा है और भारतीय बैंकिंग के अपेक्षाकृत कम जोखिम भरे क्षेत्रों में संबद्धता तथा विनियामक के कड़े नियंत्रण के चलते भारतीय बैंकों के लिए सीआरएआर का स्तर संतोषजनक है फिर भी स्वयं को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनाए रखने तथा वैश्विक स्पर्धा का मुकाबला करने के लिए भारतीय बैंकों को बासेल-III के मानक अपनाकर अपनी साख तथा सक्षमता को बनाए रखना होगा। आने वाला सफर अच्छा और सुरक्षित गुजरे इसके लिए कुछ अतिरिक्त सावधानी बरतने में किसी को भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

❍❍❍

बासेल-I और II के अंतर्गत जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात – बैंक समूह-वार
(मार्च अंत की स्थिति)

(प्रतिशत)

मद	बासेल-I		बासेल-II	
बैंक समूह	2011	2012	2011	2012
1	2	3	4	5
सरकारी क्षेत्र के बैंक	**11.78**	**11.88**	**13.08**	**13.23**
राष्ट्रीयकृत बैंक*	12.15	11.84	13.47	13.03
भारतीय स्टेट बैंक समूह	11.01	11.97	12.25	13.70
निजी क्षेत्र के बैंक	**15.15**	**14.47**	**16.46**	**16.21**
निजी क्षेत्र के पुराने बैंक	13.29	12.47	14.55	14.12
निजी क्षेत्र के नए बैंक	15.55	14.90	16.87	16.66
विदेशी बैंक	**17.71**	**17.31**	**16.97**	**16.74**
अनुसूचित वाणिज्य बैंक	**13.02**	**12.94**	**14.19**	**14.24**

टिप्पणी : *आईडीबीआई बैंक लिमिटेड शामिल है।
स्रोत : बैंकों द्वारा प्रस्तुत ऑफ साइट विवरणियों पर आधारित।

बासेल-III मानक : भारतीय बैंकों के लिए चुनौती या विकल्प

विनय बंसल
भारतीय स्टेट बैंक
आगरा मुख्य शाखा

हम देख चुके हैं कि बैंक ऑफ क्रेडिट एंड कॉमर्स इंटरनेशनल, बेयरिंग्स बैंक, डाइवा बैंक जैसे व्यावसायिक संगठन समाप्त हो गए क्योंकि उनके उच्च प्रबंधन ने जोखिम प्रबंधन नीति पर ध्यान नहीं दिया। यदि समुचित रूप से प्रबंध न किया जाए तो जोखिम किसी भी संगठन के अस्तित्व को खतरे में डाल सकता है। पहले विश्व के लगभग सभी बैंक नियंत्रित परिवेश में काम करते थे। अस्सी के दशक में अनेक अर्थव्यवस्थाओं में उदारीकरण, निजीकरण, अधिकाधिक स्वायत्तता एवं न्यूनतम नियंत्रण-नियमन, गलाकाट प्रतिस्पर्धा, अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्तीय परिचालनों की मात्रा में वृद्धि आदि के कारण समूचे तंत्र के लिए जोखिम अधिक हो जाने तथा दुनिया भर में बैंकों को अभिशासित करने वाली विनियमन नीतियों में एकरूपता के अभाव के कारण यह महसूस किया गया कि एक अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की जाए जो अंतरराष्ट्रीय रूप से बैंकों के लिए जोखिम प्रबंधन नीतियों में एकरूपता लाने का कार्य करे।

इसी अनुक्रम में 1975 में बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट, जो कि स्विटज़रलैंड के बासेल शहर में स्थित है, ने जी-10 समूह (वर्तमान में जी-13 समूह) के केंद्रीय बैंकों के गवर्नरों की सदस्यता वाली एक समिति गठित की। इस समिति को बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) के नाम से जाना जाता है। इस समिति ने अंतरराष्ट्रीय रूप से बैंकों के लिए जोखिम प्रबंधन, पर्यवेक्षण से संबंधित बैंकिंग नीतियों में एकरूपता लाने के लिए जो समझौता किया उसे बासेल समझौता कहते हैं। यह कोई कठिन मानदंड निर्धारित नहीं करता है, अपितु नीति परिभाषित करने के लिए व्यापक सिद्धांत और दिशानिर्देश निर्धारित करता है, जिन्हें प्रत्येक देश अपनी अपेक्षाओं और प्राथमिकताओं के अनुकूल अपना सकता है। इसके पीछे कोई कानूनी बाध्यता न होने के बावजूद अधिकांश देशों के केंद्रीय बैंकों ने इनका स्वागत किया और अपने बैंकों को बासेल दिशानिर्देश अपनाने के लिए प्रेरित किया।

बासेल-I

वर्ष 1988 में अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग व्यवस्था की ऋणशोधन क्षमता और स्थिरता को सुदृढ़ करने के लिए बीसीबीएस ने प्रथम बासेल समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसकी सिफारिशों को लागू करने के लिए जी-10 देशों में 1992 तक की अवधि दी गई। बासेल-I मुख्यत: बैंकों के ऋण प्रकटीकरण को न्यूनतम पूंजीगत आवश्यकता से जोड़ने से संबंधित था। उस समय तक बैंकिंग व्यवसाय में जोखिम को केवल उसके आस्ति प्रबंध के रूप में देखा जाता था। अत: यह तय किया गया कि उन सभी बैंकों, जो विश्व व्यापार में सहभागिता करते हैं तथा जो बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट के प्रतिभागी हैं, का पूँजी आधार जोखिम भारित आस्तियों का कम-से-कम 8 प्रतिशत हो। बासेल-I के अनुसार किसी बैंक को सर्वाधिक जोखिम उसके ऋण प्रबंधन से होता है, जबकि समय ने यह सिद्ध कर दिया कि ऋण प्रबंधन के अतिरिक्त भी अन्य कारणों से बैंकों का वित्तीय आधार कमजोर हो सकता है, जैसे- बैंकों के वाणिज्यिक खातों में शामिल आस्तियां जिनका मूल्य बाजार पर निर्भर करता है (जैसे विदेशी विनिमय के रूप में आस्ति)। ऐसी आस्तियों का मूल्य बाजार द्वारा निर्धारित किए जाने के कारण बदलता रहता है। इन बाजार निर्धारित आस्तियों के जोखिम प्रबंधन हेतु वर्ष 1996 में बासेल-I में संशोधन कर बाजार जोखिम को जोखिम प्रबंधन के अंतर्गत शामिल किया गया (लेकिन परिचालनात्मक जोखिम को इसमें शामिल नहीं किया गया)।

इसके अतिरिक्त बासेल-I में एक तरह की आस्ति को समान ही आंका गया तथा उसमें व्याप्त जोखिम के आकलन का आधार भी समान रखा गया जो तार्किक रूप से गलत था क्योंकि एक ही वर्ग की आस्तियों में जोखिम का स्तर अलग-अलग होता है,

उदाहरणार्थ – सभी सरकारी प्रतिभूतियों को शून्य प्रतिशत जोखिम भार एवं सभी कॉरपोरेट को 100 प्रतिशत जोखिम भार दिया गया, जबकि प्राय: इन वर्गों में आने वाले खातों में भिन्न-भिन्न जोखिम होते हैं।

बासेल-II

बैंक में जोखिम केवल उनके ऋण या बाजार प्रबंधन से ही नहीं होता, बल्कि बैंक की अपनी प्रबंध क्षमता की भी जोखिम नियमन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि बैंक प्रबंधन के निर्णय विवेकपूर्ण, तर्कसंगत एवं उचित हैं तो जोखिम कम होगा और इसके विपरीत स्थिति में जोखिम अधिक होगा। इसके अतिरिक्त संशोधित बासेल-I समझौते में भी केवल ऋण जोखिम और बाजार जोखिम पर प्रकाश डाला गया और परिचालन जोखिम को शामिल नहीं किया गया। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए बीसीबीएस ने वर्ष 2004 में एक रिपोर्ट जारी की जिसे 'इंटरनेशनल कन्वर्जेंस ऑफ कैपिटल मेशरमेंट एंड कैपिटल स्टैंडर्ड' के नाम से जाना जाता है और जो बासेल-II फ्रेमवर्क के रूप में लोकप्रिय है।

बासेल-II के अनुसार जोखिमों को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा गया है। ऋण जोखिम, बाजार जोखिम और परिचालनात्मक जोखिम। इसके तीन स्तंभ हैं। स्तंभ-1 का संबंध न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं, स्तंभ-2 का संबंध पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया तथा स्तंभ-3 का संबंध बाजार अनुशासन से है।

बासेल - III

भारतीय रिज़र्व बैंक ने बासेल पूंजी विनियमन पर मई 2012 में अंतिम दिशानिर्देश जारी किए हैं। भारत में बैंक 1 जनवरी 2013 से इन दिशानिर्देशों का क्रियान्वयन शुरू करेंगे और एक चरणबद्ध ढंग से 31 मार्च 2018 तक इन्हें पूरी तरह लागू करेंगे।

भारत में बासेल-III को लागू करने के लिए मानदंडों के संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी अंतिम दिशानिर्देशों के अनुसार सामान्य इक्विटी टियर-I पूंजी, जिसमें शुद्ध इक्विटी तथा सांविधिक एवं आरक्षित पूंजी निधियां शामिल हैं, जोखिम भारित आस्तियों के कम-से-कम 7 प्रतिशत के बराबर होनी चाहिए तथा कुल पूंजी जोखिम भारित आस्तियों की कम-से-कम 9 प्रतिशत होनी चाहिए। जोखिम भारित आस्तियों के 5.5 प्रतिशत की एक संयुक्त इक्विटी के रूप में एक पूंजी संरक्षण बफर की स्थापना का भी सुझाव दिया गया है। सामान्य इक्विटी के रूप में पूंजी संरक्षण बफर जोखिम भारित आस्तियों का कम-से-कम 2.5 प्रतिशत होना चाहिए। मसौदा दिशानिर्देश चरणबद्ध तरीके से 1 जनवरी 2013 से प्रभावी होंगे और 31 मार्च 2018 से पूरी तरह लागू होंगे। ओवर-द-काउंटर डेरीवेटिव के लिए मौजूदा एक्सपोज़र पद्धति के अंतर्गत प्रतिपक्षी जोखिम के लिए पूंजी प्रभार के अलावा बैंकों को अतिरिक्त ऋण मूल्य समायोजन जोखिम पूंजी प्रभार की गणना करनी होगी।

बासेल समिति और भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता अनुपात नीचे तालिका में दर्शाए गए हैं-

न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता अनुपात

(प्रतिशत में)

	अनुपात	बासेल समिति	भा.रि. बैंक
1	सामान्य इक्विटी टियर-I अनुपात	4.5	5.5
2	पूंजी संरक्षण बफर	2.5	2.5
3	सामान्य इक्विटी टियर-I अनुपात + सामान्य पूंजी संरक्षण बफर (1+2)	7	8
4	अतिरिक्त टियर-I पूंजी	1.5	1.5
5	टियर-I पूंजी अनुपात (1+4)	6	7
6	टियर-II पूंजी अनुपात	2	2
7	कुल पूंजी अनुपात (5+6)	8	9
8	कुल पूंजी अनुपात + पूंजी संरक्षण बफर (7+2)	10.5	11.5

बासेल-III दिशानिर्देशों के कार्यान्वयन हेतु पूंजी आवश्यकता प्रारंभ के वर्षों में निम्नतर तथा बाद के वर्षों में उच्चतर हो सकती है। पूंजी आयोजना करते समय बैंकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए। भारतीय रिज़र्व बैंक प्रतिचक्रीय पूंजी बफर के क्रियान्वयन

के परिचालनात्मक पहलुओं पर कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त पूंजी की परिभाषा, प्रकटन की आवश्यकता, केंद्रीय प्रतिपक्षकारों के बैंक एक्सपोज़र का पूंजीकरण आदि भी बासेल समिति का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकों को सूचित किया है कि वे मार्च 2013 से बासेल-II दिशानिर्देश तथा बासेल-III दिशानिर्देश दोनों के अनुसार ही पूंजी अनुपात प्रकट करें।

जोखिम का वर्गीकरण

ऋण जोखिम

ग्राहक द्वारा समय पर ऋण की चुकौती न कर पाने के कारण उत्पन्न जोखिम को ऋण जोखिम कहते हैं। ऋण जोखिम में लेनदेन जोखिम, चूक जोखिम, प्रतिपक्षी जोखिम, अंतर्निहित जोखिम, संकेंद्रण जोखिम, देश जोखिम, निपटान जोखिम आदि शामिल हैं। बासेल-II बैंकों को ऋण जोखिम हेतु पूंजी प्रभारों के परिकलन के दो दृष्टिकोणों (मानकीकृत दृष्टिकोण तथा आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण) में से किसी एक का चयन करने की छूट देता है। मानकीकृत दृष्टिकोण के अंतर्गत बैंक उपयुक्त रूप में आस्तियों का वर्गीकरण तथा जोखिम प्रशासकों, लिखत के प्रकार और आस्ति की गुणवत्ता जैसे अन्य कारकों का उचित संज्ञान लेकर बाह्य साख निर्धारण एजेंसियों द्वारा किए गए मूल्यांकन के आधार पर जोखिम भार निर्धारित करते हुए बैंक आस्तियों के ऋण जोखिम के लिए जोखिम भार का प्रयोग करते हैं।

आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण के अंतर्गत बैंकों को प्रतिपार्टियों और एक्सपोज़रों के लिए स्वयं द्वारा की गई आंतरिक रेटिंग से जोखिम भार का निर्धारण करना होता है। यह दृष्टिकोण बासेल समिति द्वारा संस्तुत एक सूत्र पर निर्भर है जिसके चार प्रमुख अवयव हैं - चूक की संभावना (पीडी), हानिकारक चूक (एलजीडी), चूक पर एक्सपोज़र (ईडी) तथा परिपक्वता। आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण के दो प्रकार हैं - आंतरिक रेटिंग आधारित बुनियादी दृष्टिकोण (एफआईआरबी) तथा आंतरिक रेटिंग आधारित उन्नत दृष्टिकोण (एआईआरबी)। आंतरिक रेटिंग आधारित बुनियादी दृष्टिकोण के अंतर्गत बैंक प्रत्येक ऋणी के चूक की संभावना का अनुमान स्वयं करता है, जबकि शेष तीनों अवयवों की आपूर्ति पर्यवेक्षक द्वारा की जाती है। आंतरिक रेटिंग आधारित उन्नत दृष्टिकोण के अंतर्गत बैंक स्वयं चूक की संभावना के साथ-साथ अन्य निविष्टियों का आकलन करता है। इस दृष्टिकोण के लिए अपेक्षाएं अधिक कठोर हैं।

बाजार जोखिम

बैंक के तुलन-पत्र में शामिल आस्तियों की मांग और पूर्ति में असंतुलन के कारण उनकी कीमतों में गिरावट के कारण यह जोखिम उत्पन्न होता है। बाजार जोखिम में ब्याज दर जोखिम, विदेशी विनिमय जोखिम, इक्विटी कीमत जोखिम, पण्य कीमत जोखिम, चलनिधि जोखिम, व्यवसाय जोखिम, साख जोखिम, रणनीतिक जोखिम आदि शामिल हैं। बाजार असंतुलन के कारण उत्पन्न जोखिम के परिकलन हेतु बासेल-II द्वारा दो दृष्टिकोण निर्धारित किए गए हैं - मानकीकृत दृष्टिकोण तथा आंतरिक प्रतिदर्श दृष्टिकोण। मानकीकृत दृष्टिकोण के अंतर्गत ब्याज दर संबंधी और इक्विटी लिखतों के कारण एक बिल्डिंग ब्लॉक दृष्टिकोण अपनाया गया है जो विशिष्ट जोखिम के लिए पूंजीगत आवश्यकताओं को सामान्य जोखिम भार से अलग कर देता है। विशिष्ट जोखिम भार को एकल जारीकर्ता से संबंधित कारकों के कारण किसी एकल प्रतिभूति के मूल्य में प्रतिकूल गतिविधि से बचाने के लिए बनाया गया है जबकि सामान्य जोखिम भार ब्याज दर जोखिम से सुरक्षा हेतु बनाया गया है। आंतरिक प्रतिदर्श दृष्टिकोण बैंकों को अपनी आंतरिक पद्धति का उपयोग करने में समर्थ बनाता है। लेकिन इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि बैंक बीसीबीएस द्वारा निर्धारित गुणात्मक और मात्रात्मक मानदंडों को पूरा करें तथा उसे अपने पर्यवेक्षक का अनुमोदन प्राप्त हो।

परिचालनात्मक जोखिम

अपर्याप्त अथवा विफल आंतरिक प्रक्रियाओं, लोगों और प्रणालियों के अलावा बाह्य घटनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न जोखिम को परिचालनात्मक जोखिम कहते हैं। यह किसी भी कार्मिक मशीन या नियमों में शिथिलता के कारण उत्पन्न हो सकता है। परिचालनात्मक जोखिम में विधिक जोखिम, नियंत्रण जोखिम, प्रक्रिया जोखिम, पद्धति जोखिम, कार्यस्थल सुरक्षा जोखिम, मानव संसाधन जोखिम, विपणन जोखिम, धोखाधड़ी जोखिम, प्रौद्योगिकी जोखिम, व्यवसाय क्षमता जोखिम, सुरक्षा जोखिम, संचार जोखिम, प्रलेखन जोखिम आदि शामिल हैं। परिचालनात्मक जोखिम के

लिए पूंजी प्रभार के मापन हेतु बासेल-II में निम्नलिखित तीन दृष्टिकोण संस्तुत किए गए हैं- आधारभूत संकेतक दृष्टिकोण, मानकीकृत दृष्टिकोण तथा उन्नत मापन दृष्टिकोण। आधारभूत संकेतक दृष्टिकोण परिचालनात्मक जोखिम के लिए सकल आय के नियत प्रतिशत के रूप में प्रभार निर्धारित करता है जो बैंक के जोखिम एक्सपोज़र के लिए एक प्रतिनिधि का कार्य करता है। मानकीकृत दृष्टिकोण में बैंक परिचालनों को 8 मानक व्यावसायिक वर्गों में बांटा गया है जिनमें से प्रत्येक व्यावसायिक वर्ग हेतु जोखिम के लिए पूंजी समनुदेशन बीटा से उस व्यावसायिक वर्ग की सकल आय को गुणा करके प्राप्त की जाती है। उन्नत मापन दृष्टिकोण के अंतर्गत विनियामक पूंजीगत अपेक्षा बैंक द्वारा प्रत्येक व्यावसायिक वर्ग के लिए आंतरिक परिचालनात्मक जोखिम प्रणाली द्वारा निकाले गए जोखिम के माप के समान होगी।

क्या भारतीय बैंक बासेल-III के लिए तैयार हैं?

मार्च 2009 में भारत के सभी अनुसूचित बैंकों ने बासेल-II के बुनियादी दृष्टिकोणों का माइग्रेशन कार्य पूर्ण कर लिया है। बासेल-III के अधीन पूंजी पर्याप्तता आवश्यकता की गणना के लिए उन्नत दृष्टिकोण अपनाने पर ध्यान केंद्रित हो गया है। ये उन्नत दृष्टिकोण अलग-अलग बैंकों की विनियामक पूंजी तथा उनकी जोखिम रूपरेखा में सामंजस्य लाने में सहायता करेंगे। बैंकिंग उत्पादों तथा कारोबारी प्रतिदर्शों (मॉडलों) के अधिकाधिक जटिल होने से उन्नत दृष्टिकोणों में इन उत्पादों में निहित जोखिम मापे जा सकते हैं और उनका बेहतर ढंग से प्रबंध किया जा सकता है। अत: उन्नत दृष्टिकोणों को अपनाने से वित्तीय उत्पादों के मूल्यन तथा निष्पादन के मापन में भी सहायता मिलेगी।

मानक दृष्टिकोणों की तुलना में उन्नत दृष्टिकोण अपनाना अधिक चुनौतीपूर्ण है। पहला, उन्नत देशों के विपरीत, भारत में बैंक जोखिम प्रबंधन में उन्नत मात्रात्मक तकनीकों के प्रयोग से भली-भांति परिचित नहीं हैं जो बासेल-II के अधीन जोखिम उपायों को मापने के लिए आवश्यक हैं। दूसरा, बैंकों को उन्नत जोखिम प्रबंधन ढांचे के लिए, विशेषकर स्टाफ के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन और क्षतिपूर्ति योजना के रूप में कार्यान्वयन के लिए, संस्थागत क्षमताएं बढ़ानी हैं। तीसरा, बैंकों को गुणवत्ता वाले डेटा, आर्थिक चक्र की समझ, जोखिम प्रतिदर्शों के वैधीकरण के लिए मात्रात्मक तकनीकों तथा दक्ष स्टाफ की आवश्यकता है। अत: उचित यही होगा कि पर्याप्त जोखिम प्रबंध प्रणालियों वाले बड़े बैंक पहले उन्नत दृष्टिकोण अपनाएं और दूसरे बैंक जोखिम प्रबंध प्रणालियों और ब्याज को इस प्रकार अपनाएं कि वह उनके वर्तमान परिचालनों के अनुरूप हो और साथ-साथ उन्नत दृष्टिकोणों के लिए वांछित संगठनात्मक कौशल बढ़ाएं।

इसके अतिरिक्त अलग-अलग दृष्टिकोणों के कार्यान्वयन में विशिष्ट चुनौतियां जुड़ी हैं। पहला, आंतरिक रेटिंग आधारित दृष्टिकोण के अधीन ऋण जोखिम के प्रतिदर्श में बैंक के अपने ऐतिहासिक ऋण के आधार पर हानिकारक चूक (एलजीडी) के संबंध में चूक की संभावना का प्रतिदर्श बनाने की आवश्यकता है। ऐसी प्रक्रिया में पर्याप्त ऐतिहासिक डेटा न होना एक कठिनाई है। इसके अतिरिक्त, संबंधित डेटा अक्सर अलग-अलग प्रणालियों और इकाइयों में रखे जाते हैं और बैंकों द्वारा प्रयुक्त पारंपरिक आस्ति श्रेणियां भारतीय रिज़र्व बैंक के दृष्टिकोण से भिन्न हैं। भारत में प्रयोग के लिए बाजार डेटा के आधार पर जोखिम प्रतिदर्श की उपयुक्तता बहुत सीमित है क्योंकि अधिकांश उधारकर्ता कंपनियां असूचीबद्ध हैं और उनके पास सूचीबद्ध कंपनी बॉण्ड नहीं हैं।

दूसरा, उन्नत दृष्टिकोण (एएमए) के अंतर्गत परिचालनात्मक जोखिम का प्रतिदर्श बनाना बाह्य हानि और गुणवत्ता वाले आंतरिक हानि डेटा के अभाव के कारण चुनौतीपूर्ण है। इसके अतिरिक्त परिचालनात्मक जोखिम पूंजी प्रभार की गणना कारोबारी परिवेश के प्रभाव, आंतरिक नियंत्रण घटक और परिदृश्य विश्लेषण का प्रयोग करने में उल्लेखनीय व्यक्तिपरक निर्णय करना होता है।

तीसरा, हालांकि बाजार जोखिम के लिए आंतरिक प्रतिदर्श दृष्टिकोण (आईएमए) में अधिक डेटा तथा प्रतिदर्श की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इसके लिए कार्यविधियां अभी प्रारंभिक अवस्था में हैं।

बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट तथा भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अलग-अलग किए गए आकलन से पता चलता है कि फेज-इन अवधि में बासेल-III मानक अपनाने के लिए भारतीय बैंक तैयार हैं। तथापि, कई चुनौतियां बनी हुई हैं जैसे कि जोखिम प्रावधान प्रणालियों को उन्नत करना, कुछ कड़ी विनियामक व्यवस्था के रहते हुए भी तीव्रता से विकासशील अर्थव्यवस्था की सभी आवश्यकताओं को पूरा करना।

कुछ बड़े बैंकों ने बासेल-III विनियामक तंत्र की ओर बढ़ने की प्रक्रिया पहले से ही शुरू कर दी है। हालांकि बैंकिंग प्रणाली एक इकाई के रूप में इन मानदंडों को पूरा करने में बड़ी कठिनाई महसूस नहीं करेगी किंतु हो सकता है कि कुछ बैंक एकल रूप से मानदंड पूरे न कर सकें तथा उन्हें तुरंत पूंजी में बढ़ोतरी की आवश्यकता पड़े। बड़े पैमाने पर राजकोषीय घाटा होने की स्थिति में सरकार बैंकों को पूंजी नहीं उपलब्ध करा पाएगी, जो कि बड़ी चुनौती है। ऐसे में बैंकों के पास एक ही रास्ता है कि वे अपना लाभ बढ़ाने के लिए अपनी ऋण देने की क्षमता को बढ़ाएं।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों ने बासेल-III के अंतर्गत मानक दृष्टिकोणों का पहले ही पालन कर लिया है। अब समय आ गया है कि बड़े बैंक अपनी प्रणालियों को उन्नत करने एवं उन्नत दृष्टिकोण की ओर अग्रसर होने के लिए गंभीरतापूर्वक विचार करें। उन्नत दृष्टिकोण को अपनाने पर बैंकों को अपने दैनिक जोखिम प्रबंधन में अंतर्निहित प्रक्रियाओं का भी एकसाथ उपयोग करना आवश्यक होगा।

बासेल-III की आधारभूत आवश्यकताएं अब स्पष्ट हो चुकी हैं- (क) उच्चतर तथा बेहतर गुणवत्तावाली पूंजी, (ख) अत्यधिक जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समायोजित लीवरेज अनुपात, (ग) पूंजी बफर निर्माण जिसे अच्छे समय में बढ़ाया जा सकता है ताकि दबाव के समय में इनका उपयोग किया जा सके, (घ) न्यूनतम वैश्विक चलनिधि मानक, (ङ) पर्यवेक्षण, सार्वजनिक घोषणा एवं जोखिम प्रबंधन के सुदृढ़ मानक। मोटे आकलन से स्पष्ट होता है कि समग्र स्तर पर भारतीय बैंकों को पूंजी संबंधी नए नियमों के साथ मात्रात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही दृष्टि से सामंजस्य बनाने में कोई समस्या नहीं होगी। भारतीय बैंक पूंजी के नए नियमों के अनुपालन की दृष्टि से बेहतर स्थिति में हैं। कुछ बैंकों को, जो बेहतर स्थिति में नहीं हैं, अपने पूंजी आधार में वृद्धि करनी होगी। अधिक कठोर विनियामक व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जोखिम प्रबंधन प्रणालियों को उन्नत करके तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्था की कर्ज संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में भी चुनौतियां आएंगी। प्रतिचक्रीय पूंजी बफरों के अतिरिक्त, बासेल-III प्रतिचक्रीय प्रावधानों की भी अपेक्षा रखता है।

भारत में बैंकों के पास चलनिधि प्रावधानों का आधार है। परंतु भारतीय रिज़र्व बैंक ने प्रणालीगत दबाव की स्थिति को छोड़कर इसके उपयोग की अनुमति नहीं दी है। चलनिधि प्रावधान जहां प्रतिचक्रीय प्रावधान की आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, वहीं इसके उपयोग के संबंध में एक ढांचे का होना आवश्यक है। अस्थायी उपाय के रूप में भारतीय रिज़र्व बैंक स्पेन की डाइनामिक प्रोविजनिंग प्रणाली के समान एक पद्धति विकसित करने का प्रयास कर रहा है। परंतु आंकड़ों की कमी तथा बैंकों की विश्लेषण क्षमता को देखते हुए यह कार्य आसान नहीं लगता है। बासेल-III की ओर अग्रसर होने के लिए चल आस्तियों के एक पूल के जरिए चलनिधि के उच्च स्तर को बनाए रखना आवश्यक है। चल आस्तियों की परिभाषा काफी कठोर है जिसमें यह अपेक्षा भी शामिल की गई है कि उनका हर समय उपलब्ध होना जरूरी है।

भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों में न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता अनुपात बासेल समिति द्वारा निर्धारित पूंजी पर्याप्तता अनुपात से 1 प्रतिशत अधिक रखा गया है। यह भारतीय बैंकिंग क्षेत्र को अधिक सुदृढ़ता प्रदान करेगा।

भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट 2012 में कहा गया है कि 31 मार्च 2012 को भारत में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का पूंजी पर्याप्तता अनुपात 14.3 प्रतिशत रहा जो बासेल मानक (8 प्रतिशत) तथा भारतीय रिज़र्व बैंक मानक (9 प्रतिशत) से काफी अधिक है। लेकिन 31 मार्च 2018 तक बासेल-III मानक पूरी तरह लागू करने के लिए भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को लगभग 15 खरब रुपये सामान्य इक्विटी पूंजी की तथा लगभग 27 खरब रुपये गैर-इक्विटी पूंजी की आवश्यकता पड़ेगी। इसी तरह प्रमुख निजी बैंकों को लगभग 2 खरब रुपये की सामान्य इक्विटी पूंजी तथा लगभग 5 खरब रुपये की गैर-इक्विटी पूंजी की आवश्यकता पड़ेगी। इससे स्पष्ट है कि भारतीय बैंक बासेल-III मानकों को अपनाने के लिए पूरी तरह तैयार हैं, लेकिन इसके पूर्ण कार्यान्वयन में आने वाले जोखिमों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि बासेल-III मानक भारतीय बैंकों के लिए विकल्प भी है और एक चुनौती भी।

ooo

बासेल-III का भारतीय बैंकों पर प्रभाव

सुबह सिंह यादव
मुख्य प्रबंधक (प्रशिक्षण)
बैंक ऑफ बड़ौदा, प्रशिक्षण केंद्र, बरेली (उ.प्र.)

आर्थिक सुधारों के चलते बैंकिंग के अंदर एवं बाहर का परिदृश्य काफी चुनौतीपूर्ण हो गया है। वैश्वीकरण के साथ-साथ निजीकरण, अविनियमन एवं स्वयं बैंकिंग के जटिल उत्पादों ने भी बैंकिंग के क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया है जिसके फलस्वरूप बैंकिंग क्षेत्र को जोखिम का सामना करना पड़ रहा है। बैंकिंग में जोखिम की संभावनाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन जोखिम के परिणाम को कम या अधिक किया जा सकता है। सभी कारोबारी गतिविधियों को नियंत्रित करने का मूल मंत्र है - वृद्धिशील जोखिम समायोजित प्रतिफल। बैंकिंग व्यवसाय में जोखिम अपरिहार्य होने के कारण जोखिम प्रबंधन बैंकिंग क्षेत्र का प्रमुख अंग है।

ठीक इसी परिप्रेक्ष्य में बैंकिंग कारोबार में जोखिमपूर्ण स्थितियों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली हानि से निपटने के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य के लिए बैंक जोखिम भारित आस्तियों के लिए कुछ प्रतिशत अनुपात में पूंजी पर्याप्तता बनाए रखते हैं । सभी बैंक बासेल द्वारा दिए गए प्रावधानों के अनुरूप जोखिम आधारित पूंजी का मानदंड अपनाते हैं। बासेल समझौते के अनुसार पूंजी पर्याप्तता के मानदंड अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं के अनुरूप ही अपनाए जाने चाहिए। नवीन पूंजी पर्याप्तता ढांचे में न्यूनतम पूंजी अनुपात, पर्यवेक्षक पुनरीक्षण प्रक्रिया तथा बाजार अपेक्षित अनुशासन के तीन स्तंभों के सहारे बासेल-II ने बासेल-I की खामियों को दूर करते हुए पूंजी पर्याप्तता निर्धारण आंतरिक प्रक्रिया के तहत वास्तविक जोखिम प्रोफाइल को अधिक जोखिम संवेदी बनाया है। बासेल-II का समुन्नत पूँजी पर्याप्तता फ्रेमवर्क जोखिम प्रबंधन पर ठोस बल देने और उसकी जोखिम प्रबंधन क्षमताओं में सतत सुधार को बढ़ावा देने का मार्ग प्रशस्त करता रहा है। लेकिन 2008-09 के वैश्विक वित्तीय संकट ने बासेल-II की समीक्षा करने को बाध्य किया जिसके फलस्वरूप बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (BCBS) ने नया बासेल पैकेज-III तैयार किया।

बासेल-III क्या है?

बासेल-III जी-20 देशों द्वारा चलाए जा रहे ''वित्तीय क्षेत्र सुधार'' एजेण्डा का महज एक भाग है। यह वैश्विक वित्तीय कारणों तथा परिणामों की विनिमयकारी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य बैंकों को ऐसे प्रणालीगत जोखिमों से बचाना है जिनके चलते समूचा विश्व आर्थिक संकट की चपेट में आ गया था। 26 जुलाई 2010 को बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति ने बासेल-III प्रस्तावों के संबंध में हुई व्यापक सहमति को दर्शाते हुए बैंकिंग नियमों का तीसरा समूह तैयार किया, जिसे बासेल (स्विट्जरलैंड) में विश्व भर के केंद्रीय बैंकरों एवं नियामकों ने स्वीकार किया।

बासेल-III के अनुसार बैंकों को अपना कोर टियर-I पूंजी अनुपात, जो बैंकों की वित्तीय सुदृढ़ता का मुख्य मापक है, को 2015 तक 4.5 प्रतिशत बढ़ाना है तथा अत्यधिक जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत लीवरेज अनुपात रखना है। साथ ही उन्हें अपनी प्रतिचक्रीय पूंजी संरक्षण बफर 2019 तक 2.5 प्रतिशत तक बढ़ाना है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य यह है कि बैंकों को अधिक और बेहतर गुणवत्ता वाली पूंजी के साथ अधिक चलनिधि रखनी होगी जिससे उनका लीवरेज सीमित होगा और इसके कारण अच्छे समय में पूंजी का एक ऐसा बफर स्टॉक गठित करने की जरूरत पड़ेगी जिसका उपयोग दबाव के समय किया जा सकता है। बैंकों को अब अपनी जोखिम वाली आस्तियों का मात्र 2 प्रतिशत रखने की अपेक्षा उन्हें उच्च गुणवत्ता वाली 7 प्रतिशत पूंजी रिज़र्व में रखनी होगी। 12 सितंबर 2010 को बैंक फॉर इण्टरनेशनल सैटलमेंट ने इस पैकेज की घोषणा की।

बासेल-III का भारतीय बैंकों पर प्रभाव

यह मान लेने पर भी कि भारत में बैंक बासेल-III के अंतर्गत जरूरी वृद्धिशील पूंजी को बाजार से जुटा पाएंगे, प्राय: यह प्रश्न उठाया जाता है कि आर्थिक विकास और लाभप्रदता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। सामान्य तौर पर इक्विटी पूँजी जरूरतों में वृद्धि से पूंजी की भारित (Weighted) औसत लागत बढ़ेगी। बैंक ग्राहकों को ऊँची दरों पर ऋण देकर इस पूंजी लागत वृद्धि को ग्राहकों को आंशिक रूप से अंतरित करेंगे। इस प्रकार इक्विटेबल ऋण दरों में मामूली वृद्धि होने की संभावना है जिसके कारण पिछले वर्षों की तुलना में ऋण वृद्धि कुछ कम होने की आशंका है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ऋण वृद्धि कितनी कम होगी? दूसरी बात बासेल-III के पूर्ण रूप से कार्यान्वयन की एक सतत/सामान्य स्थिति आने के बाद क्या पूंजी लागत कम होगी? पूंजी तथा चलनिधि की अधिक जरूरत के समष्टिगत प्रभाव का अध्ययन करने के लिए नियुक्त समष्टिगत मूल्यांकन समिति, जो बैंक फॉर इण्टरनेशनल सेटलमेंट तथा फाइनेन्शियल स्टेबिलिटी बोर्ड के तत्वावधान में अध्ययन कर रही है, ने अनुमान लगाया है कि वैश्विक सामान्य पूंजी अनुपात को तय किए गए न्यूनतम पूंजी तथा पूंजी संरक्षण बफर के स्तर पर लाने से बासेल-III के कार्यान्वयन की अवधि के अंत में सकल देशी उत्पाद (GDP) में 0.22 प्रतिशत की कमी होगी, जबकि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार सकल देशी उत्पाद में होने वाली कमी 3.2 प्रतिशत के बराबर होगी।

पूंजी के नए नियमों से भारतीय बैंकों पर कोई विशेष प्रभाव पड़ता नहीं दिखाई दे रहा है, क्योंकि प्रस्तावित नई पूँजी जरूरतों तथा गुणवत्ता पूँजी को पूरा करने में हमारी बैंकिंग प्रणाली को कोई विशेष समय नहीं लगेगा। हाँ इतना अवश्य है कि टियर-I तथा टियर-II पूंजी में कुछ कमी करके इसे सामान्य इक्विटी में अंतरित किए जाने से कुछ नकारात्मक प्रभाव अवश्य उत्पन्न होंगे। इस संबंध में विस्तृत चर्चा करने से पहले बीसीबीएस (BCBS) के सुधार पैकेज के प्रस्तावों को सारांश रूप में देखना उचित होगा।

बासेल-III बीसीबीएस का सुधार पैकेज

	विवरण	विद्यमान मानदण्ड	संशोधित मानदण्ड	कब तक प्राप्त करना है	भारतीय रिज़र्व बैंक के दिशा-निर्देश
1)	सामान्य इक्विटी जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात (Common equity CRAR)	2.00%	4.50%	2013-3.5% 2014-4.5%	कोई आवश्यकता नहीं
2)	टियर-I जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात (बैंकर का निवल स्वरूप)	4.00%	6.00%	2013-4.5% 2015-6.00%	6.00%
3)	पूँजी संरक्षण बफर	0.00%	2.5%	2016-0.625% 2019-2.5%	कोई आवश्यकता नहीं
4)	कुल जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात (बफर का निवल स्वरूप)	8.00%	8.00%	-	9.00%
5)	कुल जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात (बफर सहित)	8.00%	10.50%	2016-8.625% 2019-10.50%	11.5

पूंजी पर्याप्तता संबंधी ढांचा

बीसीबीएस प्रस्तावों के अनुसार पूंजी पर्याप्तता ढाँचे में टियर-I पूंजी अनुपात न्यूनतम 6 प्रतिशत निर्धारित किया गया है, जबकि सामान्य इक्विटी भाग 4.5 प्रतिशत है। इससे यह संकेत मिलता है कि टियर-I पूंजी लिखतों को अभी सीमित मात्रा में टियर-I पूंजी में सम्मिलित किया जाएगा। भारतीय बैंकों का औसत टियर-I पूँजी अनुपात 10 प्रतिशत के आसपास है, कुछ कारणों से इसका 85 प्रतिशत भाग सामान्य इक्विटी है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने बासेल-III के पूँजी तथा चलनिधि नियमों पर 30 दिसंबर 2011 तथा 21 फरवरी 2012 को दिशा-निर्देश जारी किए, जिसके परिप्रेक्ष्य में प्रतीत होता है कि कुछ कारणों से विनियमनकारी समायोजन उपलब्ध इक्विटी पूंजी को मामूली रूप से घटाएगा। इसके पांच कारण हैं :

(i) भारतीय बैंकों के लिए साख (Goodwill), आस्थगित कर आस्तियाँ (DTAs) इत्यादि जैसी मदें पहले से ही टियर-I पूंजी में से घटा दी गई हैं।

(ii) कुछ ऐसी मदें जिन्हें टियर-I पूंजी में घटाया जाता है, जैसे बंधक सर्विसिंग अधिकार-(Mortgage Servicing Rights), ट्रेजरी स्टॉक देनदारियों के सही मूल्यांकन से मिलने वाले लाभ इत्यादि हमारे यहाँ अस्तित्व में है ही नहीं।

(iii) बैंकिंग, वित्तीय तथा बीमा इकाइयों में पूंजी एवं अन्य निवेशों के परस्पर क्रॉस सेलिंग की मात्रा नगण्य दिखाई दे रही है क्योंकि विद्यमान विनियामक सीमाओं के कारण ऐसे विनियोग प्रतिबंधित हैं। यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि इस समय 50 प्रतिशत से अधिक बैंकों की इक्विटी 8 प्रतिशत से अधिक है तथा वे किसी भी चरणबद्ध तरीके को अपनाए बिना आज बासेल-III का कार्यान्वयन कर सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय बैंकों को नए पूंजी नियमों के अनुपालन की दृष्टि से सामंजस्य बनाए रखने में कोई समस्या नहीं होगी। भारतीय बैंकिंग प्रणाली का जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में सकल पूंजी अनुपात 13.0 प्रतिशत है, इसलिए हमारे बैंक नए पूंजी अनुपालन की दृष्टि से अच्छी स्थिति में हैं। यह तुलनात्मक स्थिति समग्र स्तर पर है, अत: कुछ एक बैंक बासेल मानदंडों को पूरा नहीं कर पाएंगे तथा उन्हें अपनी पूंजी में वृद्धि करनी होगी। लेकिन बासेल-III के कार्यान्वयन के लिए पर्याप्त समय दिए जाने को देखते हुए आशा है कि उच्चतर अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए ये बैंक अपने आप को तैयार कर लेंगे।

(iv) भारत में सकल देशी उत्पाद से बैंक कर्ज का अनुपात 55 प्रतिशत है जो अन्य देशों की तुलना में कम है। लेकिन विगत प्रवृत्ति दर्शाती है कि इसके भविष्य में बढ़ने की संभावना है क्योंकि अर्थव्यवस्था में साख भेदन सतत् रूप से बढ़ रहा है। अगले 10 वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के 8-9 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करने की आशा है। इस परिप्रेक्ष्य में बैंक पूंजी के काफी हद तक बढ़ने की आशा है, फिर भी हमें यह ध्यान में रखना होगा कि पिछले 5 वर्षों में जब भारतीय अर्थव्यवस्था ने 7-8 प्रतिशत वृद्धि जारी रखी तो कई भारतीय बैंक 7-8 प्रतिशत के इक्विटी पूंजी अनुपात से परिचालित हो रहे थे। इन तथ्यों से साफ तौर पर जाहिर होता है कि भारतीय बैंकों में बासेल-III के अंतर्गत आवश्यक ऊंचे पूंजी इक्विटी स्तर में बाजार के साथ परिचालित होने की शर्त एवं क्षमता विद्यमान है। साथ ही, भारतीय पूंजी बाजार में बैंकों को आवश्यक इक्विटी पूंजी प्रदान करने की क्षमता भी है।

(v) भारतीय बैंकों की टियर-I पूंजी का अधिकांश वित्तपोषण सामान्य इक्विटी पूंजी द्वारा होता है। अत: बैंक 4.5 प्रतिशत के सामान्य इक्विटी जोखिम भारित पूंजी अनुपात से विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होंगे। भारत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों से अपनी भागीदारी को क्रमश: घटा रही है। अधिकांश बैंकों के मामलों में सरकार की अंशधारिता 51 प्रतिशत के आसपास है। इसका अर्थ यह हुआ कि निकट भविष्य में भारत सरकार बैंकों की अतिरिक्त इक्विटी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बराबर का योगदान देगी। इस प्रकार पूंजी बाजार से इक्विटी की मांग कम होगी और इस सीमा तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अपना पूंजी समर्थन बढ़ाने के लिए सरकार पर निर्भर रहेंगे।

बैंकों के वित्तीय लीवरेज को रोकना

बासेल-III में लीवरेज का विवेकपूर्ण तत्व लीवरेज के उस व्यापक प्रणालीगत जोखिम ढाँचे का सामना करने में संरक्षण प्रदान करता है, जिसका परिणाम दबाव के समय प्रक्रिया को अस्थिर करने के रूप में सामने आता है। यह कदम एक विश्वसनीय पूरक के रूप में कार्य करने के लिए गैर-जोखिम आधारित मापन तथा जोखिम आधारित जरूरतों को पूरा करता है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में लीवरेज सामान्य स्तर का है और कई भारतीय बैंकों की टियर-I पूंजी 8 प्रतिशत से अधिक होने के कारण भारतीय बैंकों को लीवरेज की आवश्यकता को पूरा करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दूसरी संतोषजनक बात यह है कि भारतीय बैंकों का (डेरिवेटिव) पोर्टफोलियो भी बहुत बड़ा नहीं है। इसलिए भारतीय बैंकों को लीवरेज अनुपात के बारे में चिंतित नहीं होना चाहिए।

वित्तीय क्षेत्र विनियमन की प्रतिचक्रीयता को कम करना

बासेल-III पैकेज में शामिल प्रतिचक्रीय पूंजी बफर का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बैंकिंग क्षेत्र की पूंजी आवश्यकताएं उस समष्टिगत वित्तीय वातावरण की जरूरतों को पूरा कर सकें जिसमें वे परिचालन कर रहे है। यह बफर पूंजी संरक्षण बफर के विस्तार के माध्यम से लागू होगा तथा जोखिम भारित आस्तियों के शून्य से 2.5 प्रतिशत के दायरे में रहेगा। बैंक इस बफर की पूर्ति टियर-I पूंजी की सामान्य इक्विटी अथवा पूर्ण रूप से हानिशोधक (Loss absorbing) पूंजी से करेंगे। यद्यपि 2.5 प्रतिशत तक की सीमा तक संरक्षण बफर को शामिल करने और 7 प्रतिशत तक पूंजी के इक्विटी भाग में वृद्धि करना एक मुश्किल कार्य होगा, क्योंकि इस तरह का पूंजी भार जुटाने के लिए बैंकों पर अतिरिक्त लागत का भार पड़ेगा जिसका असर निवेश और समग्र वृद्धि पर पड़ेगा । ऐसी स्थिति में पहले से विद्यमान इक्विटी पूंजी के सम्मिश्रण तथा पब्लिक ऑफर के माध्यम से अतिरिक्त पूंजी जुटाने की जरूरत होगी। यह मान लेने पर कि बैंकों की कुल आस्तियों की स्थिति यथावत रहती है, लीवरेज अनुपात (आस्तियां/इक्विटी) कम हो जाएगा। सामान्य इक्विटी में वृद्धि करने का अर्थ होगा कि लाभों को अधिकाधिक बनाए रखना तथा लाभांशों में गिरावट। इसके अतिरिक्त प्रतिचक्रीय बफर के निर्धारण हेतु 'सकल देशी उत्पाद की तुलना में कर्ज का अनुपात' की अवधारणा का जो उपयोग किया गया है, वह भी हमारे लिए एक चिंता का विषय है, क्योंकि ''कर्ज की तुलना में देशी उत्पाद'' संकल्पना का उपयोग करने में कई मुश्किलें हैं, जहाँ विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ''कर्ज-जीडीपी'' अनुपात स्थिर है, वहीं भारतीय अर्थव्यवस्था में उच्चतर वृद्धि दर के अनुपात में कर्ज मध्यस्थता तथा वित्तीय समावेशन के चलते इसमें वृद्धि होने की संभावना है।

प्रतिचक्रीय पूँजी बफर की उपयोगिता तेजी के समय अत्यधिक कर्ज वृद्धि के दौरान ही होती है ताकि बैंकों के लिए बेशी (Surplus) पूंजी इकट्ठी की जा सके जिससे वे अत्यधिक जोखिम से निपट सकें और ज्यादा से ज्यादा प्रतिफल प्राप्त कर सकें। चूंकि पूंजी संरक्षण बफर दबाव के समय एक मार्जिन के रूप में कार्य करता है, अत: बैंकों को स्तंभ-II के जोखिमों एवं तनाव जांच हेतु न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक पूंजी आबंटित करते समय तुलनात्मक रूप से कम पूंजी आबंटित करनी होगी ताकि उसका परिणाम यथावत रहे।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब हमारी बैंकिंग प्रणाली में सकल देशी उत्पाद की तुलना में कर्ज का अनुपात प्रणालीगत जोखिम के बढ़ने के मापन के रूप में एक अच्छा संकेतक नहीं रहा और साथ में रियल एस्टेट, आवास, सूक्ष्म वित्त तथा उपभोक्ता संबंधी कर्ज जैसे क्षेत्र भारत के लिए अपेक्षाकृत नए हैं; जहाँ बैंकों ने हाल ही में वित्त पोषण करना शुरू किया है, तो क्या ऐसे क्षेत्रों में बढ़ते जोखिम का ''सकल देशी उत्पाद'' के प्रति ''सकल कर्ज अनुपात'' से सटीक रूप से मापन किया जा सकता है? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर ''नहीं'' ही होगा। ऐसी स्थिति में हमने बाध्य होकर प्रतिचक्रीय नीतियों के प्रति विशेष दृष्टिकोण अपनाया है और इसे भविष्य में भी जारी रखने की जरूरत होगी। यही नहीं हमें प्रतिचक्रीय उपायों को कुशल रूप से लागू करने हेतु सकल तथा क्षेत्रीय स्तरों पर व्यापार चक्रों का अनुमान लगाने एवं तत्काल उनकी पहचान करने की अपनी क्षमता में सुधार करना होगा। इसके लिए बेहतर गुणवत्ता वाले आर्थिक एवं वित्तीय आंकड़ों तथा उन्नत स्तर की विश्लेषणात्मक क्षमताओं की आवश्यकता होगी।

सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामलों में 51 प्रतिशत का न्यूनतम इक्विटी स्तर बनाए रखने के लिए पूँजी बफर के गठन हेतु सरकार को अंशदान करना होगा। लेकिन इसके कारण सरकार की राजकोषीय

स्थिति पर अनावश्यक दबाव पड़ने की संभावना नहीं है क्योंकि इसका गठन चक्रीय उत्थान के ऐसे समय में किया जाएगा जब बैंकों के लाभ तथा सरकार के राजस्व की स्थिति अच्छी हो। इसलिए सरकारी क्षेत्र के बैंकों को बासेल-III में परिकल्पित बफरों के निर्माण में कोई समस्या नहीं होगी।

चलनिधि जोखिम प्रबंध

बासेल-III में चलनिधि कवरेज अनुपात (LCR) तथा निवल स्थिर निधीयन अनुपात (NSFR) लागू करके चलनिधि मानकों के स्तर को बढ़ा दिया गया है। ऐसी स्थिति में भारतीय बैंकों पर पड़ने वाले प्रभाव के सात पहलू हैं :

(i) चलनिधि कवरेज अनुपात के अंतर्गत बैंकों से उच्च गुणवत्ता वाली चलनिधिगत आस्तियाँ बनाए रखने की अपेक्षा की जाती है ताकि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे 30 दिन की अवधि के लिए चलनिधि उपलब्ध कराने की स्थिति में हों।

(ii) लेकिन उच्च गुणवत्ता वाली चलनिधि आस्तियों को रखने का अर्थ है प्रतिफल (आय) को त्यागना ।

(iii) भारत में बैंकों द्वारा उच्च गुणवत्ता वाली आस्तियों को रखना एक सांविधिक अपेक्षा है। वर्तमान में इस तरह की रिज़र्व आस्तियों (सांविधिक चलनिधि अनुपात) (SLR) को निवल मांग तथा मीयादी देयताओं के न्यूनतम 24 प्रतिशत के स्तर पर रखा जाता है। चूँकि ये चलनिधियां न्यूनतम सांविधिक अपेक्षाओं का भाग हैं, अत: भारतीय रिज़र्व बैंक को इस दुविधा का सामना करना पड़ता है कि इस रिज़र्व में से कितने अंश को चलनिधि कवरेज अनुपात हेतु हिसाब में लिया जाए। यदि इस रिज़र्व को चलनिधि के लिए हिसाब में नहीं लिया जाता है और बैंकों को अपना संपूर्ण चलनिधि कवरेज अनुपात अतिरिक्त चलनिधि से ही पूरा करना है तो उनकी कुल आस्तियों में से चल आस्तियों का अनुपात काफी मात्रा में बढ़ जाएगा जिसका परिणाम यह होगा कि आय में काफी मात्रा में कमी होगी। तथापि सांविधिक चलनिधि अनुपात धारिताओं के कम से कम एक हिस्से को तनाव की स्थितियों में चलनिधि की गणना हेतु हिसाब में लिया जाना तर्कसंगत होगा क्योंकि ये सरकारी बॉण्ड हैं और रिज़र्व बैंक इनकी जमानत पर चलनिधि उपलब्ध कराता है। यद्यपि भारतीय रिज़र्व बैंक इस बात का परीक्षण कर रहा है कि बासेल-III के अंतर्गत सांविधिक चलनिधि अनुपात को चलनिधि अनुपात जैसा माना जाए, लेकिन इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि सांविधिक चलनिधि अनुपात से ज्यादा चल आस्तियों के रखने से कोष अवरुद्ध हो जाएंगे तथा कारोबार में कमी आएगी।

(iv) बैंकों द्वारा अपने पास चलनिधि रखने से अर्थव्यवस्था का विकास भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है।

(v) निवल स्थिर निधीयन अनुपात (NSFR) बैंकों के पास दीर्घकाल (एक वर्ष) में उपलब्ध वित्त प्रदायक स्रोतों को बढ़ाएगा।

(vi) एक व्यावहारिक समस्या जो बैंकों के सामने आने वाली है, वह है सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (MSMEs), खुदरा तथा उच्च गुणवत्ता वाले ग्राहकों के बीच विभाजन करने की। इस समस्या को द्रुतगति सूचना प्रणाली के दौरान भी महसूस किया गया। अत: भारतीय बैंकों के सामने मुख्य चुनौती है - संबंधित आंकड़ों का संकलन, विशुद्ध रूप से लागू करना तथा इन्हें संपूर्ण ब्योरे के साथ प्रयुक्त करने के लिए क्षमता का विकास करना और सटीकता से चलनिधि दबावों के परिदृश्य का पता लगाना एवं पूर्वानुमान करना। बासेल-III का एक सकारात्मक पहलू यह है कि हमारे अधिकांश बैंक खुदरा मॉडल का अनुसरण करते हैं और उनके पास पर्याप्त मात्रा में चल आस्तियां हैं, जो नए मानदंडों की अपेक्षाओं को पूरा करने में उनकी सहायता करेंगी। एक विशेष बात यह है कि हमारे वित्तीय बाजारों को उन्नत देशों के बाजारों के स्तर का तनाव झेलने का अनुभव नहीं है जिसका वे कठिन समय में प्रयोग कर सकें। अत: तनावकारी परिदृश्य का सही रूप में पूर्वानुमान लगाने की प्रक्रिया काफी जटिल हो जाती है।

(vii) भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है, अत: हमारे यहाँ विकसित अर्थव्यवस्थाओं जैसी समान चलनिधि जरूरतों को लागू करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है।

लाभप्रदता

विभिन्न अध्ययनों में यह सुझाया गया है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बासेल-III अपेक्षाओं का लाभप्रदता पर काफी प्रभाव पड़ेगा। मैकेंसी एंड कंपनी द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह बताया गया है कि अन्य सभी बातों के समान रहने पर बासेल-III का कार्यान्वयन एक औसत बैंक की इक्विटी पर मिलने वाले प्रतिफल को यूरोप में 4 प्रतिशत अंक तक तथा संयुक्त राज्य (U.S.) में करीब 3 प्रतिशत तक घटाएगा। भारतीय स्थिति में ''इक्विटी पर प्रतिफल'' को 3-4 प्रतिशत अंक से कुछ कम स्तर पर प्रभावित करेगा। लाभप्रदता के संदर्भ में खुदरा, कॉरपोरेट तथा निवेश बैंकिंग विभिन्न प्रकार से प्रभावित होंगे, यद्यपि कम पूंजी अनुपात वाली संस्थाएं अपने आपको काफी दबावग्रस्त महसूस करेंगी। कॉरपोरेट बैंक प्रारंभिक रूप से विशिष्ट ऋण देने तथा व्यापार प्रदान करने वाले क्षेत्रों में प्रभावित होंगे। बैंकों का मूलभूत कारोबार बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित होगा, विशेष कर व्यापार प्रक्रिया एवं प्रतिभूतीकरण कारोबार। बैंक पहले से ही तुलनपत्र पुनर्रचना तथा कारोबार मॉडल समायोजनों द्वारा इक्विटी पर प्रतिफल (RoE) को नए वातावरण में प्रबंधित करने में जुटे हुए हैं। पूर्वोक्त मैकेंसी एंड कंपनी का अध्ययन यह भी बताता है कि तुलन पत्र पुनर्रचना तथा कारोबार मॉडल समायोजन से बासेल-III के ''इक्विटी पर प्रतिफल'' पर पड़ने वाले प्रभाव को 40 प्रतिशत तक बचाया जा सकता है ।

बैंकों की उधार दरें

इस बात की संभावना है कि बासेल-III के कार्यान्वयन से ''इक्विटी पूंजी'' तथा ''गैर इक्विटी पूंजी'' दोनों की लागत में वृद्धि होगी। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सबसे उधार की लागत में बहुत अधिक वृद्धि होने की संभावना नजर नहीं आती । भारतीय बैंकों को अपने ध्यान में यह बात अवश्य रखनी चाहिए कि कई देशों के बैंकों की तुलना में उनका निवल ब्याज मार्जिन (NIM) अधिक है। इस तथ्य से यह संकेत मिलता है कि भारतीय बैंकों के लिए अपनी कुशलता में सुधार लाने तथा मध्यस्थीकरण लागत को घटाने के लिए काफी अवसर मौजूद हैं। जहाँ कई बड़े अंतरराष्ट्रीय बैंकों को अपनी इक्विटी पूंजी में वर्तमान स्तर से 100 प्रतिशत से भी अधिक पूंजी बढ़ाने की आवश्यकता है, वहीं भारतीय बैंकों को अपनी इक्विटी पूंजी को इस स्तर तक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।

बैंकों के क्षतिपूर्ति संबंधी प्रस्तावों का विनियमन

भारत में बैंकिंग क्षेत्र का 70 प्रतिशत हिस्सा सरकारी क्षेत्र के बैंकों के पास होने के कारण भारतीय रिज़र्व बैंक ने साफ तौर पर संकेत दिए हैं कि बैंकों के क्षतिपूर्ति ढांचा संबंधी प्रस्तावित सुधार निजी बैंकों पर ही लागू होंगे अर्थात ये प्रस्ताव गैर सरकारी उद्योग खंड के 30 प्रतिशत भाग के लिए ही प्रासंगिक हैं तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक इस घेरे में नहीं आते। भारतीय रिज़र्व बैंक शुरू से ही यह सुनिश्चित करता रहा है कि क्षतिपूर्ति का स्वरूप बैंकिंग उद्योग के मानदंड के अनुरूप एवं बैंकों के कारोबार के अनुरूप हो और परिवर्तित वेतन का हिस्सा सीमित हो। जहाँ तक विदेशी बैंकों का प्रश्न है, रिज़र्व बैंक आम तौर पर इन बैंकों के मुख्यालयों की सिफारिश को मानता रहा है। इन सब तथ्यों के बावजूद हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि क्षतिपूर्ति ढाँचों के संबंध में वैश्विक प्रयासों में आए उत्साह के अनुरूप भारत में भी इस दिशा में सुधार की आवश्यकता बनी हुई है। इस तर्क का भी पर्याप्त आधार है कि यदि सरकारी क्षेत्र के बैंकों को एक समान परिस्थितियों में निजी क्षेत्र के बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी है तो उन्हें इसके लिए प्रतिस्पर्धात्मक आधार पर क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए। सरकारी क्षेत्र के बैंकों की क्षतिपूर्ति प्रथा में सुधार नहीं होने से एक जोखिम यह भी है कि वहां से निजी क्षेत्र की ओर प्रतिभा के पलायन के कारण वे अपने पास उपलब्ध प्रतिभा को खो देंगे।

प्रतिभूतीकरण फ्रेमवर्क

बासेल-III के अंतर्गत प्रतिभूतीकरण तथा तुलनपत्र से इतर जोखिम फ्रेमवर्क को बहुत सख्त बना दिया गया है। स्तंभ-I के अन्तर्गत प्रतिभूतीकरण एक्सपोजर (निवेश) के लिए पूंजी आवश्यकता में वृद्धि कर दी गई है। ऐसी स्थिति में स्तंभ-II के अंतर्गत विभिन्न जोखिम पोर्टफोलियो के मूल्यांकन में इन संरचनाओं के प्रभाव को शामिल करना चाहिए। इन संरचनाओं के संबंध में स्तंभ-II में आने वाले प्रकटीकरण (Disclosure) को भी बढ़ा दिया गया है।

भारतीय बैंकों का, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का, प्रतिभूतीकरण तथा तुलनपत्र से इतर माध्यमों में अधिक एक्सपोज़र नहीं है, अत: इनके लिए पूँजी आबंटन के अर्थों में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

बाजार जोखिम (स्तंभ-I की आवश्यकताएँ)

बीसीबीएस ने जून 2006 के बासेल दस्तावेज में सुझाए गए बाजार जोखिम फ्रेमवर्क में जो थोड़े से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं, उनका भारतीय बैंकों पर चार प्रकार से प्रभाव पड़ता दिखाई दे रहा है :

(i) बाजार जोखिम के लिए पूँजी की आवश्यकता बढ़ जाएगी।

(ii) वृद्धिशील बाजार जोखिम प्रभार को अंकित करने के लिए एक अलग मॉडल का निर्माण करना होगा।

(iii) जोखिम पर मूल्य (VaR) के विशुद्ध सामान्य बाजार जोखिम को अलग करना एक कठिन काम होगा।

(iv) तनावपूर्ण मूल्यवर्धित जोखिम की गणना करने के लिए तनावपूर्ण परिदृश्य के ऐतिहासिक आंकड़ा समूह को तैयार करने की जरूरत है। इस आंकड़ा समूह की उपलब्धता एक दुरूह कार्य है।

अंतरराष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग मानक

वैश्वीकरण के बाद विश्व के साथ हुए हमारे एकीकरण के मद्देनज़र भारतीय कंपनियों ने अपने वित्तीय परिणामों का प्रकटीकरण वैश्विक मानकों के अनुसार करने की आवश्यकता को महसूस किया है जिसकी चरणबद्ध रूपरेखा भी कोरग्रुप द्वारा तैयार कर ली गई है। अब भारत के अनुसूचित बैंकों को 1 अप्रैल 2013 की स्थिति के अनुसार प्रारंभिक शेष राशि का निर्धारण करने हेतु एकीकृत भारतीय लेखापद्धति मानकों को अंगीकार करना होगा। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग मानक के साथ एकीकरण करके आगे बढ़ते समय बैंकों को मुख्यत: तीन चुनौतियों का सामना करना होगा।

(i) अंतरराष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग मानक के साथ एकीकरण लेखापद्धति आईएफआरएस9 (IFRS9), जो कि बैंकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण मानक है, में अभी भी सुधार किया जा रहा है। सुदृढ़ विनियमन तथा पारदर्शिता को बढ़ावा देने संबंधी जी-20 कार्यदल की सिफारिशों में निहित समाधानों को देखते हुए ऐसा स्वाभाविक भी है। अत: भारतीय बैंकों के सामने इस सतत प्रक्रिया के साथ-साथ चलने की चुनौती है।

(ii) बैंकों की सूचना प्रौद्योगिकी की प्रणालियों में भी बदलाव करना होगा, ताकि अंतरराष्ट्रीय जरूरतों एवं मानकों के अनुसार इन्हें तैयार किया जा सके।

(iii) बैंकों को नए अंतरराष्ट्रीय मानकों की ओर सुगमता से अग्रसर होने तथा ऋण हानि प्रावधान हेतु प्रत्याशित हानि का दृष्टिकोण अपनाने के लिए अपनी क्षमताओं का विकास करना होगा।

इन चुनौतियों से निपटने तथा कार्यान्वयन संबंधी मुद्दों के समाधान एवं परिचालनात्मक दिशा-निर्देश तैयार करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने एक कार्यदल का गठन किया है।

बासेल-III के लाभ एवं चुनौतियाँ

बासेल-III का प्रभावी कार्यान्वयन विनियामकों, ग्राहकों तथा अंशधारकों के समक्ष यह प्रदर्शित करेगा कि बैंकिंग प्रणाली 2008 के वित्तीय संकट से उभर रही है तथा भावी झटकों को झेलने के लिए स्फूर्ति एवं आघातसहनीयता विकसित कर रही है। बासेल-III का सुगम कार्यान्वयन कारोबार में बेहतर प्रबंधकीय दृष्टिकोण प्रदान करके इससे भावी लाभ उठाने की पृष्ठभूमि तैयार करता है। लेकिन बासेल-III का कार्यान्वयन करते समय हमें इसकी चुनौतियों को कम करके नहीं आंकना चाहिए। प्रत्येक बैंक के लिए एक सर्वाधिक लागत प्रभावी मॉडल का आकलन करना एक निर्णायक पहलू होगा। वर्तमान में भारतीय बैंकिंग प्रणाली के लिए एक आरामदायक पूंजी पर्याप्तता स्तर उन्हें कुछ चैन की सांस लेने का अवसर प्रदान करता है, लेकिन अर्थव्यवस्था विकसित होने के साथ बैंकों को अपने तुलन पत्र का विस्तार करने हेतु ऋण की मांग को बढ़ाने की जरूरत होगी और ऐसा करने के लिए उन्हें अपनी पूँजी में भी बढ़ोतरी करनी होगी, विशेषकर इक्विटी पूँजी में।

यह सच है कि बासेल-III के कार्यान्वयन में कुछ लागत निहित होगी, लेकिन मात्र लागत ही इस बात को निर्धारित करने का मानदंड नहीं होनी चाहिए कि बासेल-III वित्तीय प्रणाली में मूल्यवर्धन करेगा । सही मापन तो यह होना चाहिए कि बासेल-III वहनीय लागतों पर बैंकिंग संकटों की कम होती हुई संभाव्यता के साथ कहीं अधिक सुरक्षित वित्तीय प्रणाली दे पाएगा या नहीं? अब तक के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है बासेल-III

इस परीक्षा में खरा उतरता है। जहां तक लागत का प्रश्न है इसके प्रभाव को चरणबद्ध प्रणाली द्वारा न्यूनतम किया जा सकता है। कई बार यह प्रश्न उठता है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली वैश्विक वित्तीय संकट से न्यूनतम मात्रा में प्रभावित हुई है। ऐसी स्थिति में क्या बासेल-III का कार्यान्वयन जरूरी है? हमें यह याद रखना चाहिए कि वैश्विक एकीकरण के इस युग में किसी भी स्थानीय वित्तीय एवं आर्थिक प्रणाली का वैश्विक आर्थिक झटकों से पूर्णतया बचना मुश्किल है। विश्व के किसी भी भाग में हो रही घटनाओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव विभिन्न माध्यमों से दुनिया भर में फैल जाता है। इसके अतिरिक्त बासेल-III के कई प्रावधान बासेल-III के अंतर्गत जोखिम मापन की कई कमजोरियों, जो वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान उजागर हुईं, का समाधान करते हैं। इस प्रकार बासेल-III विकसित तथा विकासशील दोनों प्रकार के देशों की वित्तीय प्रणाली को मजबूत करेगा। बासेल-III का सतत एवं संगत कार्यान्वयन ही लाभदायक परिणाम दे सकता है। इसके लिए अखिल शोध मॉनीटरिंग तथा अनुभव को बांटने की आवश्यकता है।

भारतीय बैंक कुछ चुनौतियों के साथ बासेल-III के मानदंडों को पूरा करने के लिए अच्छी स्थिति में हैं। भले ही इसके सभी उपाय हमारे लिए बाध्यकारी न हों, लेकिन बासेल-III के कार्यान्वयन से संबंधित चुनौतियों का सही आकलन करना होगा, भारतीय बैंकों के सामने जोखिम प्रबंधन प्रणाली को उन्नत बनाने तथा जटिल निर्णय लेने की कला को अपनाना जरूरी है। इससे भी कड़ी चुनौती तेजी से बढ़ती हुई ऋण जरूरतों को पूरा करने की है, जिसका सामना अधिक कठोर विनियामक व्यवस्था के साथ सामंजस्य रखते हुए करना होगा। कुल मिलाकर बासेल-III का कार्यान्वयन बैंकों और विनियामकों दोनों के स्तर पर अधिक क्षमता की मांग करता है।

❍❍❍

अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की घटकवार पूंजी पर्याप्तता
(मार्च अंत की स्थिति)

(राशि ₹ बिलियन में)

मद	बासेल-I		बासेल-II	
	2011	2012	2011	2012
क. पूंजी निधियां (i + ii)	**6,745**	**7,810**	**6,703**	**7,780**
i) टियर-I पूंजी	4,765	5,685	4,745	5,672
ii) टियर-II पूंजी	1,980	2,124	1,958	2,109
ख. जोखिम भारित आस्तियां	**51,807**	**60,375**	**47,249**	**54,623**
ग. सीआरएआर (ख के % के रूप में क)	**13.0**	**12.9**	**14.2**	**14.2**
जिसमें से : टियर-I	9.2	9.4	10.0	10.4
टियर-II	3.8	3.5	4.1	3.9

स्रोत : बैंकों द्वारा प्रस्तुत ऑफ साइट विवरणियों पर आधारित।

भारत में बैंकिंग को किस प्रकार प्रभावित करेगा बासेल–III

सुशील कृष्ण गोरे
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, लखनऊ

दरअसल बासेल –III चार वर्ष पहले जो विश्वव्यापी आर्थिक संकट पैदा हुआ था इसके काले साए से दुनिया को बचाने की कोशिश की एक अगली कड़ी है। लीमैन ब्रदर्स के बिखराव के बाद दुनिया-भर के अर्थशास्त्रियों एवं नीति-निर्माताओं के समक्ष एक बड़ी चुनौती पेश हुई कि अर्थव्यवस्था का ढांचा कैसे संशोधित किया जाए ताकि इस प्रकार के संकटों की पुनरावृत्ति को टाला जा सके। इस व्यापक आर्थिक चिंतन का एक पहलू बैंकिंग क्षेत्र से भी जुड़ा है। इस संकट ने दुनिया के केंद्रीय बैंकों को भी नए सिरे से सोचने पर मजबूर किया। यह देखा गया कि बासेल –II की कमियों के कारण यह आर्थिक संकट और भी गहरा गया। बासेल – II में सबसे बड़ा दोष चक्रीयता का था। यानी बासेल – II इस पर मौन था कि बाजार अपने अच्छे दिनों में जब अतिरिक्त पूंजी के निवेश के लिए बैंकों के दरवाजे पर आता है तो क्या किया जाए। क्या इस अतिरिक्त पूंजी के निवेश के लिए बैंकों पर कोई अतिरिक्त पूंजीगत अपेक्षाएं लगाई जाएं? बासेल –II के पास इसका कोई जवाब नहीं था। संभवत: यही स्थिति बाजार के बुरे दिनों में भी थी। बासेल – II के अनुसार बैंकों को इस समय भी और पूंजी जुटाकर दिखाना था जो कि बाजार के गिरे हुए मनोबल के समय में एकदम असंभव था। आप गौर करें तो बैंकों की इसी मजबूरी ने उन्हें एक गहरे दलदल में धकेल दिया था। वे बदहवास होकर डिलीवरेजिंग की अंधाधुंध दौड़ में शामिल हो गए।

यह बासेल –II की एक कमी ही मानी जाएगी कि उसमें विनियामक पूंजी को बाजार के बदलते मनोभावों के अनुरूप न तो परिभाषित किया गया था और न ही इसके स्वरूप का निर्धारण। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बाजार जोखिम के मॉडलों में जोखिम के इन नए तत्वों की कोई शिनाख्त नहीं की गई थी जो आर्थिक मंदी से पूर्व के कुछ वर्षों में बाजार में नए लेकिन बेहद जटिल डेरिवेटिव उत्पादों के रूप में व्याप्त हो गए थे। बाजार जोखिम के तत्कालीन मॉडलों में व्यापार बही एक्सपोजरों पर कम पूंजी की अपेक्षा इस मान्यता के आधार पर रखी गई थी कि ऐसे एक्सपोजरों की बिक्री तुरत-फुरत हो जाती है और बहुत तेजी से व्यापार बही की पहले वाली स्थिति बहाल हो जाती है। इससे यह हुआ कि बैंकों में अपने बैंकिंग बही एक्सपोजर को जल्दी से आसान पैसा कमाने की लालच में व्यापार बही एक्सपोजर में रखने की एक होड़-सी लग गई।

दुनिया जानती है कि ऐसी न जाने कितनी घातक आस्तियों और इनके प्रतिभूतीकृत डेरिवेटिवों ने इस महासंकट के मुख्य खलनायक की भूमिका निभाई। आपको जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ये सारे-के-सारे खलनायक बैंकों की इसी व्यापार बही में छुपकर बैठे थे।

यह तो हुई बात कि बासेल – II के अंतर्गत जोखिम की मात्रा या इसकी गहराई भेदने की कोई प्रणाली नहीं थी और वह इस जोखिम को पचाकर उसके प्रभाव को कम करने के लिए जितनी एवजी पूंजी अपेक्षित थी इसके इंतजाम पर भी मौन था।

बासेल-II का अपने जोखिम भारित पूंजी दृष्टिकोण पर अतिशय भरोसा भी इसकी दुःखांत कथा का एक अहम पहलू है। बासेल-II की यह आत्म-संतुष्टि ठीक साबित नहीं हुई। बासेल-II में यह लगभग मान लिया गया था कि बैंकों की जोखिम भारित पूंजी बेइंतहा लीवरेज के प्रभाव को झेल सकती है। यह मान्यता एक मिथक बन गई थी। इस मंदी में यह मिथक भी टूट गया। इस प्रकार आप देखेंगे कि विश्व आर्थिक संकट की आँधी में बासेल-II से जुड़े कई मिथक टूटे। इसी प्रकार एक मिथक चलनिधि जोखिम का भी टूटा। डिलीवरेजिंग की भागमभाग में खजाना खाली होता गया और बाजार से जिस बंपर रिटर्न की आशा (लालच) थी वह पूरी नहीं हुई। बैंकों की हालत खराब हो गई। वे दिवालिया होने के कगार पर पहुंच गए और सरकारों से पुनर्वास पैकेज की बाट जोहने लगे।

इसी प्रकार एक मिथक 'टू-बिग-टु-फेल' भी टूट गया। बासेल-II का जोर संस्थाओं पर था। इस क्रम में इनके बीच का महत्त्वपूर्ण अंतःसंबंध उपेक्षित रहा। इसीलिए जब संकट का पलीता सुलगा तो उसकी चपेट में एक-एक कर सभी बैंक एवं वित्तीय संस्थाएं आ गईं। कहा जा सकता है कि बासेल-II में समग्र अर्थव्यवस्था का खयाल रखने वाले किसी प्रणालीगत जोखिम मॉडल का अभाव था।

सवाल उठता है कि क्या बासेल-II किसी हद तक वैश्विक आर्थिक मंदी के लिए जिम्मेदार है? इस संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव का उत्तर काफी महत्त्वपूर्ण है। उनका मानना है कि बासेल-II की यह आलोचना केवल आंशिक रूप से जायज है। उनका तर्क उचित है कि समय-चक्र को देखा जाए तो जब जून 2006 में बासेल-II का कार्यान्वयन प्रारंभ हुआ था तो इसके लगभग एक साल बाद अगस्त 2007 में इस संकट के लक्षण उभरने लगे थे। इसलिए यह संभव है कि बासेल-II के बाजार जोखिम ढांचे की नाकामी से इस संकट को पनपने में मदद मिली हो लेकिन यह कहना अतिशयोक्ति होगा कि बासेल-II के जोखिम आधारित पूंजी मॉडल के कारण इस संकट का जन्म हुआ।

आखिर बासेल-III की जरूरत क्यों?

सबसे पहले इस भ्रम का निवारण जरूरी है कि यह बासेल-II को दरकिनार करके बनी कोई नई नीति या रणनीति है। बल्कि यूं कहना ठीक होगा कि बासेल-III की आधारभूमि में बासेल-II ही है। आप जानते हैं कि बासेल-II का मूल ढांचा बैंकों की जोखिम तथा उसके लिए पूंजी अपेक्षा के बीच संबंध पर आधारित था।

यदि पूंजी की पुख्ता व्यवस्था को जोखिम से बचाव के लिए एक पैराडाइम के रूप में देखा जाए तो बासेल-II इसका प्रवर्तक था और बासेल-III कुछ परिवर्तनों के साथ उसी का विस्तार है। बासेल-III में शामिल चार प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

- पूंजी के स्तर एवं उसकी गुणवत्ता में वृद्धि
- चलनिधि मानकों की शुरुआत
- प्रावधानीकरण मानदंडों में संशोधन, तथा
- प्रकटीकरण का एक बेहतर एवं अधिक व्यापक मॉडल

बासेल-II और बासेल-III के बीच इस आधार पर एक तुलनात्मक सारणी-I का अवलोकन समीचीन होगा :

सारणी-I

	विवरण	जोखिम भारित आस्तियों के प्रतिशत के रूप में	
		बासेल-II	बासेल-III (1 जनवरी 2019 की स्थिति)
क=(ख+घ)	न्यूनतम कुल पूंजी	8.0	8.0
ख	न्यूनतम टियर-I पूंजी	4.0	6.0
ग	जिसमें : न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-I पूंजी	2.0	4.5
घ	अधिकतम टियर-II पूंजी (कुल पूंजी के भीतर)	4.0	2.0
ङ	पूंजी संरक्षण बफर	-	2.5
च=ग+ङ	न्यूनतम सामान्य इक्विटी	2.0	7.0
छ=क+ङ	न्यूनतम पूंजी+सीसीबी	8.0	10.5

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि बासेल-III में भी जोखिम भारित आस्तियों की प्रतिशतता के रूप में कुल न्यूनतम पूंजी बासेल-II की तरह 8 प्रतिशत ही रखी गई है। इतना जरूर है कि बासेल-III के अंतर्गत एक नई पहल पूंजी संरक्षण बफर (सीसीबी) के रूप में की गई है। इसकी मात्रा जोखिम भारित आस्तियों के 2.5 प्रतिशत के बराबर होगी। यह 2.5 प्रतिशत सीसीबी बासेल-III का एक नया पहलू है जिसकी गणना न्यूनतम पूंजी अपेक्षा यानि 8.0 प्रतिशत के ऊपर की जाएगी। इस प्रकार बासेल-III में कुल पूंजी अपेक्षा को बढ़ाकर 10.5 प्रतिशत कर दिया गया है।

विश्व आर्थिक मंदी से यह सबक मिला कि बैंकों के पास जोखिम की भरपाई करने के अवसर और उपाय बहुत सीमित थे। इसी के चलते वे लीवरेजिंग का सहारा लेने पर मजबूर हो गए थे

और उनके तुलनपत्र पर आस्ति की हानियों का जबरदस्त दबाव पड़ रहा था। बासेल-III में इसी कटु अनुभव से सबक लेकर सीसीबी का प्रावधान किया गया है ताकि संकटकालीन स्थितियों में होने वाली हानियों का सामना किया जा सके और 8.0 प्रतिशत की न्यूनतम पूंजी अपेक्षा को बनाए रखते हुए अपना व्यवसाय आगे बढ़ाया जा सके।

यह ध्यान देने की बात है कि 2.5 प्रतिशत के इस सीसीबी की गणना विनियामक न्यूनतम पूंजी के हिस्से के रूप में नहीं की जाएगी। इसके पीछे एक दूरगामी सोच यह भी काम कर रही थी कि भविष्य में यदि किसी वजह से ऐसा संकट पैदा हो भी तो बैंकों को करदाताओं के पैसे से 'बेल-आउट' देकर बचाना भी पड़े तो वह अंतिम एवं एकमात्र विकल्प हो।

बासेल-III में सीसीबी के अलावा एक और पूंजी बफर शुरू किया गया है। इसका नाम है प्रतिचक्रीय पूंजी बफर (Countercyclical capital buffer) जिसकी सीमा 0 से 2.5 प्रतिशत के बीच होगी। इसकी गणना का आधार भी जोखिम भारित आस्तियां हैं। इसे अत्यधिक ऋण वृद्धि के समय लागू करने का प्रावधान किया गया है। बासेल-III इतने पर ही चुप नहीं है। उसमें प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण बैंकों पर उच्चतर पूंजी अधिभार लगाने का भी प्रावधान है।

साथ ही, अत्यधिक लीवरेज के जोखिम को कम करने के लिए लीवरेज अनुपात के रूप में एक और सुरक्षात्मक व्यवस्था स्थापित की जाएगी। संभव है कि न्यूनतम टियर-I लीवरेज अनुपात 3 प्रतिशत निर्धारित किया जाए जो अंततः 1 जनवरी 2018 से पिलर-I की अपेक्षा बन जाएगा।

बाजार जोखिम की हानियों की भरपाई के लिए बासेल-III के अंतर्गत बाजार जोखिम लिखतों के लिए प्रतिपक्षी ऋण जोखिम ढांचे को सुदृढ़ किया गया है। ऋण चूक जोखिम के लिए पूंजी अपेक्षा का निर्धारण करने के लिए जोखिम की सूचना देने वाले मापदंडों के प्रयोग की शुरुआत की गई है। इसके अलावा किसी आर्थिक संकट के समय प्रतिपक्षी की ऋण गुणवत्ता में गिरावट से उभरे जोखिम से बैंकों को सुरक्षित रखने के लिए ओटीसी डेरिवेटिवों के लिए बासेल-III में ऋण मूल्यन समायोजन (क्रेडिट वैल्यूएशन एडजस्टमेंट) जोखिम पूंजी प्रभार नामक नई पूंजी अपेक्षा का प्रावधान किया गया है।

चलनिधि जोखिम को कम करने के लिए बासेल-III के अंतर्गत अल्पकालिक चलनिधि की कमी तथा बैंकों के तुलनपत्र में दीर्घकालिक संरचनात्मक चलनिधि विसंगतियों से निपटने के लिए क्रमशः चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) तथा निवल स्थायी निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) जैसे नए उपाय किए गए हैं।

उपचित हानि की बजाय संभावित हानि के प्रावधानीकरण पर विचार किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रकटीकरण संबंधी मानदंडों को और व्यापक बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

भारत के बैंकों पर प्रभाव

यह एक सुखद स्थिति है कि भारत के बैंक समग्र रूप से बासेल-III के अंतर्गत निर्धारित न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं को पूरा कर रहे हैं। इसके बावजूद यदि बैंक ऋण एवं जीडीपी के अनुपात के संदर्भ में बात की जाए तो यह अनुपात वृद्धि की रफ्तार के लिए पर्याप्त नहीं है। वर्तमान में यह अनुपात लगभग 55 प्रतिशत है। जीडीपी में बढ़ोतरी की उम्मीद इस बात पर टिकी है कि विनिर्माण के क्षेत्र में मजबूती आएगी। देश के आर्थिक विकास के तार सीधे-सीधे पूंजी से जुड़े हैं। वह भी तब जब देश का आर्थिक क्षेत्र संरचनात्मक सुधारों के दौर से गुजर रहा हो। उम्मीद यह भी की जा रही है कि भारत की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर अगले 10 वर्ष में 8-9 प्रतिशत तक होगी।

अतिरिक्त पूंजी जुटाने का सवाल

सवाल यह है कि भारतीय बैंकों को कितनी मात्रा में अतिरिक्त पूंजी जुटानी होगी। इस मुद्दे पर भारतीय रिज़र्व बैंक ने परंपरागत दृष्टि से अपने एक आकलन के अनुसार यह पाया है कि 31 मार्च 2018 तक दो ऐसी संभावनाएं हो सकती हैं जब बैंकों को अतिरिक्त पूंजी की अपेक्षा होगी। पहली, किन्हीं बैंकों की जोखिम भारित आस्तियों में प्रतिवर्ष 20 प्रतिशत की वृद्धि हो तथा दूसरी, बैंकों की आंतरिक उपचित राशि जोखिम भारित आस्तियों के 1 प्रतिशत के समतुल्य हो।

यदि भारत के बैंक इस अतिरिक्त पूंजी अपेक्षा को पूरा कर भी लें तो क्या जरूरी है कि इस पूंजी का औसत भारित मूल्य बढ़ नहीं जाएगा। यदि बढ़ गया तो क्या बैंक उसकी कीमत उधार दरें बढ़ाकर उधारकर्ताओं से वसूल नहीं करेंगे। इससे ऋण महंगे हो

जाएंगे। इस प्रकार आप देखेंगे कि आर्थिक विकास बढ़ाने का तर्क ही खुद उसका विरोधी तर्क भी बन जाता है।

रिज़र्व बैंक के आकलन के अनुसार भारत के बैंकों के लिए कुल ₹ 5 लाख ट्रिलियन अतिरिक्त पूंजी की अपेक्षा होगी जिसमें से ₹ 3.25 लाख ट्रिलियन गैर-इक्विटी तथा शेष ₹ 1.75 लाख ट्रिलियन इक्विटी पूंजी होगी ।

भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अपनी शेयरधारिता को लगातार कम किया है। इनमें से ज्यादातर बैंकों में सरकार की शेयरधारिता 51 प्रतिशत तक है। इसका तात्पर्य है कि सरकार भविष्य में बैंकों की अतिरिक्त इक्विटी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए लगभग इतनी ही हिस्सेदारी निभाएगी। इस अतिरिक्त इक्विटी अपेक्षा की पूर्ति के लिए बाजार पर निर्भरता को कम किया जाएगा अर्थात पूंजी बाजार से इक्विटी की मांग कम तो होगी लेकिन पूंजी सहायता के लिए सरकार पर इन बैंकों की निर्भरता बढ़ जाएगी।

भारत में बैंकों के लिए सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) के रूप में उच्च गुणवत्ता वाली चल आस्तियां बनाए रखना अनिवार्य है। चूंकि ये प्रारक्षित निधियां न्यूनतम सांविधिक अपेक्षा का एक हिस्सा हैं इसलिए भारतीय रिज़र्व बैंक के सामने एक धर्मसंकट पैदा हो गया है कि इस सांविधिक प्रारक्षित निधि के कितने हिस्से को चलनिधि कवरेज (एलसीआर) अनुपात माना जाए। यदि एलसीआर के लिए बैंकों को अतिरिक्त चलनिधि आस्तियां जुटानी पड़ीं तो कुल आस्तियों में चलनिधि आस्तियों की मात्रा बढ़ेगी और इस वजह से उनकी आय में काफी कमी आएगी।

सामान्य तौर पर देखा जाए तो बासेल-III के अंतर्गत उच्चतर पूंजी अपेक्षा तथा चलनिधि की ठोस अपेक्षाओं के चलते भारत के बैंकों पर पूंजीगत अपेक्षाओं का दायित्व बढ़ जाएगा। फिर भी, इसका प्रभाव बासेल-III परिदृश्य में आए एक्सपोज़र की मात्रा, बैंकों के मौजूदा पूंजी ढांचे यानी गैर-सामान्य इक्विटी पूंजी तत्त्वों पर निर्भरता की सीमा, विनियामक समायोजन, ऋण वृद्धि तथा ऋण प्रवाह एवं जीडीपी के अनुपात पर निर्भर करेगा।

बासेल-III के अंतर्गत व्यापार बही एक्सपोज़र विशेष रूप से बैंकिंग एवं व्यापार बही दोनों में ऋण जोखिम एवं पुनःप्रतिभूतीकरण वाले व्यापार बही एक्सपोज़र पर पूंजी प्रभार की मात्रा को बढ़ा दिया गया है। ओटीसी डेरिवेटिवों पर अतिरिक्त ऋण मूल्यन समायोजन (सीवीए) का तात्पर्य है - अधिक पूंजी अपेक्षा। चूंकि भारतीय बैंकों के व्यापार बही तथा ओटीसी संविभाग दोनों ही बहुत छोटे हैं और पुनःप्रतिभूतीकृत लिखतों में उनका कोई एक्सपोज़र भी नहीं है इसलिए पूंजी विनियमन में इस प्रकार के परिवर्तनों का उनके तुलनपत्रों पर प्रभाव नगण्य होगा।

भारतीय बैंकों की औसत टियर-I पूंजी 10 प्रतिशत है जिसका 85 प्रतिशत से अधिक हिस्सा सामान्य इक्विटी है। यह ध्यान देने की बात है कि वर्तमान में अधिकतर भारतीय बैंकों की सामान्य इक्विटी 8 प्रतिशत से अधिक है और बासेल-III लागू करने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी । अगले पृष्ठ पर दी गई सारणी-II से यह बात स्पष्ट हो जाएगी ।

इस सारणी से यह स्पष्ट है कि बैंकों को अतिरिक्त पूंजी अपेक्षा को पूरा करने के लिए ₹ 1.75 ट्रिलियन जुटाने होंगे।

क्या बाजार से बैंकों को इतनी मात्रा में इक्विटी पूंजी प्राप्त हो सकती है? बाजार से प्राप्त होने वाली पूंजी की मात्रा इस बात पर निर्भर करेगी कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों के पुनःपूंजीकरण का कितना हिस्सा सरकार पूरा करेगी। सारणी के अनुसार बाजार को अतिरिक्त पूंजी के रूप में 700 बिलियन रुपये से 1 ट्रिलियन रुपये का इंतजाम करना होगा। पिछले पांच वर्ष का आंकड़ा देखें तो बैंकों ने प्राथमिक बाजारों से 520 बिलियन रुपये के लगभग इक्विटी पूंजी जुटाई है। इस अनुभव से तो यही उम्मीद की जा सकती है कि अगले पांच वर्ष में जब बासेल-III को संपूर्णतः लागू कर दिया जाएगा तब तक 700 बिलियन रुपये से 1 ट्रिलियन रुपये का इंतजाम करना बैंकों के लिए कोई असंभव कार्य नहीं होगा।

एक तथ्य यह भी है कि भारत की 70 प्रतिशत बैंकिंग प्रणाली अभी सरकार के हाथ में है, यानि 70 प्रतिशत स्वामित्व सरकार का है। यदि सरकार अपनी शेयरधारिता को मौजूदा स्तर पर कायम रखती है तो उस पर बैंकों के पुनःपूंजीकरण का बोझ लगभग 900 बिलियन रुपये होगा। लेकिन यदि सरकार प्रत्येक बैंक में अपनी शेयरधारिता को घटाकर न्यूनतम 51 प्रतिशत के स्तर पर रखती है तो उसे 700 बिलियन रुपये से कम का भार वहन करना पड़ेगा।

सारणी – II

बासेल – III के अंतर्गत भारतीय बैंकों से अतिरिक्त सामान्य इक्विटी की अपेक्षाएं

(रु. बिलियन)

		सरकारी क्षेत्र के बैंक	निजी क्षेत्र के बैंक	कुल
क	बासेल – III के अंतर्गत अतिरिक्त सामान्य इक्विटी अपेक्षा	1400-1500	200-250	1600-1750
ख	बासेल – II के अंतर्गत अतिरिक्त सामान्य इक्विटी अपेक्षा	650-700	20-25	670-725
ग	बासेल – III के अंतर्गत अतिरिक्त निवल इक्विटी पूंजी अपेक्षा (क – ख)	750-800	180-225	930-1025
घ	बासेल – III के अंतर्गत सरकारी क्षेत्र के बैंकों (क) के लिए निवल इक्विटी पूंजी अपेक्षा — (i) सरकार का शेयर (यदि अंशधारिता का मौजूदा स्तर कायम रहे)	880-910	—	—
	(ii) सरकार का शेयर (यदि शेयरधारिता को घटाकर 51 प्रतिशत तक कर दिया जाए)	660-690	—	—
	(iii) बाजार का शेयर (यदि सरकार का अंशधारिता पैटर्न अपने मौजूदा स्तर पर कायम रहे)	520-590	—	—

बैंकों की लाभप्रदता पर प्रभाव

बासेल – III के अंतर्गत उच्च स्तर एवं बेहतर गुणवत्ता वाली पूंजी की अपेक्षा की गई है। जाहिर है कि इक्विटी पूंजी की कीमत बढ़ जाएगी। इसी प्रकार गैर-इक्विटी विनियामक पूंजी पर हानि अवशोषित करने की जो अपेक्षा लगाई गई है उससे इस पूंजी की भी कीमत बढ़ जाएगी।

शायद बासेल – III से थोड़े समय के लिए बैंकों की इक्विटी पर होने वाली आय में कमी हो लेकिन यह नकारात्मक प्रभाव दीर्घकालिक नहीं होगा क्योंकि बासेल – III के बाद जिस स्थायी एवं सुदृढ बैंकिंग प्रणाली की आशा की जा रही है उसके फायदे इस घाटे को बेअसर कर देंगे।

एक अंदेशा यह लगाया जा रहा है कि कहीं बासेल – III के चलनिधि मानकों पर खरा उतरने के लिए बैंक सुरक्षित रूप से उधार देने के मामले में केवल सरकार का ही मुंह ताकते रहें और निजी क्षेत्र में औद्योगिक गतिविधियों के लिए ऋण प्रदान करने के प्रति इनमें अरुचि पैदा हो जाए। इसका समाधान अर्थव्यवस्था में बचत दर में बढ़ोतरी एवं राजकोषीय घाटा कम होने के साथ स्वत: हो जाएगा।

यह भी कहा जा रहा है कि बैंक अतिरिक्त पूंजी अपेक्षा बनाए रखने के लिए जरूरी अतिरिक्त खर्च अपने जमाकर्ताओं एवं उधारकर्ताओं से वसूल करेंगे। इस शंका का निवारण करते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय बैंकों का निवल ब्याज मार्जिन (एनआईएम) लगभग 3 प्रतिशत है जो काफी उत्साहवर्धक है। इससे बैंकों की न तो कार्यक्षमता प्रभावित होगी और न लाभप्रदता।

इसी प्रकार बासेल – III की आर्थिक विकास विरोधी छवि का भ्रम निवारण आवश्यक है। भारत में इससे आर्थिक विकास को कोई भी हानि नहीं पहुंचने वाली है। देश अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में ऋण की मांग जीडीपी से

भी तेज गति पकड़ेगी। इसके कई कारण हैं। सेवा क्षेत्र से विनिर्माण क्षेत्र में तेजी आएगी जिससे ऋण की मांग बढ़ेगी। आधारभूत ढांचे में निवेश को दुगुना करने की जरूरत महसूस की जा रही है। इसके लिए ऋण जरूरी होगा । इसके अलावा सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा चलाए जा रहे वित्तीय समावेशन अभियान के फलस्वरूप निम्न आय वर्ग के लाखों परिवार औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जुड़ जाएंगे। कालांतर में इन्हें भी ऋण की जरूरत होगी ।

इस प्रसंग में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव एक रोचक प्रश्न पूछते हैं कि हमें यह तय करना होगा कि वित्तीय स्थिरता के बदले में हम थोड़े समय के लिए संवृद्धि की कितनी मात्रा को छोड़ सकते हैं। शायद थोड़े समय के लिए बासेल – III के कारण बैंकिंग व्यवस्था पर दबाव बढ़ जाए लेकिन दीर्घकालिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। बीआईएस के अर्थशास्त्रियों का भी मत है कि हो सकता है थोड़े समय के लिए बासेल – III की महंगी कीमत चुकानी पड़े लेकिन इसका दूरगामी प्रभाव आर्थिक विकास के पक्ष में ही जाएगा।

इस प्रकार भारत में बैंकों पर बासेल – III पूंजी विनियमन को लेकर किसी भी प्रकार की दुश्चिंता का माहौल नहीं है। वैश्वीकरण के इस दौर में सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएं परस्पर जुड़ी हुई हैं। इसलिए वैश्विक मानदंडों के साथ चलने के विवेक को महत्त्व दिया गया है।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने मई 2012 में ही इस बारे में दिशानिर्देश जारी कर दिए हैं जिनका संपूर्ण रूप से अनुपालन 1 जनवरी 2013 से 31 मार्च 2018 के बीच किया जाएगा।

❍❍❍

वित्तीय समावेशन के चयनित संकेतक–विभिन्न देशों की तुलना

देश	शाखाओं की संख्या (प्रति 0.1 मिलियन वयस्क)	एटीएम की संख्या (प्रति 0.1 मिलियन वयस्क)	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में बैंक उधार	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में बैंक जमाराशियां
1	2	3	4	5
भारत	**10.64**	**8.90**	**51.75**	**68.43**
ऑस्ट्रेलिया	29.61	166.92	128.75	107.10
ब्राज़ील	46.15	119.63	40.28	53.26
फ्रान्स	41.58	109.80	42.85	34.77
मेक्सिको	14.86	45.77	18.81	22.65
यूनाइटेड स्टेट्स	35.43	-	46.83	57.78
कोरिया	18.80	-	90.65	80.82
फिलिपीन्स	8.07	17.70	21.39	41.93

टिप्पणी : – आंकड़े उपलब्ध नहीं है। सभी आंकड़े 2011 से संबंधित हैं।
स्रोत : वित्तीय ऐक्सेस सर्वेक्षण, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष।

बासेल-III : पारगमन एवं निहितार्थ

एन. चंद्रशेखरन
सहायक महाप्रबंधक
इंडियन ओवरसीज़ बैंक, चेन्नै

दिसंबर 2010 में बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) द्वारा अधिक आघात-सह बैंक व बैंकिंग प्रणाली के लिए वैश्विक विनियामक संरचना घोषित की गई। इसके पूर्व बीसीबीएस के शासी निकाय ने 12 सितंबर 2010 को संरचना प्रस्ताव घोषित किए थे। बासेल-III के परिप्रेक्ष्य में हमारी शुरुआत कहां से हुई, यह देखना हमारे लिए बेहतर होगा।

प्रथम बासेल समझौता 1988 में अपनाया गया और इसे अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग प्रणाली को स्थिरता प्रदान करने का श्रेय है। अमेरिका व अन्य देशों के बैंकिंग विनियामकों ने 2004 में बासेल-II विकसित किया क्योंकि जोखिम एक्सपोज़रों का मापन करने में बासेल-I सक्षम नहीं था। यूरोपीय संघ ने 2006 में बासेल-II को लागू किया। यूएस बैंकिंग विनियामकों ने 7 दिसंबर 2007 को बासेल-II के कार्यान्वयन से संबंधित अंतिम नियम जारी किए तथा 1 अप्रैल 2008 को बासेल-II के कार्यान्वयन के संबंध में विनियमन प्रकाशित किए। उस समय, यूएस 70 वर्षों के इतिहास में सबसे अधिक आर्थिक मंदी से गुजर रहा था। वित्तीय प्रणाली की स्थिरता के लिए संघीय विनियामक एजेंसियों ने अपना ध्यान केंद्रित किया और अमेरिका में बासेल-II पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं हो सका। बासेल-III का उद्देश्य विनियामक पूंजी व चलनिधि असफलता से निपटना है, जिसने 2007-09 में वैश्विक वित्तीय संकट पैदा किया।

बासेल पूंजी समझौता विभिन्न देशों के केंद्रीय बैंकों और बैंक पर्यवेक्षी प्राधिकरणों के बीच किया जाने वाला ऐसा करार है जिसके अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि हानि या दिवालियेपन की दुर्दशा से निपटने के लिए बैंकों को कितनी पूंजी की मात्रा रखनी होगी। उच्चतर पूंजी अपेक्षाओं की वजह से दिए जाने वाले ऋणों और उनकी लाभप्रदता पर बुरा असर पड़ता है। उक्त समझौता कोई संधि नहीं है। सदस्य राष्ट्र अपनी वित्तीय विनियामक संरचना के अनुरूप इस समझौते को परिवर्तित कर सकते हैं। बासेल-III से बैंकों की विनियामक पूंजी संबंधी अपेक्षाओं में आवश्यक परिवर्तन किया जाएगा। इससे न्यूनतम विनियामक पूंजी के रूप में धारित सामान्य मूर्त इक्विटी की मात्रा में बढ़ोतरी होगी और सामान्य इक्विटी से हानि से निपटने की क्षमता बढ़ती है। मूर्त सामान्य इक्विटी के अंतर्गत बैंक शेयर और प्रतिधारित उपार्जन शामिल हैं। यह वृद्धि विनियामक पूंजी अपेक्षाओं में बहुत बड़ा परिवर्तन है क्योंकि कई आस्तियों, जिनका उपयोग विनियामक पूंजी के रूप में किया जाता है, को सामान्य मूर्त इक्विटी के रूप में परिवर्तित करना होगा।

सरल शब्दों में बासेल - III

बासेल-III का कार्यान्वयन किए जाने से

- **क)** टियर-I पूंजी अनुपात = 6 प्रतिशत
  कोर टियर-I पूंजी अनुपात (कटौती के बाद सामान्य इक्विटी) = 4.5 प्रतिशत
- **ख)** 8.0 प्रतिशत की कुल पूंजी अपेक्षा और टियर-I अपेक्षा के अंतर को टियर-II पूंजी से समायोजित किया जा सकता है।
- **ग)** बैंकों को भविष्य में पैदा होने वाले दबाव का सामना करने के लिए 2.5 प्रतिशत का पूंजी संरक्षण बफर रखना होगा, जिससे कुल सामान्य इक्विटी अपेक्षा 7 प्रतिशत हो जाएगी।
- **घ)** सामान्य इक्विटी के 0 प्रतिशत से 2.5 प्रतिशत के दायरे में प्रतिचक्रीय बफर या राष्ट्र-विशेष की परिस्थिति के अनुसार समूची हानि की अवशोषक पूंजी लागू की जाएगी।
- **ङ)** ऐसे बैंकों को सामान्य रूप से प्रयोज्य मानकों से अपेक्षाकृत अधिक हानि अवशोषण क्षमता रखनी चाहिए जो प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण हैं।

च) चलनिधि कवरेज अनुपात, वैश्विक लीवरेज अनुपात भी बासेल-III का अंग बन रहे हैं।

इस प्रकार विनियामक पूंजी अनुपात के अंतर्गत निम्नलिखित घटक शामिल होंगे:

कुल विनियामक पूंजी अनुपात = [टियर-I पूंजी अनुपात] + [पूंजी संरक्षण बफर] + [प्रतिचक्रीय पूंजी बफर] + [प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों संबंधी पूंजी]

चलनिधि संबंधी नई अपेक्षाएं

बैंकों ने वित्तीय संकट के समय चलनिधिजन्य कठिनाइयों का अनुभव किया, भले ही उन्होंने विनियामक जोखिम-भारित आस्ति संबंधी पूंजी अपेक्षाओं को पूरा कर लिया था। इससे यह साबित हुआ है कि पूंजी अपेक्षाओं को किसी विशिष्ट तरीके को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करने से संस्थाओं की चलनिधि अपेक्षाएं निश्चित रूप से पूरी हो जाएंगी, ऐसा ज़रूरी नहीं है। अत: बासेल-III ने नए सिरे से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुसंगत चलनिधि मानकों को प्रारंभ किया है। उद्देश्य यह है कि चलनिधिजन्य जोखिम प्रोफाइल की ऐसी अल्पावधिक आघात-सहनीय व्यवस्था तैयार की जाए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि बैंकों के पास पर्याप्त मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाली चलनिधिगत आस्तियां/आस्तियां हों जो बैंकों को कई महीनों तक बनी रहने वाली निवल नकदी बहिर्गमन की दुर्दशा से निपटने में सहायता पहुंचाएंगी। हाल में भारत में उठे सीआरआर विवाद को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

समिति का दूसरा उद्देश्य यह है कि बैंकों को निधीयन की निश्चित न्यूनतम राशि रखनी चाहिए, जो 1 वर्ष की अवधि के लिए आस्ति/तुलन-पत्रेतर चलनिधिगत एक्सपोज़र से संबद्ध चलनिधिजन्य जोखिम कारकों के आधार पर स्थिर रह सकती हो।

वैश्विक लीवरेज अनुपात का प्रारंभ

वित्तीय संकट से एक और सबक मिला कि बैंकिंग प्रणाली में तुलन-पत्र में आने वाले और उससे इतर अत्यधिक लीवरेज (अवपूंजीकृत ऋण) काफी बढ़ गए, भले ही बैंक विनियामक जोखिम भारित पूंजी अपेक्षाओं को पूरा कर पाए। तथापि, यह देखा गया कि बैंक उस समय की बाज़ार परिस्थिति में अपने लीवरेज को कम करने के लिए बाध्य हुए। साथ ही, प्रणाली ने आस्ति के मूल्यों में गिरावट के प्रवृत्तिजन्य दबाव को बढ़ा दिया। इसकी वजह से बैंक पूंजी में गिरावट आई और उपलब्ध क्रेडिट की मात्रा में कमी हुई। इस प्रकार पुनः डिलीवरेजिंग होने से रोकने के लिए बासेल समिति ने निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पहली बार एक लीवरेज अनुपात की शुरुआत की है :

- बैंकिंग क्षेत्र में लीवरेज को काबू में रखना, जिससे ऐसी अस्थिरकारी व डिलीवरेजिंग प्रक्रियाओं को रोकने में सहायता मिल सके जो व्यापक वित्तीय प्रणाली और अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचा सकती हों।
- ऐसी जोखिम-आधारित अपेक्षाओं को सुदृढ़ करना जिसके साथ सकल एक्सपोज़र पर आधारित एक सहज गैर-जोखिम आधारित बैकस्टॉप भी शामिल हो (मूलतः यह 'मॉडल जोखिम' से निपटने के लिए है)।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि बैंकों द्वारा अपने 'वास्तविक' जोखिम प्रोफाइल को समुचित रूप से प्रकट किया जाना सुनिश्चित करने के उद्देश्य से स्तंभ-1 के अंतर्गत जोखिम कवरेज और स्तंभ-3 के अंतर्गत प्रकटीकरण व्यवस्था में भी परिवर्तन किया गया है।

इस प्रकार का दूरगामी प्रावधानीकरण दीर्घावधिक आर्थिक अस्थिरता से लाभ व हानि के अत्यधिक उतार-चढ़ाव को रोकने का एक साधन है जिससे बैंकों को 'अर्जन जोखिम' को कम करने में सहायता मिलनी चाहिए। एक और उद्देश्य यह भी है कि बैंकों को समुचित ऋण कीमत प्रणाली के माध्यम से भावी क्रेडिट लागतों को ध्यान में रखते हुए प्रचक्रीयता को कम करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करना।

वाणिज्यिक बैंकों पर प्रभाव

क्या बासेल-III समान अवसर प्रदान करने वाला है?

सरसरी तौर पर लगता है कि बासेल-III बैंकों को समान अवसर प्रदान करने वाला है, किंतु निम्नलिखित से यह गलत प्रतीत होता है। बासेल-III का उद्देश्य विनियामक पूंजी और चलनिधिगत विफलताओं से निपटने का उपाय बनना है, जो 2007-09 के वैश्विक वित्तीय संकट में पैदा हुई थीं। तथापि, राष्ट्रीय स्तर पर यूएस और अन्य देशों द्वारा इसी प्रकार का उपाय किया जा रहा था :

- संयुक्त राष्ट्र के डॉड-फ्रैंक अधिनियम में पूंजी अपेक्षाएं बढ़ा दी गईं;
- जर्मनी में वित्तीय बाज़ारों और बीमा पर्यवेक्षण को सुदृढ़ बनाने वाले अधिनियम ने पूंजी अपेक्षा बढ़ाई;
- युनाइटेड किंगडम में वित्तीय विनियामक सुधार संबंधी श्वेत पत्र के माध्यम से बैंकों की पूंजी में बढ़ोतरी करने की योजना पेश की गई; तथा
- स्पेन में सुव्यवस्थित बैंक पुनर्रचना संबंधी निधि का निर्माण किया गया ताकि भावी वित्तीय संकटों के समय बैंक दिवालियेपन और करदाताओं के बेलआउट को रोकने के लिए अधिक मात्रा में पूंजी उपलब्ध हो।

अत: बासेल-III और इन देशों के प्रयासों में अंतर हो सकता है। उदाहरणार्थ, स्विट्ज़रलैंड और युनाइटेड किंगडम ने कड़े नियम लागू किए हैं और वे अपनी वित्तीय संस्थाओं पर अपेक्षाकृत अधिक विनियामक प्रतिबंध लगाकर आगे बढ़ रहे हैं। संक्षेप में यू.एस. इस बात को लेकर चिंतित है कि चूंकि ये सभी देश आगे वित्तीय संकट को रोकने में सहायतार्थ अन्य विनियमों के साथ-साथ पूंजी अपेक्षा बढ़ाने की दिशा में अलग-अलग तरीके से प्रयास कर रहे हैं अतः बासेल-III अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग में समान अवसर शायद ही प्रदान कर सकता है।

यूरोपीय संसद भी इन्हीं कारणों से चिंतित है। दिनांक 7 अक्तूबर 2010 को यूरोपीय संसद ने यूरोपीय आयोग को यह जानने के लिए बाध्य करते हुए एक संकल्प पारित किया कि क्या बासेल-III से यू.एस. बैंकों को यूरोपीय मूल के बैंकों की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धात्मक लाभ मिलेगा। उक्त संकल्प में बाहरी क्रेडिट रेटिंग एजेंसी पर लगाई गई डॉड-फ्रैंक अधिनियम की रोक का उल्लेख है : हाल में संयुक्त राष्ट्र में पारित विधियों की वजह से मौजूदा मानकों और सितंबर में बासेल समिति के अंतर्गत निर्धारित मानकों के कार्यान्वयन में ऐसी स्थिति में विशेष रूप से गंभीर असमानताएं पैदा हो जाएंगी, जब बाहरी रेटिंग एजेंसियों की प्रदत्त मान्यता को प्रतिबंधित किया जाएगा और इस प्रकार का मानक विशेष प्रकार के बैंकों पर लागू किया जाएगा। इसके अलावा, यूरोपीय देश 'टू बिग टु फ़ेल' वाली संस्थाओं पर अलग से कर लगाने पर विचार कर रहे हैं।

पूंजी घटकों पर व्यापक प्रभाव

लाभांश नीति

एक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि बासेल-III के अंतर्गत बैंकों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में सामान्य इक्विटी प्रकार की पूंजी रखनी होगी जिससे उन्हें लाभांश नीति, शेयर बाई बैक, बोनस अदायगी आदि जैसी पूंजी वितरण व्यवस्था में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। अतः उच्च लाभांश अदा करने वाले बैंकों और उच्च लीवरेज-प्राप्त बैंकों के सम्मुख निवेशक परिप्रेक्ष्य से जोखिम की स्थिति पैदा हो जाएगी।

टियर-II पूंजी

वर्तमान में टियर-II के अंतर्गत उच्चतर टियर-II (बेमीयादी गौण कर्ज) और निम्नतर टियर-II (मीयादी गौण कर्ज) शामिल हैं तथा टियर-II टियर-I के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। किंतु बासेल-III के अंतर्गत इस अंतर को दूर कर दिया गया है और निम्न गुणवत्ता वाली पूंजी को पूंजी के नए मानक की कसौटी पर खरा उतरना ज़रूरी होगा। टियर-III (जिसे भारत में कभी लागू नहीं किया गया) अब पूंजी का एक रूप नहीं रहा। चूंकि किसी एक बैंक द्वारा दूसरे बैंकों में किया जाने वाला निवेश आपस में अंतरसंबद्ध होता ही है, ऐसी स्थिति में निवेशक मिल पाना आसान नहीं होगा।

पूंजी की कार्यनीति

चूंकि कोर पूंजी (सामान्य इक्विटी व प्रतिधारित उपार्जन) पर निर्भरता अधिक है अतः पूंजी लिखत का चयन और निर्गम कार्य काफी चुनौतीपूर्ण हो जाएगा। पूंजी-संपन्न और पूंजीहीन बैंकों के बीच पूंजी वितरण की खाई काफी बढ़ जाएगी।

प्रतिचक्रीय बफर

समष्टि आर्थिक परिस्थितियों में होने वाले बदलाव के अनुसार प्रतिचक्रीय बफर की मात्रा घट-बढ़ सकती है। उदाहरणार्थ, यदि अर्थव्यवस्था या जीडीपी संवृद्धि प्रतिशत की तुलना में क्रेडिट में तेजी से वृद्धि होती है तो बड़े पैमाने पर बफर की ज़रूरत पड़ सकती है। चूंकि यह बफर राष्ट्रीय प्राधिकरणों द्वारा निर्धारित किया जाता है अतः विभिन्न देशों/बैंकों में इसमें अंतर हो सकता है। यदि बैंक ने विदेश में उपस्थिति दर्ज की हो और कुछ देशों में जीडीपी संवृद्धि की तुलना में क्रेडिट में तीव्र गति से वृद्धि होती हो तो बफर का

परिकलन विदेशी पोर्टफोलियो के भारित औसत के रूप में किया जा सकता है। इसके कारण कमज़ोर आर्थिक क्षेत्र में विदेशी उपस्थिति के लिए अधिक लागत चुकानी पड़ेगी और इससे बैंक की प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता पर बुरा असर पड़ेगा।

प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थानों के लिए अतिरिक्त पूंजी

पूंजी-बहुल बैंकों को अपने तुलन-पत्र को सुदृढ़ रखना चाहिए ताकि वे कारोबारी हानि से बच सकें तथा चूंकि प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं के लिए संभावित पूंजी और चलनिधि अधिभार लगाया जा सकता है, अतः पूंजी-बहुल बैंकों को अतिरिक्त पूंजी का बोझ उठाना पड़ सकता है।

लीवरेज अनुपात

हालांकि लीवरेज अनुपात का परिकलन विभिन्न देशों के संबंध में तुलनात्मक तरीके से किया जाएगा फिर भी लेखांकन मानक में व्याप्त अंतरों की वजह से लीवरेज अनुपात का अनुप्रयोग अलग प्रकार से किया जा सकता है तथा बैंकों को लीवरेज के माध्यम से आरओई में सुधार कर पाना चुनौतीपूर्ण होगा। पश्चिमी और एशियाई बैंकों के बीच आरओई असमानता की खाई काफी बढ़ जाएगी।

चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर)

एलसीआर अल्पावधिक चलनिधि संकेतक है जिसके अंतर्गत बैंकों को तनाव की परिस्थिति में 30 दिन की अवधि के लिए निवल प्रत्याशित नकदी बहिर्वाह के अलावा उच्च गुणवत्ता वाली चलनिधिगत आस्तियां रखनी होंगी। इससे 'निम' पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि अल्पावधिक चलनिधिगत आस्तियों से उस प्रकार से अर्जन नहीं होगा जिस प्रकार से अन्य दीर्घावधिक अभिनियोजन से अर्जन होता हो।

निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर)

बैंकों को तुलन-पत्र के अंतर्गत वाली और तुलन-पत्र से इतर निधिक आस्तियों की जांच नेमी रूप से करनी होगी। उन्हें स्थिर स्रोतों के माध्यम से इन आस्तियों का समर्थन करना चाहिए और तुलन-पत्रेतर मदों की संभावित आकस्मिक मांगों की जानकारी भी रखनी चाहिए। चूंकि बैंक पहले से परिपक्वता रूपांतरण को अंजाम दे रहे हैं और वे दीर्घावधि व अल्पावधि के बीच के अंतराल से प्रतिफल का लाभ उठा रहे हैं, अतः एक निगरानी तंत्र का होना ज़रूरी है। इससे भी 'निम' पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

प्रत्याशित हानि (ईएल) आधारित प्रावधानीकरण

हालांकि ईएल प्रावधानीकरण दृष्टिकोण से बैंकों को आर्थिक मंदी के समय लाभ व हानि के परिवर्तनों से बचाया जा सकता है, फिर भी इस दृष्टिकोण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि बैंक किस प्रकार पीडी, ईएडी और एलजीडी अनुमानों की कसौटी पर खरा उतरते हैं तथा एक डिस्काउंट कारक के रूप में प्रभावी ब्याज दर का विकल्प साकार होता है। विभिन्न देशों में कार्यान्वयन को अंजाम देने के लिए आईएफआरएस 9 मानक और ईएल आधारित प्रावधानीकरण के बीच सामंजस्य स्थापित करना ज़रूरी है।

जोखिम भारित आस्तियों की चुनौती

बासेल-III के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए हर (डिनॉमिनेटर) की तुलना में समग्र टियर-I का अभिकलन करना अपेक्षाकृत आसान हो सकता है क्योंकि डिनॉमिनेटर के संबंध में वैयक्तिक ट्रेडिंग पोजिशन, सहसंबंध, वीएआर और दबावग्रस्त वीएआर के उपयोग की जानकारी तथा ऋण पोर्टफोलियो की आंतरिक रेटिंगों का ब्योरा रखना ज़रूरी है। बाज़ार जोखिम का नया परिकलन, प्रतिपक्षी क्रेडिट जोखिम का कैलिब्रेशन और क्रेडिट वैल्यू एड्जस्टमेंट (सीवीए) आदि चुनौतीपूर्ण कार्य हैं।

ट्रेडिंग बही की चुनौतियां

बासेल-III ट्रेडिंग बही लेखापद्धति के अंतर्गत अन्य बातों के साथ-साथ दबावग्रस्त वीएआर, वृद्धिशील जोखिम प्रभार (आईआरसी) और वैधीकरण संबंधी अपेक्षाएं शामिल हैं। दबावग्रस्त वीएआर का मापन 10 दिवसीय 99वें प्रतिशत तक एकपक्षीय वैश्वासिक अंतराल (10 days 99th percentile one tailed confidence interval) के आधार पर 12 महीने की अवधि के लिए किया जाता है। परिणामस्वरूप दबावग्रस्त वीएआर बाज़ार जोखिम पोजिशनों के लिए मौजूदा पूंजी प्रभारों में 'टेल' घटनाओं का सतत आकलन सुसाध्य बना सकेगा। आईआरसी के माध्यम से ट्रेडिंग बही में उल्लिखित पोजिशनों, जो कि क्रेडिट जोखिम के अध्यधीन हैं, के संबंध में चूक और माइग्रेशन जोखिम पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। आईआरसी का उद्देश्य है एक वर्ष की अवधि

में बाज़ार के घटनाक्रम से संबद्ध मूल्य जोखिम के आकलन में सुधार लाना। इसके लिए मूल रूप में पोजिशन के परिनिर्धारण की समय-सीमा को ध्यान में रखना चाहिए। आईआरसी मॉडल को वैधीकृत करने के लिए मानक बैक टेस्टिंग पर्याप्त नहीं हो सकती, अतः मॉडल के गुणवत्तात्मक और मात्रात्मक मानकों का मूल्यांकन करने के लिए दबाव परीक्षणों, संवेदनशीलता परीक्षणों और परिदृश्यमूलक विश्लेषणों पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भर रहना पड़ेगा।

प्रतिचक्रीय क्रेडिट जोखिम

यहां आस्ति मूल्य सहसंबंध (जहां आस्ति मूल्य सहसंबंध गुणक को बढ़ाकर 1.25 कर दिया गया है जिससे पूंजी में लगभग 36 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हो सकती है) और सीवीए से समस्या बढ़ गई है। सीवीए किसी बैंक एक्सपोज़र के बाज़ार मूल्य को समायोजित करने का ऐसा ढांचा है जो प्रतिपक्षी क्रेडिट जोखिम में होने वाले परिवर्तनों की प्रतिक्रिया है।

प्रतिपक्षी जोखिम बढ़ने से सीवीए बढ़ जाता है और उसके अनुरूप बैंक एक्सपोज़र के बाज़ार मूल्य में कमी हो जाती है। यह प्रस्तावित पद्धति बांड समस्तरीय ऐड-ऑन दृष्टिकोण पर आधारित है जिसके अंतर्गत प्रतिपक्षी द्वारा जारी किए गए बांडों पर होने वाली प्रत्याशित हानियों के संबंध में मूल्य में उतार-चढ़ाव जोखिम को बाज़ार जोखिम के साथ समीकृत करते हुए पूंजी प्रभार लगाया जाता है।

एक और विशेष मुद्दा है केंद्रीय प्रतिपक्षी। उसके लिए आवश्यक है कि वह वित्तीय संस्थाओं के बीच किए जाने वाले ओटीसी द्विपक्षीय ट्रेडों से पैदा होने वाले प्रणालीगत जोखिम को कम करे। तथापि, केंद्रीय समाशोधन को मानकीकृत करने में काफी समय लगेगा तथा ओटीसी ट्रेडों और द्विपक्षीय समाशोधन को ऐसे प्लैटफार्म पर अंतरित करने में भी काफी समय लगेगा।

सारांश

प्रारंभ में बासेल-II में मुख्य रूप से स्तंभ-1 के अंतर्गत न्यूनतम पूंजी अपेक्षा निर्धारित करने के लिए बैंकों की जोखिम संवेदनशीलता बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करना था। किंतु क्रेडिट संकट और उससे जुड़ी समस्याओं ने उसका ध्यान स्तंभ-2 पर केंद्रित करवा दिया, जिससे प्रत्येक बैंक के स्तर पर वास्तविक विनियामक पूंजी अपेक्षाओं को लेकर अनिश्चितता काफी बढ़ गई और परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के बीच असमानताएं बढ़ गईं।

यह सोचकर कि बासेल-III से कोई एक जैसी स्थिति पैदा नहीं होने वाली है, यूएस में, जहाँ 7 जून 2012 को प्रस्तावित नियम-निर्माण संबंधी तीन नोटिस (एनपीआर)(बासेल-III एनपीआर, मानकीकृत दृष्टिकोण संबंधी एनपीआर और उन्नत दृष्टिकोण तथा बाज़ार जोखिम एनपीआर) जारी किए गए हैं, बासेल-III को 500 मिलियन अमरीकी डॉलर से अधिक आस्ति रखने वाले बैंकों पर लागू कर दिया गया है तथा संबंधित बैंक की आस्ति की मात्रा के आधार पर एक विभेदक परिकलन तैयार किया गया है।

ऐसे बैंकों के लिए उन्नत दृष्टिकोण लागू कर दिए गए हैं जिनकी आस्ति 250 बिलियन अमरीकी डॉलर से अधिक है या जिनके तुलन-पत्र में 10 बिलियन अमरीकी डॉलर से अधिक विदेशी एक्सपोज़र हैं, वहीं अन्य बैंकों के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण लागू कर दिया गया है। उन्नत दृष्टिकोण वाले बैंकों का लीवरेज अनुपात 3 प्रतिशत होगा, जबकि अन्य बैंकों को 4 प्रतिशत का अनुपात रखना होगा। इसी प्रकार उन्नत दृष्टिकोण वाले बैंकों के लिए लीवरेज अनुपात के तहत तुलन-पत्र के अंतर्गत वाले और उससे इतर एक्सपोज़रों दोनों को शामिल किया गया है, वहीं गैर-उन्नत दृष्टिकोण वाले बैंकों के लिए केवल तुलन-पत्र के अंतर्गत वाले एक्सपोज़रों को शामिल किया गया है।

संस्था के आकार तथा प्रणाली एवं जमाकर्ताओं के सम्मुख उससे पैदा होने वाले जोखिम आदि के आधार पर एक विभेदक प्रणाली की शुरुआत की गई है। ऐसे विभेदीकृत दृष्टिकोण से अनुपालन में लगने वाली समूची लागत में कमी आएगी। साथ ही, ऐसी बैंकिंग कंपनियों पर जटिलतापूर्ण कार्यविधि लागू की जा सकती है जिनका कार्य-संचालन जटिलतापूर्ण है। जहां तक लाभप्रदता पर पड़ने वाले दबाव का संबंध है बैंकों के तुलन-पत्रों की पुनर्रचना करना ज़रूरी हो सकता है जिसके साथ उनके कार्य-क्षेत्र और उनकी विशिष्ट कारोबारी गतिविधियों को बदलने पर विचार करना पड़ सकता है। नई नियमावली के अंतर्गत तीन अलग-अलग पहलों की अपेक्षा होगी, यथा-पूंजीगत कार्य-नीति, जोखिम रणनीति और कार्यान्वयन प्रबंधन।

❍❍❍

बासेल-III के कार्यान्वयन से जुड़े मुद्दे और चुनौतियां

आर. एस. रावत
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

क्या आपने कभी कॉमन इक्विटी, प्रतिचक्रीय बफर, पूंजी संरक्षण बफर, लीवरेज अनुपात, एलसीआर, एनएसएफआर, सीआईएफआई अधिभार, गैर-व्यवहार्यता के बिंदु, छाया बैंकिंग, दबावग्रस्त बीएआर, सीसीपी, लाभांश प्रतिबंध आदि जैसे शब्दों के बारे में सुना है? ये बासेल-III से जुड़े हुए कुछ ऐसे चर्चित शब्द हैं जो न केवल बैंकिंग की दुनिया में अपना असर छोड़ रहे हैं बल्कि बृहत् लोक नीति में अपनी उपस्थिति को भी दर्ज कर रहे हैं। आगे इस विषय पर हमारी आम समझ को बढ़ाने के लिए इन गूढ़ शब्दों की तह तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति का संक्षिप्त इतिहास और इसकी पृष्ठभूमि

बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति (बीसीबीएस) 27 सदस्य देशों के बैंकिंग पर्यवेक्षकों की एक समिति है। इसकी स्थापना वर्ष 1974 में की गई थी और अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआईएस), बासेल में इसका मुख्यालय स्थित है। समिति का गठन व्यापक पर्यवेक्षी मानकों और दिशा-निर्देशों को बनाने तथा उनके प्रति सामान्य दृष्टिकोण अपनाने को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया था। इस प्रकार बीसीबीएस बैंकिंग पर्यवेक्षी मामलों पर नियमित सहयोग के लिए एक मंच प्रदान करने के साथ-साथ दुनिया भर में बैंकिंग पर्यवेक्षण की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए प्रमुख पर्यवेक्षी मुद्दों की समझ बढ़ाने का भी प्रयास करता है।

बासेल-III क्यों : एक सिंहावलोकन

हम सभी इस बात से सहमत होंगे कि बैंकिंग प्रणाली की सुदृढ़ता बैंकिंग विनियमन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों में से एक है। किसी भी बैंक की सुदृढ़ता को उसके दिवालिया होने की संभावना से आंका जा सकता है और जिस बैंक में इसकी संभावना जितनी ही कम है वह बैंक उतना ही सुदृढ़ होता है। 1990 के दशक तक बैंक विनियामक बैंक की सुदृढ़ता को आंकने के लिए पूंजी पर्याप्तता अनुपात नीति मुख्य रूप से सामान्य लीवरेज अनुपात के आधार पर तैयार करते थे। हालांकि इस अनुपात में मुख्य समस्या यही थी कि यह अपने जोखिमों के अनुसार आस्तियों के बीच अंतर नहीं करता था। इस प्रकार बैंक की आस्ति से संबंधित जोखिम (जिससे दिवालियेपन की संभावना बढ़ती है) में बढ़ोतरी होने के बावजूद यदि बैंक न्यूनतम लीवरेज अनुपात को बनाए रखने में सफल रहते हैं तो पूंजी की मात्रा में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता था। अन्य शब्दों में कहें तो लीवरेज अनुपात न्यूनतम पूंजी अनुपात की सीमा तय करता था और इससे दिवालिया होने की संभावना का पता नहीं लगाया जा सकता। इसी वजह से वर्ष 1988 में बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति ने बासेल समझौते अर्थात् ऋण-शोधन क्षमता के उपाय के तौर पर लीवरेज अनुपात की कमजोरियों से निपटने के लिए बासेल-I समझौते या जोखिम आधारित पूंजी की आवश्यकता की शुरुआत की। बासेल दृष्टिकोण के अंतर्गत जोखिमों को आंकने के लिए देनदारों की श्रेणी के अनुसार विभिन्न वर्गों में आस्तियों को वर्गीकृत करते हुए एक पोर्टफोलियो दृष्टिकोण अपनाया गया। हालांकि, समय के साथ हुए प्रौद्योगिकीय, वित्तीय और संस्थागत परिवर्तनों के कारण इसकी अनेक कमजोरियां (1996 में बाजार जोखिम से संबंधित अनेक संशोधनों के बावजूद) सामने आईं। इनमें से कुछ कमजोरियां नीचे दी जा रही हैं:

I. बासेल-I समझौते में ऋण जोखिमों को कम करने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था।

II. परिचालन से संबंधित जोखिम को भी शामिल नहीं किया गया था।

III. बैंकों को प्रतिभूतीकरण के माध्यम से कम गुणवत्ता वाली आस्तियों को खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

इन्हीं वजहों से बासेल समिति ने जोखिम के प्रति अधिक संवेदनशील ढांचे का प्रस्ताव रखा जिसे बासेल-II के नाम से जाना

जाता है। बासेल-II ढांचे ने परिचालन जोखिम के लिए पूंजी प्रभार की शुरुआत की। साथ ही, उसने ऐसी किसी बाहरी क्रेडिट मूल्यांकन संस्था (जैसे रेटिंग एजेंसी) द्वारा उपलब्ध कराई गई रेटिंग, जो कि सख्त मानकों के अनुरूप थी या जो कि आंतरिक रेटिंग आधारित (आईआरबी) दृष्टिकोणों, जहाँ बैंक इनपुट उपलब्ध कराते हैं, पर निर्भर करती है, के आधार पर जोखिम भारों को परिष्कृत किया। इसके अलावा, उसने न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं के अतिरिक्त पर्यवेक्षी समीक्षा प्रक्रिया और बाज़ार अनुशासन के दो और नए स्तंभों की शुरुआत की।

इसी प्रकार, बासेल-II के दिशा-निर्देशों में कुछ और सुधार किए गए जिसमें बैंकों को अपने ट्रेडिंग परिचालनों आदि में मौजूदा बाजार जोखिम के लिए और अधिक पूंजी का प्रावधान करने के लिए कहा गया।

इन विनियामक अपेक्षाओं के बावजूद हमारे सामने वित्तीय संकट आया। वित्तीय संकट ने वित्तीय जगत की निम्नलिखित कमजोरियों को उजागर किया जो यदि पूरी तरह नहीं तो भी आंशिक रूप से इस संकट के लिए जिम्मेदार थीं।

- अपर्याप्त चलनिधि और कमजोर ढांचागत चलनिधि प्रोफाइल
- कमजोर अभिशासन के कारण खराब अंडरराइटिंग और जोखिम प्रबंधन
- पारदर्शिता का अभाव या यूं कह लें अपारदर्शिता
- संस्थागत स्तर पर जोखिम प्रबंधन/पर्यवेक्षण पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित होना
- प्रणालीगत जोखिम : प्रचक्रीयता और अंतरसंबद्धता
- नैतिकता में गिरावट और अनुचित प्रोत्साहन।

वित्तीय संकट से सीख (बैंक की पूंजी संबंधी)

- अपर्याप्त सामान्य इक्विटी
- नुकसान को सहने की दृष्टि से अपर्याप्त हाइब्रिड पूंजी
- जोखिम का अधूरा आकलन : कुछ जटिल प्रतिभूतीकरण, ट्रेडिंग और डेरिवेटिव गतिविधियां, प्रतिपक्षी ऋण जोखिम
- लीवरेज पर किसी भी प्रकार की रोक नहीं
- न्यूनतम पूंजी के अतिरिक्त पूंजी की अपर्याप्त मात्रा
- ऋण चक्र में जोखिम तत्व की पहचान का अभाव
- प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों से पैदा होने वाले जोखिमों को नजरअंदाज करना
- छाया बैंकिंग प्रणाली का विकास और बैंकों का इनके साथ बड़े पैमाने पर कारोबार।

इस प्रकार हम यह पाते हैं कि हाल के वित्तीय संकट से निपटने के लिए मौजूदा विनियामकों ने बासेल III को अपनाने की पहल की है। इसका उद्देश्य वर्तमान विनियामक अपेक्षाओं को मजबूत बनाना है ताकि (क) भविष्य में पैदा होने वाली संभावना और (ख) वित्तीय संकट की गंभीरता को कम किया जा सके।

बासेल-III न्यूनतम पूंजी ढांचे के प्रमुख घटक

बासेल-III के तहत पूंजी की आवश्यकता के प्रमुख घटक निम्नानुसार हैः

पूंजी की गुणवत्ता और स्तर

कुल 9% की न्यूनतम विनियामक पूंजी की अपेक्षा में से 5.5% सामान्य इक्विटी होना आवश्यक है। इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सामान्य इक्विटी विनियामक पूंजी का एक प्रमुख घटक होगा। इसके अलावा, गैर-सामान्य इक्विटी पूंजी लिखतों में भी किसी भी प्रकार की नवोन्मेषी विशेषता नहीं होगी और इसे सामान्य इक्विटी में परिवर्तित करना होगा या कुछ पूर्व निर्धारित ट्रिगर (भारत के मामले में सामान्य इक्विटी आरडब्ल्यूए का 6.125% तक पहुंच जाती हो) पर इसे घटाना होगा।

- पूंजी बफर
  - पूंजी संरक्षण बफर
  - प्रतिचक्रीय पूंजी बफर
- जोखिम कवरेज
  - प्रतिभूतीकरण
  - ट्रेडिंग बही
  - प्रतिपक्षी ऋण जोखिम
- लीवरेज अनुपात
- प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण बैंकों द्वारा अतिरिक्त हानि सहने के लिए प्रावधान।

बासेल-III के कार्यान्वयन में चुनौतियां

हम जानते हैं कि बासेल-III के दिशानिर्देशों में उच्च स्तर की पूंजी की गुणवत्ता और मात्रा के साथ-साथ पूंजी की आवश्यकताओं के लिए कड़े मानकों को भी शामिल किया गया है। इस तरह की आशंकाएं व्यक्त की जा रही हैं कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को परिचालन की दृष्टि से कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

पूंजी

पश्चिमी देशों की तुलना में उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में संवृद्धि की दर ऊंची होने के कारण ऋण की मात्रा अधिक होगी। इस प्रकार उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूंजी अपेक्षा अपेक्षाकृत अधिक हो जाएगी।

हाल ही में लागू किए गए ऋण मूल्य समायोजन पूंजी प्रभार से इन देशों के बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के लिए डेरिवेटिव लेनदेनों की मात्रा बढ़ने से पूंजी की आवश्यकता में बढ़ोतरी होगी। इसी प्रकार बैंकों के तुलन-पत्र से इतर एक्सपोज़र, यथा - व्यापार वित्त आदि के लिए जारी किए जाने वाले साख पत्र, की गणना उसके संपूर्ण अंकित मूल्य पर की जाएगी, न कि पूंजी पर्याप्तता प्रयोजन के लिए 20 प्रतिशत के ऋण संपरिवर्तन कारक को हिसाब में लेने वाली मौजूदा पद्धति के आधार पर। इससे निर्यात उन्मुख कारोबार में लगी एसएमई क्षेत्र की संस्थाओं के लिए व्यापार वित्तपोषण की लागत में बढ़ोतरी हो सकती है। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि साख पत्र के निर्गम के स्प्रेड की मात्रा में वृद्धि हो सकती है।

जैसा कि हम जानते हैं कि बैंकिंग बही के अंतर्गत वाले निवेश, यथा - ऋण आदि पारंपरिक पोर्टफोलियो ऋण ऐसे हैं जिनमें आस्तियों को परिपक्वता तक धारित किया जाता है और उनका मूल्यांकन ऐतिहासिक लागत पर किया जाता है (उपचय लेखा)। ऐसी लिखतों की होल्डिंग अवधि अधिक होने के कारण इनके लिए पूंजी की आवश्यकता बढ़ जाती है। हालांकि बांड, पण्य, विदेशी मुद्रा, इक्विटी, डेरिवेटिव आदि जैसे निवेश बैंक की बहियों में बाजार मूल्य के अनुसार ही अंकित किए जाते हैं और ये बैंकों द्वारा सक्रिय रूप से हेज किए जाते हैं। चूंकि ऐसी लिखतों को आसानी से बेचा या हेज किया जा सकता है अतः इनके लिए पूंजी प्रभार अपेक्षाकृत कम है। इस प्रकार बैंक अपने ऋण जोखिमों को हस्तांतरित करने और अपेक्षाकृत कम पूंजी प्रभार बनाए रखने के लिए प्रतिभूतीकरण लेन-देन को अंजाम देते रहते हैं। तथापि, बासेल-III मानदंडों के तहत अब ट्रेडिंग और बैंकिंग बहियों के प्रतिभूतीकरण एक्सपोजरों के लिए पूंजी की आवश्यकता समान है। इसी प्रकार, आईएमए दृष्टिकोण को अपनाने वाले बैंकों के लिए बाज़ार जोखिमों की उच्चतर पूंजी अपेक्षा के साथ-साथ पुनःप्रतिभूतीकरण संबंधी पूंजी अपेक्षा को दुगुना कर दिया गया है।

इसके अलावा, बासेल-III के मानदंडों के अंतर्गत अतिरिक्त टियर-I पूंजी लिखतें और टियर-II पूंजी लिखतें ऐसी हों जो प्रतिकूल स्थितियों में हानि की भरपाई करने में सक्षम हों। इसे संविदात्मक रूपांतरण सुविधाओं के माध्यम से या बैंक के अपने क्षेत्राधिकार में ही 'समाधान प्रक्रिया' को अपनाकर हासिल किया जा सकता है। इस प्रकार उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में ऐसी लिखतों के माध्यम से पूंजी जुटाना एक कठिन चुनौती पेश कर सकता है क्योंकि इन देशों में पूंजी बाजार, कीमत निर्धारण और ऐसी लिखतों का कारोबार व्यापक रूप में मौजूद नहीं है। साथ ही, अन्य बैंकों/ वित्तीय संस्थाओं में बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा की जाने वाली प्रतिधारिता के लिए उच्च पूंजी का प्रावधान करना होगा जिससे उन बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के लिए पूंजी जुटाना मुश्किल हो जाएगा जो पूंजी जुटाने के लिए वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहते हैं।

मौजूदा उच्च पूंजी अनुपात की वजह से भारत जैसी उभरती बाजार अर्थव्यवस्था में बैंकों को बासेल-III के कार्यान्वयन के प्रारंभिक चरण में ज्यादा समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। हालांकि, लंबी अवधि में बैंकों को गैर-संस्थागत निवेशकों की अपर्याप्त भागीदारी के कारण पूंजी जुटाने में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। पूंजी जुटाने के उद्देश्य से बाजार में कई बैंक एक साथ उतर जाने की स्थिति में और अधिक समस्या का सामना करना पड़ सकता है। इसके अलावा, सरकारी क्षेत्र के बैंकों के मामले में भारत सरकार द्वारा प्रदत्त पूंजी बैंकों की वित्तीय स्थिति पर अपना प्रभाव डाल सकती है। ऐसे मुद्दे विशेष रूप से चक्रीय मंदी, अनिश्चित वैश्विक आर्थिक परिदृश्य, उच्च ब्याज दर, बढ़ते एनपीए के माहौल में चुनौतीपूर्ण साबित हो सकते हैं क्योंकि इससे संपूर्ण बैंकिंग जगत की पूंजी अपेक्षाओं में बढ़ोतरी हो जाएगी।

चलनिधि मानक

हाल के वित्तीय संकट के दौरान यह देखा गया कि पर्याप्त पूंजी के स्तर के होने के बावजूद कई बैंकों ने कठिनाइयों का अनुभव किया। इसलिए, पहली बार बासेल-III के दिशा-निर्देशों में बैंकों के लिए चलनिधि संबंधी मानकों को शामिल किया गया है। इन चलनिधि मानकों के तहत बैंकों को दो चलनिधि अर्थात् चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) और निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) का निर्माण करना होगा जिससे बैंकों के समक्ष आने वाले चलनिधि जोखिम से संबंधित चिंताओं का निवारण किया जा सके। एलसीआर के तहत बैंकों के लिए चलनिधि की अस्तव्यस्तता/कमी का सामना करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली चलनिधिगत आस्ति को तीस दिनों की अवधि के लिए बनाए रखना आवश्यक है। ये आस्तियाँ भार-रहित हों और चलनिधि की कमी के समय आसानी से चलनिधि में बदलने योग्य और आदर्श रूप में केंद्रीय बैंक से चलनिधि सहायता प्राप्त करने के लिए पात्र अर्थात नकद, सरकारी प्रतिभूतियां और उच्च दर्जा प्राप्त कॉरपोरेट बांड आदि होना चाहिए।

इसी तरह बैंकों को न्यूनतम एनएफआर को बनाए रखना आवश्यक है जो उपलब्ध स्थिर निधीयन और एक वर्ष के दौरान आवश्यक स्थिर निधीयन का अनुपात होता है। इस प्रकार एनएसएफआर चलनिधि जोखिम के प्रति आघात-सहनीयता प्रदान करेगा।

उच्च गुणवत्ता वाले कॉरपोरेट बांडों के लिए चलनिधिगत बाजार के अभाव में उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में बैंकों के पास केवल सरकारी बांड का एक मात्र विकल्प बचता है जो एलसीआर बफर आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त आस्ति मानी जाती है। इससे बैंकों की आय में कमी आ सकती है।

भारतीय बैंकों पर प्रभाव

भारतीय बैंकों के उच्च सामान्य इक्विटी के साथ-साथ टियर-I अनुपात बहुत अधिक है, इसलिए इन बैंकों के लिए विनियामक अपेक्षाओं के अनुसार सामान्य इक्विटी में टियर-I और टियर-II पूंजी के हस्तातंरण के बावजूद बड़ी बाधा सामने आती नहीं दिख रही है। हालांकि नवोन्मेषी स्थायी कर्ज लिखत (आईपीडीआई) और गौण कर्ज जैसे कुछ लिखतों का उच्च प्रावधान भारतीय बैंकों के मामले में कुछ कठिनाइयां पेश कर सकता है।

हमारी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है और इसलिए जीडीपी अनुपात की तुलना में ऋण में तीव्र वृद्धि की संभावना है जो वर्तमान में लगभग 55% है क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति में बड़े बदलाव की उम्मीद है और यह सेवा क्षेत्र से विनिर्माण क्षेत्र की ओर आगे बढ़ रही है।

हमारे देश के केंद्रीय बैंक को एक ऐसी बड़ी दुविधा का सामना करना पड़ सकता है कि सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) की अपेक्षाओं (वर्तमान में मांग और मीयादी देयताओं का 23%) को आंशिक रूप में चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) के भाग के रूप में माना जाए या नहीं।

प्रारंभ में बैंकों को इक्विटी पर निम्नतर प्रतिलाभों की वजह से इक्विटी के माध्यम से निधियों को जुटाने में कठिनाई आएगी। इस प्रकार बासेल-III के अंतर्गत निधियों की लागत में बढ़ोतरी से उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में अर्थव्यवस्था की संवृद्धि पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। हालांकि, इस प्रकार के कई अध्ययन मौजूद हैं जो इस दृष्टिकोण का खंडन करते हैं।

बीसीबीएस और एफएसबी द्वारा स्थापित समष्टि आर्थिक मूल्यांकन समूह (एमएजी) के माध्यम से करवाए गए अध्ययन के अनुसार पूंजी में एक प्रतिशत अंक की बढ़ोतरी से सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) में लगभग 0.17% तक की गिरावट आने की संभावना होती है। एमएजी समूह द्वारा किया गया विश्लेषण इस धारणा पर आधारित है कि बैंकों के लिए पूंजी के लिए संसाधन जुटाने की लागत जमा और कर्ज की तुलना में अधिक आती है। इस प्रकार जिन बैंकों को अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी वे उच्च प्रतिधारित आय, इक्विटी निर्गम और जोखिम भारित आस्तियों को कम करने की ओर कदम बढ़ाएंगे। हालांकि, संसाधनों को जुटाने के लिए बैंक उस समय की संभावनाओं को ध्यान में रखकर अपनी रणनीति तय करेंगे। जिन बैंकों के पास संसाधनों को जुटाने के लिए पर्याप्त समय है उन्हें इससे आसानी होगी क्योंकि वे प्रतिधारित आय पर निर्भर रह सकते हैं और यह क्रेडिट आपूर्ति पर नकारात्मक प्रभाव को खत्म भी करता है।

एमएजी ने पूंजी की सख्त अपेक्षा के दीर्घावधिक आर्थिक प्रभाव (एलईआई) पर बल देते हुए निम्नलिखित लाभ बताए हैं:

(i) वित्तीय संकट और इससे जुड़े नुकसान की संभावना कम होगी।

(ii) संकट से इतर अवधि में उत्पादन में होने वाले उतार-चढ़ाव में कमी आएगी।

(iii) अधिक आघात-सहनीय वित्तीय प्रणाली वाले बैंकों को निधीयन के लिए कम प्रीमियम का भुगतान करना होगा।

इसलिए, यह देखा जाना चाहिए कि बैंकिंग प्रणाली की दीर्घकालीन स्थिरता को हासिल करने के लिए अल्पावधि में अपरिहार्य लेकिन सहनीय समझौता करना पड़ सकता है। दूसरी बात, विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं से काफी अलग वित्तीय नीतियों को अपनाने से अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि इसका स्पिल-ओवर प्रभाव काफी अधिक हो सकता है (वर्तमान परिदृश्य में डिकप्लिंग का सिद्धांत काम नहीं कर रहा है)।

बीसीबीएस ने प्रतिचक्रीय बफर के निर्माण की मात्रा को निर्धारित करने के लिए सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) की तुलना में ऋण अनुपात को मानदंड बनाने की सिफारिश की है। भारत जैसी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में यह प्रणालीगत जोखिमों के निर्माण के पर्याप्त संकेत देने में असफल भी रह सकता है क्योंकि सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) की तुलना में ऋण में सामान्य प्रवृत्ति से हटकर ऊर्ध्वमुखी विचलन केवल चक्रीय घटक से नहीं अपितु ढांचागत घटकों से भी हो सकता है। प्रतिचक्रीय प्रावधानों के संबंध में ऐतिहासिक आंकड़े न रहने की वजह से भी इसका कार्यान्वयन बाधित होगा। हालांकि 'कंप्लाई और एक्सप्लेन' वाले ढांचे के तहत सिफारिश किए गए विनिमयों से विचलित होने की छूट/गुंजाइश रहती है, फिर भी बाज़ार इसे अननुपालन मान सकता है।

इससे बुनियादी ढांचे के वित्तपोषण पर कुछ असर पड़ सकता है जिसे ऋण में वृद्धि, अंतरण वित्तपोषण, चलनिधि सहायता, कॉरपोरेट बॉण्ड और क्रेडिट डेरिवेटिव आदि के बाजार का विकास करते हुए दूर किया जा सकता है।

निष्कर्ष

भारत जैसी उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्था में परिचालन करने वाले बैंकों को विशेष रूप से बासेल-III दिशानिर्देशों का कार्यान्वयन करने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, तथापि इससे बैंक और अधिक आघात-सहनीय हो जाएंगे तथा वे प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने के लिए और अधिक सक्षम होंगे। इससे भविष्य में वित्तीय संकट की संभावना और इससे जुड़े नुकसान की तीव्रता को कम किया जा सकेगा।

❍❍❍

भारतीय रिज़र्व बैंक की नीतिगत दरें *

बैंक दर	:	9.00 प्रतिशत
रेपो दर	:	8.00 प्रतिशत
रिवर्स रेपो दर	:	7.00 प्रतिशत
आरक्षित अनुपात *		
आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर)	:	4.25 प्रतिशत
सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर)	:	23.0 प्रतिशत

* 15 जनवरी 2013 को।

बासेल-III मानक एवं भारतीय बैंक

देव राज
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, नई दिल्ली

वर्ष 2007-08 में अमरीका में आए सब प्राइम संकट के बाद आई वैश्विक मंदी के परिप्रेक्ष्य में बैंक फॉर इंटरनेशनरल सेटलमेंट की बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति द्वारा बैंकों में जोखिम प्रबंधन को सुदृढ़ करने तथा बासेल-II के पूंजी पर्याप्तता ढांचे में सुधार हेतु दिसंबर 2010 में नए मानदंड जारी किए गए, जिन्हें बासेल-III कहा जाता है। इससे पूर्व बासेल समिति ने दो समझौते क्रमशः वर्ष 1988 व 2004 में जारी किए थे जिन्हें बासेल-I व बासेल-II समझौते के रूप में जाना जाता है।

भारत और बासेल समझौता

भारतीय बैंकिंग को अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं की कसौटी पर खरा उतरने में सक्षम बनाने के लिए रिज़र्व बैंक ने नब्बे के दशक में बासेल-I को अपनाया तथा मार्च 2008 से बासेल-II को लागू कर दिया। हाल ही में जारी बासेल-III के संदर्भ में भारत की स्थिति पहले के समझौतों की तुलना में भिन्न इसलिए है कि बासेल-I व बासेल-II समझौतों के निर्माण में भारत की भूमिका नगण्य थी, जबकि बासेल-III के सृजन में बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल-समिति तथा उसकी कई उप-समितियों में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सक्रिय योगदान दिया गया है। एक तरह से बासेल-III समझौता भारत की भागीदारी से तैयार किया गया समझौता है जिसके प्रवर्तन में निश्चित ही भारतीय रिज़र्व बैंक अधिक सक्रियता से कार्य करेगा। भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट 2010-11 के अनुसार **''रिज़र्व बैंक विनियमावली की जांच कर रहा है और वह उचित समय में भारत में संचालित बैंकों के लिए अपेक्षित दिशानिर्देश जारी करेगा ।... रिज़र्व बैंक 1 जनवरी 2013 से बासेल-III लागू करने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित चरणबद्ध अवधि का पालन करेगा।''**

रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव ने दिसंबर 3, 2010 को दिए भाषण में कहा था, **''भारतीय बैंकों को समग्र तौर पर नए पूंजी नियमों के साथ मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों की दृष्टि से सामंजस्य बनाए रखने में कोई समस्या नहीं होगी।''** जून 30, 2010 के आंकड़ों के अनुसार बासेल-III के संदर्भ में भारतीय बैंकों की स्थिति निम्नलिखित तालिका में दर्शाई गई है –

सारणी-1
बासेल-II व बासेल-III के संदर्भ में
भारतीय बैंकों की 30 जून 2010 की स्थिति

विवरण	बासेल-III की अपेक्षा	भारतीय बैंकों के लिए वास्तविक मान	
		बासेल-II	बासेल-III
जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी (सीआरएआर)%	10.5	14.4	11.7
जिसमें से टियर-I पूंजी %	8.5	10.0	9.0
सामान्य इक्विटी %	7.0	8.5	7.4

बासेल-III का उद्देश्य

बासेल-III अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों हेतु पूंजी पर्याप्तता मानकों में सुधार का एक बृहत समझौता है जिसके तहत बैंकों के पर्यवेक्षण, विनियमन तथा जोखिम प्रबंधन को सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया है। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं –

- बैंकिंग क्षेत्र की आर्थिक व वित्तीय क्षेत्र में किसी भी स्रोत (आंतरिक या बाह्य) से उत्पन्न हुए संकटों को झेलने की क्षमता में वृद्धि करना।
- जोखिम प्रबंधन व सुशासन स्थापित करना।
- बैंकों की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता व प्रकटीकरण को मजबूत करना।

बासेल-III के प्रमुख दृष्टिकोण

हालिया वैश्विक संकट के मद्देनज़र बासेल-III में दो मुख्य दृष्टिकोण अपनाए गए हैं जो इस प्रकार हैं :

(क) प्रत्येक बैंक का सूक्ष्म स्तर पर विनियमन जो कि संकट की स्थिति में वैयक्तिक बैंकिंग संस्थाओं की आघात-सहनीयता को बढ़ाने में सहायक होगा।

(ख) समूचे बैंकिंग क्षेत्र का बृहत स्तर पर विनियमन ताकि किसी बैंक विशेष में आए संकट को दूसरे बैंकों या समूचे वित्तीय जगत में फैलने से रोका जा सके अथवा इस संदर्भ में तैयारी की जा सके।

ये दोनों दृष्टिकोण एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि अलग-अलग बैंकों की आघात-सहनीयता समूचे तंत्र के लिए आघात सहने की शक्ति प्रदान करता है जिससे संकट से निपटने की क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

बासेल-II व बासेल-III में अंतर

यद्यपि बासेल-III बासेल-II का एक उन्नत रूप है लेकिन कई मायनों में यह बासेल-II से भिन्न भी है। बासेल-III के अंतर्गत बैंकों के पूंजी पर्याप्तता मानकों को बासेल-II की अपेक्षा संख्यात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से और मजबूत किया गया है। इसके द्वारा बैंकिंग क्षेत्र में चलनिधि बढ़ाने के लिए नई विनियामक अपेक्षाएं निर्धारित की गई हैं। बासेल समिति का यह विचार है कि नया बासेल-III समझौता बैंकों में जोखिम प्रबंधन तथा पूंजी की मात्रा, गुणवत्ता, निरंतरता व पारदर्शिता को अधिक मजबूत करेगा। बासेल-II व बासेल-III में अंतर निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट किया गया है।

सारणी-2
बासेल-II व बासेल-III में अंतर

प्रावधान	बासेल-II	बासेल-III
पूंजी का वर्गीकरण	टियर-I, II व III	केवल टियर-I व टियर-II
टियर-I पूंजी	4.0%	6.0%
न्यूनतम सामान्य इक्विटी	2%	4.5%
पूंजी संरक्षण बफर	--	2.5%
विवेकाधीन प्रतिचक्रीय बफर	--	2.5%
लीवरेज अनुपात	--	3%
चलनिधि कवरेज अनुपात	--	इसके तहत बैंकों को 30 दिनों के निवल नकदी प्रवाह को कवर करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली पर्याप्त चल आस्तियों को रखना होगा।
निवल स्थिर निधीयन अनुपात	--	इसके तहत बैंकों से अपेक्षा की गई है कि वे एक वर्ष के लिए आवश्यक स्थिर निधीयन अनुपात बनाए रखें।

बासेल-III के कार्यान्वयन के चरण

बैंकिंग पर्यवेक्षण द्वारा दिसंबर 2010 में जारी किया गया बासेल-III समझौता विविध चरणों में लागू होगा। इसके पूंजी पर्याप्तता संबंधी प्रावधान वर्ष 2013 से लागू होने लगेंगे और 2019 तक चरणबद्ध रूप से इसके न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं के सभी प्रावधानों को लागू कर दिया जाएगा, जो निम्नलिखित तालिका में दर्शाए गए हैं।

सारणी-3
पूंजी आवश्यकताओं को पूरा करने के चरण

नियत तिथि	पूंजी आवश्यकताओं के चरण
2013	बासेल-III के तहत जारी उच्च पूंजी आवश्यकताओं की प्राप्ति हेतु क्रमबद्ध तरीके से बैंकों की पूंजी में विस्तार।

2015	बासेल-III के अंतर्गत निर्देशित उच्च न्यूनतम पूंजी आवश्यकताओं को बैंकों द्वारा पूरी तरह लागू करना।
2016	पूंजी संरक्षण बफर के लिए चरणबद्ध रूप से आगे बढ़ना।
2019	पूंजी संरक्षण बफर को पूरी तरह कार्यान्वित करना।

बासेल-III में न्यूनतम पूंजी अपेक्षाओं में बदलाव के साथ-साथ एक नया अनुपात जारी किया गया है जिसे लीवरेज अनुपात कहा गया है जिसका कार्यान्वयन 5 चरणों में होगा। यह 2011 में प्रारंभ होकर 2018 में पूरा हो जाएगा।

सारणी-4
लीवरेज अनुपात को पूरा करने के चरण

नियत तिथि	लीवरेज अनुपात से जुड़े चरण
2011	**पर्यवेक्षीय निगरानी** – लीवरेज अनुपात तथा उसके अंतर्निहित घटकों को ट्रैक करने के लिए टेंप्लेट्स तैयार करना।
2013	**पैरेलल रन 1** – लीवरेज अनुपात व उसके घटकों को पर्यवेक्षकों द्वारा ट्रैक किया जाएगा किंतु न तो ऐसा करना अनिवार्य होगा और न ही उन्हें उजागर किया जाएगा।
2015	**पैरेलल रन 2** – लीवरेज अनुपात व उसके घटकों को ट्रैक और प्रकट किया जा सकता है लेकिन ऐसा करना अनिवार्य नहीं होगा।
2017	**अंतिम समायोजन** – समानान्तर रूप से लागू करने की अवधि में प्राप्त परिणामों के आधार पर लीवरेज अनुपात में अंतिम समायोजन करना।
2018	**अनिवार्य आवश्यकता** – लीवरेज अनुपात बासेल-III की अनिवार्य आवश्यकता बन जाएगा।

वर्ष 2007-08 में अमरीकी सब-प्राइम संकट व बाद में यूरोपीय व अन्य अर्थव्यवस्थाओं में फैले वित्तीय संकट में एक समानता वित्तीय संस्थानों में चलनिधि की कमी के रूप में सामने आई। सहसा उत्पन्न हुए चलनिधि संकट ने बैंकों को दिवालिया कर दिया तथा समूचे वित्तीय क्षेत्र में मंदी आ गई। इसी से सबक लेकर बासेल-III के तहत चलनिधि अपेक्षाओं में वृद्धि की गई है और दो प्रकार के अनुपात – (क) चलनिधि कवरेज अनुपात (Liquidity Coverage Ratio - LCR) एवं (ख) निवल स्थिर निधीयन अनुपात (Net Stable Funding Ratio-NSFR) घोषित किए गए हैं जिनके कार्यान्वयन के चरण तालिका-5 में दिए गए हैं –

सारणी-5
चलनिधि अनुपातों से संबंधित चरण

नियत तिथि	चलनिधि आवश्यकताओं के चरण
2011	चलनिधि अनुपातों के लिए टेंप्लेट्स बनाना तथा उनकी पर्यवेक्षीय निगरानी करना।
2015	चलनिधि कवरेज अनुपात को लागू करना।
2018	निवल स्थिर निधीयन अनुपात (NSFR) को लागू करना।

बासेल – III के कार्यान्वयन का असर

- ओईसीडी का अनुमान है कि बासेल-III का कार्यान्वयन 0.05 करने के लिए 0.15 प्रतिबंध अंक के द्वारा वार्षिक सकल देशी उत्पाद की संवृद्धि दर में कमी होगी।
- यद्यपि भारतीय बैंक निर्धारित अवधि में बासेल-III मानदंडों को पूरा करने में समर्थ हैं लेकिन आने वाले समय में बढ़ती हुई ऋण जरूरतों को पूरा करना तथा अधिक कठोर विनियामक व्यवस्था में सामंजस्य बनाए रखना एवं जोखिम प्रबंधन प्रणाली को उन्नत बनाना एक बड़ी चुनौती होगा।
- भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में बैंक अच्छी तरह पूंजीकृत हैं और बासेल-III के मानदंडों से कुल मिलाकर बैंकिंग प्रणाली में अनुचित दबाव पड़ने की संभावना नहीं है। यद्यपि कुछ वैयक्तिक बैंकों को इन मानकों के पालन के लिए उस स्थिति में अतिरिक्त पूंजी जुटाने की आवश्यकता पड़ सकती है जब वे इस चरण में प्रवेश करते हैं।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने जनवरी 20, 2011 को बैंकों को ''स्टेप-अप ऑप्शन'' वाले टियर-I व टियर-II पूंजी

दस्तावेज जारी न करने का निर्देश दिया है ताकि ऐसे दस्तावेज विनियामक पूंजी की नई परिभाषा में शामिल किए जाने के लिए पात्र बन सकें।

- बासेल-III के तहत बैंकों को अपने पूंजी आधार की गुणवत्ता, स्थिरता और पारदर्शिता को बढ़ाना होगा। टियर-I पूंजी के तहत सामान्य शेयर व प्रतिधारित आरक्षित निधियों (retained reserves) को ही शामिल किया जाएगा तथा टियर-II में शामिल पूंजी को भी समन्वित किया जाएगा। बासेल-II के विपरीत बासेल-III में टियर-III पूंजी को पूरी तरह से हटा दिया गया है।
- बासेल-III के अंतर्गत बाजार व प्रतिपक्षी ऋण जोखिम के लिए अधिक समन्वित प्रबंधन पर जोर दिया गया है तथा डेरिवेटिव, रेपो या प्रतिभूतियों के संदर्भ में बैंकों के एक्सपोज़र हेतु पूंजी अपेक्षाएं बढ़ा दी गई हैं।
- बासेल-III अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय बैंकों के लिए वैश्विक न्यूनतम चलनिधिगत मानकों को लागू करता है।
- बासेल-III के तहत बैंक निदेशकों को किसी भी बड़े नुकसान के प्रति अपनी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए परिसंपत्तियों के मामले में बाजार चलनिधि के बारे में जानकारी रखनी होगी। स्पष्ट है कि बासेल-III के कार्यान्वयन हेतु बैंकों में मानव संसाधन के प्रशिक्षण व ज्ञान प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना होगा।

सारांश

संक्षेप में, बासेल-III बैंकों के लिए एक सुअवसर होने के साथ-साथ एक चुनौती भी है। एक ओर यह बैंकों को नए विकास के लिए मजबूत आधार प्रदान करता है वहीं पूंजी का एक बड़ा भाग विभिन्न प्रकार की पूंजी अपेक्षाओं के तहत अवरुद्ध होने से बैंकों के लाभ में कमी होने की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता है। विशेषकर भारत जैसे देश जहां पहले से ही बैंकों पर आरक्षित नकदी निधि अनुपात (CRR), सांविधिक चलनिधि अनुपात (SLR) जैसे पर्यवेक्षीय प्रावधान लागू हैं, वहां बासेल-III के तहत और पूंजी का प्रावधान करना देश की अर्थव्यवस्था में बढ़ रही ऋण की मांग व आपूर्ति पर असर डालेगा। बासेल-III समझौता 21वीं सदी के पहले दशक के उत्तरार्द्ध में आए वैश्विक वित्तीय संकट की उपज है और ऐसे संकट का सामना करने हेतु इसमें व्यापक प्रावधान शामिल किए गए हैं। इसके तहत वित्तीय प्रबंधन व जोखिम प्रबंधन को बेहतर तरीके से समन्वित करने का प्रयास किया गया है जिससे यह समझौता बैंकिंग व्यवसाय में उत्पन्न होने वाले लगभग सभी प्रकार के जोखिमों को प्रबंधित करने का प्रयास करेगा।

❍❍❍

भारत पर वोल्कर नियम का प्रभाव

वोल्कर नियम डॉड-फ्रैंक वॉल स्ट्रीट रिफॉर्म और कंज्यूमर प्रोटेक्शन एक्ट का एक हिस्सा है जो कि 2007-2008 में उत्पन्न वैश्विक वित्तीय संकट के परिणामस्वरूप कानून के रूप में हस्तांतरित किया गया था। इस नियम का सबसे चर्चित भाग देश के सबसे बड़े बैंकों द्वारा किये जाने वाले स्वामित्व व्यापार पर लगाया गया प्रतिबंध है। दूसरे शब्दों में, कोई बैंक पैसा बनाने के लिए निवेश बाज़ार में, किसी ग्राहक के लिए किये जाने वाले व्यापार को छोड़कर, व्यापार नहीं कर सकता। एक बैंक मध्यस्थ के रूप में काम कर सकता है - लेकिन अपने लाभ के लिए व्यापारी की तरह काम नहीं कर सकता। यह नियम संघ की बैंकिंग संस्थाएं सेक्युरिटीज़ एक्सचेंज कमीशन (एसईसी) और द कमोडिटी फ्यूचर्स ट्रेडिंग कमीशन (सीएफटीसी) को जमा लेनेवाली बीमाकृत संस्थाओं तथा उनकी सहयोगी संस्थाओं को "स्वामित्व व्यापार" करने और हेज फंड अथवा प्राइवेट इक्विटी फंड (स्वामित्व व्यापार में किसी बैंक के टियर-I पूंजी का 3 प्रतिशत से अधिक हिस्से के निवेश करने से रोकना) में निवेश करने, अनुमोदन देने अथवा किसी भी प्रकार के कारोबारी संबंध रखने से रोकता है।

यह तर्क दिया जाता रहा है कि यदि उक्त नियम को भारत में लागू किया गया तो इससे बॉण्ड बाजार में व्यापार कम हो जाएगा, जिसमें सरकारी बॉण्ड बाजार भी शामिल है तथा सरकारों, निवेशकों और कंपनियों के लिए ऋण लागत बढ़ जाएगी। इसके साथ ही यह बैंकों की जोखिम लेने की क्षमता को काफी हद तक कम करके उन्हें नए बाजार में प्रवेश से भी रोकेगा। इस बात पर भी चिंता व्यक्त की गई कि इससे अल्पावधि के विदेशी मुद्रा विनिमय का कार्य भी प्रतिबंध के दायरे में आ जाएगा और इस प्रकार के प्रतिबंध से अमेरिका के बाहर अमेरिकी डॉलर की आपूर्ति काफी कम हो जाएगी और विदेशी आस्तियों की कमी के कारण यूरोपीय बैंकों की डिलिवरेजिंग में वृद्धि होगी। किंतु आशा है कि यह नियम वित्तीय स्थिरता को मजबूत बनाने में उपयोगी सिद्ध होगा।

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011-12

बासेल दिशा-निर्देशों का कार्यान्वयन : भारतीय स्टेट बैंक की भूमिका

डॉ. संजीव प्रचंडिया
सहायक प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक
चण्डौल, अलीगढ़

वर्ष 1976-77 में स्विट्ज़रलैंड में स्थित शहर बासेल में 10 विकसित देशों के केंद्रीय बैंकों के प्रतिनिधियों का समूह (G-10) एकत्रित हुआ था जिसके मुखिया थे आस्ट्रेलियन बैंकर श्री पीटर कुक। इस समूह ने बैंकिंग पर्यवेक्षी प्राधिकरणों (Banking Supervising Authorities) की एक समिति का गठन किया। कालांतर में 'बैंकिंग विनियमन तथा पर्यवेक्षण कार्यप्रणाली' (Banking Regulation and Supervisory Practices) हेतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बनी हुई इस समिति ने जुलाई 1988 में विभिन्न देशों की केंद्रीय बैंकिंग नियामक संस्थाओं (हमारे देश में भारतीय रिज़र्व बैंक) द्वारा उनके अधीनस्थ वित्तीय संस्थाओं के स्थायित्व तथा सुदृढ़ता सुनिश्चित करने हेतु निर्देशक सिद्धांत बनाए। विश्व के लगभग 150 देश इस समिति के सदस्य हैं। उक्त सिद्धांतों में न्यूनतम पूंजी की आवश्यकता तथा पूंजी मानकों पर जोर दिया गया है। इसी आधार पर बासेल-I समिति के प्रथम प्रस्तावों की अनुपालना हेतु भारतीय रिज़र्व बैंक ने 1 अप्रैल 1992 से जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात, जो कि केवल जोखिम भारित आस्तियों (Risk Weighted Assets) के संदर्भ में थे, को भारतीय बैंकों के लिए अनिवार्य कर दिया।

जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात मार्च 2000 से जोखिम भारित आस्तियों के 9% के बराबर है। बासेल - II के प्रस्ताव जो वर्ष 1999 में आए उनमें जोखिम की परिभाषा बढ़ाकर जोखिम भारित आस्तियों के साथ-साथ बाजार जोखिम, परिचालन संबंधी जोखिम, चलनिधि संबंधी जोखिम, प्रतिष्ठा से संबंधित जोखिम, मानव संसाधन संबंधी जोखिमों को शामिल किया गया है तथा बैंकों व वित्तीय संस्थाओं द्वारा इन सभी जोखिमों को झेलने की क्षमता के विकास के लिए न्यूनतम पूंजी रखने संबंधी मानक बनाने पर जोर दिया गया है।

बासेल - I

वर्ष 1988 में सुझाए गए इस समझौते का मुख्य मुद्दा बैंकों द्वारा पूंजी पर्याप्तता के मानदंडों के अनुसार न्यूनतम पूंजी रखना था। यह समझौता भारतीय बैंकों के लिए वर्ष 1992 से लागू कर दिया गया। इसे बासेल अकॉर्ड - I का नाम दिया गया।

बासेल - II

समय बदला। फलतः विश्व स्तर पर वित्तीय बाजारों में बहुत से बदलाव आए। बैंकिंग संस्थाओं का इन बदलावों से समायोजन करने तथा इनके फलस्वरूप उभरते जोखिमों से निपटने हेतु बासेल समिति द्वारा एक नया समझौता, जिसे बासेल अकॉर्ड-II का नाम दिया गया, 2006 में लागू करने के लिए स्वीकृत किया गया। भारतीय रिज़र्व बैंक ने 31 मार्च 2008 से इसे भारत में लागू करने का निर्देश दिया। इसमें निम्न बिंदुओं पर बल दिया गया :

1. केंद्रीय बैंक द्वारा प्रत्येक बैंक की जोखिम-प्रोफाइल का मूल्यांकन तथा उनकी लगातार निगरानी।
2. बैंकों द्वारा अपनी प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं को सुधार कर जोखिम आकलन निर्धारण तथा नियंत्रण हेतु उचित मॉड्यूल तैयार करना।
3. सरकारी कर्ज या सरकार द्वारा गांरटीकृत ऋण संबंधी जोखिम (Sovereign Risk) के लिए भी जोखिम भार निर्धारित करना।
4. ऋण जोखिम, बाज़ार जोखिम तथा परिचालन जोखिमों (Credit, Market and Operation Risk) हेतु न्यूनतम पूंजी आवश्यकताओं का निर्धारण।

गणित की भाषा में जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात की गणना

जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात की गणना को गणित की भाषा में निम्न प्रकार दर्शा सकते हैं :

जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात (CRAR)

$$= \frac{\text{कुल पूंजी (टियर – I + टियर – II)}}{\text{कुल जोखिम भारित आस्तियां}} \times 100$$

गत वर्षों में भारतीय स्टेट बैंक के जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात की स्थिति

विवरण	वर्ष 1998	वर्ष 2000	वर्ष 2005	वर्ष 2012
टियर – I	10.69	8.28	8.04	9.79
टियर – II	3.89	3.21	4.41	4.07
पूंजी पर्याप्तता अनुपात	14.58	11.49	12.45	13.86

पूंजी पर्याप्तता बढ़ाने के उपाय –

1. जोखिम भारित आस्तियों की वसूली करके पूंजी में वृद्धि किया जाना। प्रावधान करने की आवश्यकता नहीं होगी ।
2. अलाभकारी आस्तियों का अच्छा प्रबंधन कर जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात को बढ़ाना ।
3. कमजोर बैंक का सुदृढ़ व समृद्ध बैंक के साथ विलय कर जोखिम भारित आस्तियों की तुलना में पूंजी अनुपात बढ़ाया जाना ।
4. बॉण्ड का निर्गमन कर टियर – II पूंजी में वृद्धि करना, किंतु यह निर्गमन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित नियमावली के तहत ही संभव है ।
5. इसी प्रकार आस्तियों का पुनर्मूल्यांकन करके पूंजी में वृद्धि करना ।
6. केंद्र सरकार द्वारा नए सिरे से पूंजी उपलब्ध कराकर पूंजी आधार को बढ़ाया जाना ।
7. बैंकों द्वारा अपने लाभों में वृद्धि करके पूंजी पर्याप्तता को बढ़ाना । यह उपाय बैंक हित व राष्ट्रीय उन्नति के लिए उपयुक्त है ।
8. नए सिरे से शेयर जारी करके पूंजी में वृद्धि किया जाना। लेकिन यह तभी संभव है जब बैंक की छवि साफ-सुथरी और उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो।

भारतीय स्टेट बैंक के संदर्भ में पूंजी संरचना का ब्योरा यहाँ संक्षिप्त रूप में दर्शाना, विषय के महत्व की दृष्टि से समीचीन है। वर्तमान एवं भविष्य की गतिविधियों के लिए भारतीय स्टेट बैंक* की पूंजी पर्याप्तता की स्थिति का आकलन नीचे दर्शाया गया है:

1. भारतीय रिज़र्व बैंक के पूंजी पर्याप्तता संरचना संबंधी नए दिशानिर्देशों के अनुसार बैंक और उसके समनुषंगी बैंक वार्षिक आधार पर आंतरिक पूंजी पर्याप्तता मूल्यांकन प्रक्रिया शुरू करते हैं। उसमें पूंजी आयोजना प्रक्रिया का ब्योरा दिया जाता है और विविध जोखिमों के मापन, निगरानी आंतरिक नियंत्रण, रिपोर्टिंग, पूंजी अपेक्षा और तनाव परीक्षण शामिल करते हुए मूल्यांकन किया जाता है।

2. मात्रात्मक प्रकटीकरण –

   ऋण जोखिम के लिए पूंजी की आवश्यकता

   (अ) मानकीकृत पद्धति के अनुसार पोर्टफोलियो – ₹ 88074.34 करोड़

   (आ) निवेश प्रतिभूतीकरण – शून्य

   कुल ₹ 88074.34 करोड़

3. बाजार जोखिम के लिए पूंजी की आवश्यकता (मानकीकृत अवधि पद्धति)

ब्याज पर जोखिम	₹ 2836.01 करोड़
विदेशी मुद्रा जोखिम (स्वर्ण सहित)	₹ 108.46 करोड़
इक्विटी जोखिम	₹ 1432.53 करोड़
कुल योग	₹ 4377.00 करोड़

4. परिचालन जोखिम के लिए पूंजी की आवश्यकता –

   मूल संकेतक पद्धति ₹ 7918.10 करोड़

   (Basic Indicator Approach)

*भारतीय स्टेट बैंक, वार्षिक रिपोर्ट 2012 के अनुसार

5. योग और टियर-I पूंजी का अनुपात –

	9.79 %
अन्य	4.07 %
कुल योग	13.86 %

भारतीय स्टेट बैंक ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में उल्लेख किया कि बैंक का पूंजी पर्याप्तता अनुपात मार्च 2011 के स्तर 11.98% से बढ़कर मार्च 2012 में 13.86% पर पहुँच गया। विशेषकर, टियर–I पूंजी पर्याप्तता अनुपात, जो किसी भी बैंक का शक्ति स्तंभ होता है, इस अवधि के दौरान 7.77% से बढ़कर 9.79% पर पहुँच गया है। यह सुधार सर्वप्रथम बैंक के भीतर से पहले की तुलना में अधिक राशि जुटाने और लाभ में वृद्धि करने से हुआ। दूसरा, भारतीय स्टेट बैंक को मार्च 2012 के अंत में सरकार द्वारा ₹ 7900 करोड़ की पूंजी उपलब्ध कराए जाने के कारण हुआ। अंततः उत्तम ग्राहक सेवा व कड़ी मेहनत भी व्यवसाय वृद्धि व लाभ वृद्धि में सहायक होती है जो अप्रत्यक्ष रूप से पूंजी पर्याप्तता की अभिवृद्धि में सहायक है।

❍❍❍

चुनिंदा वित्तीय संकेतक

(प्रतिशत)

मद	मार्च के अंत में	अनुसूचित वाणिज्य बैंक	अनुसूचित शहरी सहकारी बैंक	अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं	प्राथमिक व्यापारी	गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां–डी	गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां एनडी–एसआई
सीआरएआर	2011 2012	14.2 14.3	12.5 12.8	22.0 21.0	46.2 53.8	22.5 20.4	32.8 27.5
कोर सीआरएआर	2011 2012	10.0 10.4	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.	17.2 16.8	30.5 24.6
सकल अग्रिमों की तुलना में सकल एनपीए	2011 2012	2.4 2.9	5.7 5.2	0.3 0.4	उ.न. उ.न.	0.9 2.7	1.9 3.1
निवल अग्रिमों की तुलना में निवल एनपीए	2011 2012	0.9 1.2	1.0 1.4	0.1 0.1	उ.न. उ.न.	# 0.8	0.8 1.8
कुल आस्तियों पर प्रतिलाभ	2011 2012	1.1 1.1	0.9 1.0	1.0 1.0	1.1 0.8	2.7 उ.न.	2.3 1.8
इक्विटी पर प्रतिलाभ	2011 2012	13.7 13.6	उ.न. उ.न.	11.0 12.0	5.1 4.4	16.6 उ.न.	8.5 7.0
कौशल (लागत/आय अनुपात)	2011 2012	46.2 45.3	49.9 52.0	24.0 18.0	36.1 44.1	72.0 उ.न.	68.7 77.7
ब्याज अंतर (प्रतिशत)	2011 2012	3.1 3.1	उ.न. उ.न.	2.0 2.0	उ.न. उ.न.	3.5 उ.न.	1.9 2.3
कुल आस्तियों की तुलना में चलनिधि आस्तियां	2011 2012	29.8 28.9	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.	उ.न. उ.न.

उ.न. : उपलब्ध नहीं # : प्रावधान अनर्जक आस्तियों से अधिक हैं।

टिप्पणी :
1. 2012 के आंकड़े अलेखापरीक्षित और अनंतिम हैं।
2. अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के आंकड़ों में स्थानीय क्षेत्र के बैंक शामिल नहीं हैं।
3. अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के आंकड़ों में जोखिम भारित आस्ति की तुलना में पूंजी अनुपात छोड़कर देशी परिचालन शामिल है।
4. अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के जोखिम भारित आस्ति की तुलना में पूंजी अनुपात के आंकड़े बासेल–II के मानदंडों के अनुसार हैं।
5. अनुसूचित शहरी सहकारी बैंकों में जोखिम भारित आस्ति की तुलना में पूंजी अनुपात के आंकड़ों में माधवपुरा मर्कन्टाइल सहकारी बैंक लि. शामिल नहीं है।
6. 2012 के गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां–डी–के आंकड़े दिसंबर को समाप्त अवधि के हैं।
7. 2012 के गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां–एनडी–एसआई के सीआरएआर सकल एनपीए तथा निवल एनपीए के आंकड़े दिसंबर 2011 को समाप्त अवधि के हैं।

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2011-12

घूमता आईना

के. सी. मालपानी
प्रबंधक, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

1 अप्रैल 2013 से नहीं चलेंगे पुराने चेक

वित्तीय वर्ष 2013-14 की शुरुआत अर्थात 1 अप्रैल 2013 से बैंक केवल सीटीएस-2010 मानक आधारित चेक ही स्वीकार करेंगे। रिज़र्व बैंक के निर्देशानुसार पहले इस व्यवस्था को 1 जनवरी 2013 से ही लागू किया जाना था परंतु अब इसे बढ़ाकर 1 अप्रैल 2013 कर दिया गया है।

क्या है CTS 2010

चेक समाशोधन की नई प्रणाली, जिसमें चेक को एक बैंक शाखा से दूसरी बैंक शाखा में भेजने और वापस मंगाने के काम से छुटकारा मिलेगा। चेक को स्कैन करके उसकी सत्यता पहचानी जाएगी और कम समय में चेक की राशि खाते में जमा हो जाएगी।

मौजूदा व्यवस्था में ग्राहक अपने बैंक में चेक जमा करता है। बैंक इस चेक को क्लियरिंग हाउस को भेज देता है। चेक क्लियर होने पर रकम ग्राहक के खाते में आ जाती है। इस प्रक्रिया में चेक एक बैंक से दूसरे बैंक तक भौतिक रूप में लाया-ले जाया जाता है, जिसमें वक्त लगता है और इसी के चलते चेक की रकम अकाउंट में आने में कम से कम 3 दिन तक का वक्त लग जाता है।

नई व्यवस्था में इलेक्ट्रॉनिक इमेज के आधार पर चेक को क्लियर कर दिया जाएगा। चेक को स्कैन करने का काम उसी ब्रांच में हो जाएगा जहां चेक जमा कराया गया है। जाहिर है, चेक को एक ब्रांच से दूसरी ब्रांच तक ले जाने का काम नहीं करना पड़ेगा।

नई व्यवस्था से चेक लाने, ले जाने की जरूरत खत्म हो जाएगी और इससे वक्त और पैसा दोनों बचेंगे। कम समय में चेक का पैसा अकाउंट में आ जाएगा। अब आउट स्टेशन चेकों का समाशोधन भी काफी तेजी से हो सकेगा। साथ ही चेक के मामले में होने वाली धोखाधड़ी तथा चेक खोने की आशंका कम हो जाएगी।

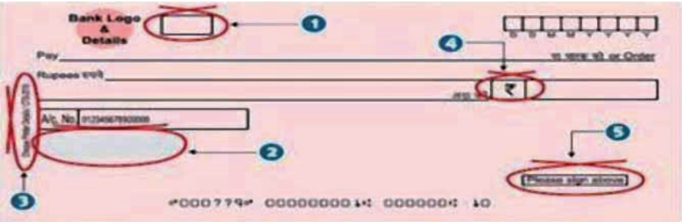

नए चेक में क्या-क्या बदलाव किए गए हैं?

1. इस जगह अल्ट्रावॉयलेट इंक से उस बैंक का लोगो छपा होगा, जिसका चेक है।
2. पेंटोग्राफ यानी एक वेव जैसा निशान बना होगा, जिसमें छिपा हुआ शब्द लिखा होगा VOID।
3. यहां चेक प्रिंटर की सूचना/CTS 2010 लिखा होगा।
4. रुपये का निशान ₹ बना होगा।
5. इस जगह "please sign above" लिखा होगा।

एहतियात के तौर पर क्या सावधानी बरती जाए

1. अपने बैंक से सीटीएस 2010 मानक वाली नई चेक बुक इश्यू करा लें। कई बैंकों ने अपने ग्राहकों को इस आशय के एसएमएस भी भेजना शुरू कर दिया है। नई चेक बुक इश्यू करने के लिए बैंक आपसे कोई चार्ज नहीं लेगा।
2. अगर आपने अपने होम लोन या ऑटो लोन की ईएमआई के भुगतान के लिए पहले से कोई पोस्टडेटेड चेक दिए हुए हैं तो नई चेकबुक इश्यू कराकर नए पोस्टडेटेड चेक दे दें और पुराने चेक निरस्त कर दें।
3. नए चेकों को भरने में अब ज्यादा सावधानी बरतने की जरूरत है। चूंकि अब चेकों का क्लियरेंस इमेज के आधार पर किया जाएगा, इसलिए चेक भरने के लिए ऐसी इंक

का प्रयोग करें जो इमेज फ्रेंडली हो। रिज़र्व बैंक की गाइडलाइंस के मुताबिक गहरे रंग की इंक का इस्तेमाल करना चाहिए। इसके लिए रंग कोई भी हो सकता है। बॉल पेन या इंक पेन दोनों चलेंगे, लेकिन गाढ़ा लिखें।

4. जिस व्यक्ति के नाम चेक काटा जा रहा है, उसका नाम, रकम (अंकों और शब्दों दोनों) और तारीख बिल्कुल साफ-साफ भरनी चाहिए। इनमें से किसी एक में भी जरा सी भी कटिंग नहीं होनी चाहिए। कई बार लोग कटिंग होने पर उसके ऊपर साइन कर देते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब जरा भी कटिंग होने पर उस चेक को कैंसल कर दूसरा चेक काटें।
5. चेक पर रेखांकन किया जाना है, तो दो क्रॉस लाइन बनाकर उनके बीच में A/c Payee जरूर लिखें और धारक शब्द को काट दें।
6. चेक पर एक से ज्यादा बार साइन न करें तथा साइन का खास ख्याल रखें। आपके साइन में अगर जरा भी फर्क हुआ तो मान्य नहीं होगा। चूंकि अब चेक को मशीन से स्कैन किया जाएगा इसलिए जरा सा भी अंतर पकड़ में आ जाएगा।

बैंकिंग विधि (संशोधन) विधेयक, 2012 को मिली संसद की मंजूरी

बैंकिंग विधि (संशोधन) विधेयक, 2012, जिसे बैंककारी विनियमन अधिनियम, बैंकिंग कम्पनीज़ (अधिग्रहण एवं उपक्रमों का हस्तांतरण) अधिनियम में संशोधन के लिए पेश किया गया था, को हाल में सम्पन्न संसद के शीतकालीन सत्र में पारित कर दिया गया। परंतु सरकार को इसके लिए विधेयक के दो विवादास्पद प्रावधान भी वापस लेने पड़े। विधेयक से हटाए गए प्रावधान हैं – (i) बैंकों को वायदा में कारोबार की अनुमति (ii) बैंकिंग सेक्टर को भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (सीसीआई) के क्षेत्राधिकार से बाहर रखना।

यह विधेयक भारतीय रिज़र्व बैंक की नियामक शक्तियों को और मजबूत करेगा। इससे देश के बैंकिंग क्षेत्र का विकास होगा और बैंकिंग क्षेत्र में और भी विदेशी निवेश आने की उम्मीद है। इसके अलावा, यह विधेयक रिज़र्व बैंक द्वारा नये बैंकों के लिए लाइसेंस का रास्ता भी खोलेगा, जिसकी लंबे समय से प्रतीक्षा की जा रही थी। इससे बैंकिंग सुविधाओं में और बढ़ोतरी करके न सिर्फ वित्तीय समावेशन के लक्ष्य को हासिल करने में मदद मिलेगी, बल्कि बैंकिंग क्षेत्र में रोजगार की अतिरिक्त संभावनाएं भी बढ़ेंगी। आइए जानते हैं इस विधेयक की कुछ खास बातों के बारे में —

- निजी बैंकों में अभी तक निवेशकों के पास अधिकतम 10 प्रतिशत वोटिंग अधिकार हैं। लेकिन इस विधेयक में दिए गए प्रावधानों के तहत वोटिंग अधिकार बढ़कर 26 प्रतिशत हो जाएंगे।
- जमाकर्ताओं के लिए शिक्षा एवं जागरूकता फंड का निर्माण – इसके लिए अपरिचालित जमाखातों की राशि का प्रयोग किया जाएगा। इस फंड का प्रयोग जमाकर्ताओं के हितों को बढ़ावा देने के लिए हो सकेगा।
- किसी व्यक्ति द्वारा बैंकिंग कम्पनी में पांच प्रतिशत या अधिक के शेयरों के अधिग्रहण या मताधिकार के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति उपलब्ध होगी। भारतीय रिज़र्व बैंक को इस संबंध में यथोचित शर्तें लागू करने का अधिकार होगा।
- भारतीय रिज़र्व बैंक बैंकिंग कम्पनियों की सहयोगी इकाइयों के बारे में सूचनाएं एकत्र करने और उनकी जांच करने में सक्षम होगा।
- किसी तरह की अनियमितता की स्थिति में रिज़र्व बैंक को बैंकिंग कंपनी के बोर्ड को निलंबित करने और आगामी व्यवस्था होने तक प्रशासक की नियुक्ति करने का अधिकार रहेगा।
- प्राथमिक को-आपरेटिव सोसाइटी को बैंकिंग व्यवसाय के संचालन की सुविधा भारतीय रिज़र्व बैंक से लाइसेंस प्राप्त करने के बाद ही मिलेगी।
- भारतीय रिज़र्व बैंक की अनुमति पर को-आपरेटिव बैंकों पर धारा-30 को प्रभावी करते हुए विशेष लेखा-परीक्षा।
- राष्ट्रीयकृत बैंक प्रेफरेंस शेयर या राइट्स इश्यू या बोनस शेयर जारी कर पूंजी जुटाने में सक्षम हो सकेंगे। नये कानून से बैंक सरकार और रिज़र्व बैंक की अनुमति से

बैंकिंग कम्पनीज़ (अधिग्रहण एवं उपक्रमों का हस्तांतरण) कानून 1970/1980 में दी गई 3000 करोड़ रुपये की सीमा के दायरे में आए बिना अधिकृत पूंजी को घटाने या बढ़ाने में भी सक्षम होंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय 60,603 रुपये

लोकसभा में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से बताया गया कि 2011-12 में राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय 60,603 रुपये दर्ज की गई। इससे पहले राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय वर्ष 2009-10 में 46,117 रुपये दर्ज की गई थी जो वर्ष 2010-11 में बढ़कर 53,331 रुपये हो गई थी।

एर्नाकुलम बना शत-प्रतिशत बैंकिंग वाला पहला जिला

केरल के एर्नाकुलम जिले को देश में 'अर्थपूर्ण वित्तीय समावेशन' प्राप्त करने वाला पहला जिला घोषित किया गया। 22 नवंबर 2012 को आयोजित एक समारोह में रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव ने इस आशय की घोषणा की।

वित्तीय साक्षरता के प्रसार के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा चलाए जा रहे आउटरीच कार्यक्रम के तहत मार्च 2011 के दौरान एर्नाकुलम जिले के वैंगूर (पश्चिम) गांव के दौरे के समय गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव ने ही इस पहल की शुरुआत किए जाने का सुझाव दिया था। इस जिले में 6 लाख से अधिक परिवार और 32 लाख की आबादी है जबकि यहां बैंक खातों का आंकड़ा 37 लाख का है। जिले का लीड बैंक यूनियन बैंक ऑफ इंडिया तथा अन्य बैंक पिछले एक साल से इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए साथ मिलकर काम कर रहे थे। इससे पहले भी एर्नाकुलम को शत-प्रतिशत साक्षरता प्राप्त करने वाला प्रथम जिला होने तथा परिवार नियोजन का शत-प्रतिशत लक्ष्य पाने वाला पहला जिला होने का गौरव मिल चुका है।

व्यापार घाटा रिकॉर्ड स्तर पर

अक्तूबर 2011 में देश से 23.6 अरब डॉलर का निर्यात किया गया था। अक्तूबर में निर्यात पिछले वर्ष की इसी अवधि के मुकाबले 1.63 प्रतिशत घटकर 23.2 अरब डॉलर रहा। अमेरिका और यूरोपीय बाजारों में सुस्त मांग के चलते देश के निर्यात में लगातार छठे महीने गिरावट दर्ज की गई है। दूसरी ओर, अक्तूबर में आयात 7.37 प्रतिशत बढ़कर 44.2 अरब डॉलर पहुंच गया। यह आयात का पिछले 18 महीने का उच्च स्तर है। सोने और पेट्रोलियम का आयात बढ़ने के चलते देश का आयात बिल बढ़ा है। अक्तूबर में तेल आयात 31.6 प्रतिशत बढ़कर 14.78 अरब डॉलर रहा जबकि गैर-तेल आयात 1.73 फीसदी घटकर 29.42 अरब डॉलर पर आ गया। इससे व्यापार घाटा 21 अरब डॉलर की रिकॉर्ड ऊंचाई पर पहुंच गया है।

चालू वित्त वर्ष के पहले सात महीनों (अप्रैल से अक्तूबर) के दौरान कुल निर्यात 6.18 फीसदी घटकर 166.92 अरब डॉलर रहा जबकि कुल आयात 2.66 फीसदी घटकर 277.13 अरब डॉलर रहा। इस अवधि में व्यापार घाटा 110.2 अरब डॉलर का रहा।

आर्थिक संवृद्धि दर में बिहार अव्वल

आर्थिक वृद्धि दर के मामले में बिहार एक बार फिर सबसे आगे निकल गया है। मार्च 2012 में समाप्त हुई 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान आर्थिक संवृद्धि के लिहाज से बिहार का प्रदर्शन सबसे बेहतरीन रहा। राज्यों की वित्तीय स्थिति पर योजना आयोग द्वारा जारी की गई रिपोर्ट के मुताबिक बिहार से काफी छोटे राज्य सिक्किम और गोवा ही इस मामले में बिहार से आगे रहे। रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2007-12 अर्थात 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान बिहार की अनुमानित सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) संवृद्धि दर 21.9 फीसदी रही। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य भी इस मामले में बिहार से पीछे रहे हैं।

वैसे सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में जीएसडीपी के लिहाज से सिक्किम प्रथम तथा गोवा दूसरे स्थान पर रहा। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान सिक्किम की जीएसडीपी संवृद्धि दर 31.6 फीसदी तथा गोवा की जीएसडीपी संवृद्धि दर 22.9 फीसदी रही।

सबसे खराब प्रदर्शन करने वाले राज्यों में झारखंड सबसे ऊपर रहा जहां संवृद्धि दर 9.2 फीसदी रही। झारखंड के बाद पुदुच्चेरी, नागालैंड और मणिपुर सबसे पीछे रहने वाले राज्यों में प्रमुख रहे। इन सभी राज्यों की संवृद्धि दर 11 फीसदी से कम रही।

बड़े राज्यों में हरियाणा की संवृद्धि दर 19.5 फीसदी रही। राजस्थान ने योजनाकाल में 18 फीसदी की दर से संवृद्धि हासिल की। केरल 16.9 फीसदी, मध्य प्रदेश 16.8 फीसदी, आंध्र प्रदेश

16.7 फीसदी और पश्चिम बंगाल की संवृद्धि दर 16.4 फीसदी रही। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान गुजरात की संवृद्धि दर 16 फीसदी रही, जबकि महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश की संवृद्धि दर 15.3 फीसदी रही।

निर्यातकों को मिली और रियायतें

सरकार ने हाल में बढ़ते व्यापार घाटे को रोकने और निर्यात में तेजी लाने के लिए कई रियायतों की घोषणा की। इसके तहत निर्यात कर्ज पर ब्याज सब्सिडी की स्कीम की अवधि को एक साल के लिए अर्थात 31 मार्च 2014 तक बढ़ा दिया गया है। साथ ही, इस स्कीम का दायरा भी बढ़ाया गया है। स्कीम के दायरे में इंजीनियरिंग क्षेत्र के कई उप क्षेत्रों को भी शामिल किया गया है। इसके अलावा निर्यात में बढ़िया प्रदर्शन करने वाले निर्यातकों को विशेष मदद की स्कीम की अवधि को भी एक साल के लिए बढ़ा दिया गया है। वहीं, विदेश में लगाई जाने वाली परियोजनाओं को भी प्रोजेक्ट एक्सपोर्ट के नाम से ब्याज पर सब्सिडी की स्कीम शुरू की गई है। इसके तहत एक्जिम बैंक दो प्रतिशत ब्याज सब्सिडी देगा। यह स्कीम केवल दक्षिण एशियाई देशों (सार्क), अफ्रीका और म्यांमार में लगने वाली परियोजनाओं के लिए ही होगी। इन रियायतों से तीसरी तिमाही में निर्यात की रफ्तार बढ़ाने में मदद मिलेगी। हालांकि, यह भी माना जा रहा है कि इन सबके बावजूद चालू वित्त वर्ष के दौरान 360 अरब डॉलर के निर्यात लक्ष्य को हासिल कर पाना मुश्किल होगा।

रूस के आरडीआईएफ और भारतीय स्टेट बैंक द्वारा साझा निवेश कोष का गठन

भारत और रूस के बीच पारस्परिक निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए रशियन डायरेक्ट इनवेस्टमेंट फंड (आरडीआईएफ), जो कि रूस का एक सावरेन वेल्थ फंड है, ने भारतीय स्टेट बैंक के साथ मिलकर 2 अरब डॉलर के निवेश कंसोर्टियम का गठन किया है। प्रस्तावित सह-निवेश कंसोर्टियम में आरडीआईएफ और भारतीय स्टेट बैंक द्वारा एक-एक अरब डालर का निवेश किया जाएगा। इस कोष का इस्तेमाल बुनियादी संरचना के विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं प्रसंस्करण हेतु किया जाएगा। इससे भारत के बुनियादी संरचना क्षेत्र में निवेश बढ़ने की संभावना है। इससे दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों को भी बल मिलेगा।

क्या है फिस्कल क्लिफ

मौजूदा प्रावधानों में यदि कोई संशोधन नहीं किए जाते हैं तो जनवरी 2013 के प्रारंभ से अमेरिका में सरकारी खर्च में कटौती, टैक्स दरों में वृद्धि और इसी के अनुरूप अमेरिका के बजट घाटे में प्रस्तावित कटौती से वहां की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव को 'फिस्कल क्लिफ' का नाम दिया गया है। वर्ष 2013 में अमेरिका में बजट घाटे को कम करके आधा किया जाना प्रस्तावित है। कांग्रेसनल बजट ऑफिस के मुताबिक, इस तीव्र कटौती से वर्ष 2013 की शुरुआत में ही अमेरिकी अर्थव्यवस्था के सामने हल्की मंदी का खतरा पैदा हो सकता है।

'फिस्कल क्लिफ' के मुख्य कारणों में है - अमेरिका में बजट कंट्रोल एक्ट, 2011 के तहत खर्च में योजनाबद्ध कटौती किए जाने के प्रावधान, टैक्स रिलीफ एक्ट, 2010 की वैधता समाप्त होने के साथ ही 1 जनवरी 2013 से कर रियायतों की समाप्ति अर्थात इनकम टैक्स की दरों में वृद्धि। इसको फिस्कल क्लिफ इसलिए भी कहा जा रहा है क्योंकि खर्च में कटौती और टैक्स में बढ़ोतरी होने से अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए होने वाला अधिकांश खर्च या सरकारी राहत उपाय बंद हो जाएंगे। कुछ एक्सपर्ट्स के मुताबिक, फिस्कल क्लिफ की बुरी से बुरी स्थिति में 2013 में अमेरिका का जीडीपी 0.5 फीसदी घट जाएगा तथा इससे 2013 की चौथी तिमाही में बेरोजगारी 9.1 फीसदी के स्तर पर पहुंच जाएगी। हालांकि, कुछ एक्सपर्ट्स को लगता है कि अमेरिका का फिस्कल क्लिफ से नहीं बच पाना उसके लिए दीर्घावधि में पॉजिटिव होगा।

अगर अमेरिका फिस्कल क्लिफ को टाल नहीं पाता है, तो इससे वैश्विक वित्तीय बाजारों में उथल-पुथल मच सकती है। भारत की बात करें तो इससे विदेशी फंड इनफ्लो में कमी आ सकती है। इसी वजह से भारतीय बाजार ने 2012 में 20 फीसदी का रिटर्न दिया है। अगर भारतीय बाजार से विदेशी निवेश बाहर जाता है, तो इससे हमारी करेंसी पर दबाव बढ़ सकता है। साथ ही, दीर्घावधि में अमेरिका की आर्थिक संवृद्धि में गिरावट होने पर पूरे विश्व की आर्थिक संवृद्धि भी धीमी हो जाएगी। इससे भारत का निर्यात घटने और इसकी समग्र संवृद्धि प्रभावित होने की संभावना से भी नकारा नहीं जा सकता।

जोखिमों के विभिन्न प्रकार : जिनका सामना बैंकों द्वारा किया जाता है

जोखिमों के प्रकार	परिभाषा
ऋण जोखिम	यह काउंटरपार्टी की ऋण गुणवत्ता में ह्रास हो जाने के कारण ऋण देने संबंधी निर्णीत संविदाओं में चूक अथवा उन्हें पूरा न करने के नकारात्मक परिणाम को संदर्भित करता है।
• काउंटरपार्टी चूक जोखिम	इस संभावना को संदर्भित करता है कि करार करने वाली अन्य पार्टी द्वारा चूक होगी।
• इक्विटी जोखिम (सहभाग)	कंपनी-विशिष्ट कारकों के कारण इक्विटी के प्रतिकूल मूल्य के कारण स्टाक मार्केट में बैंकों के निवेश में मूल्यह्रास की संभावना को संदर्भित करता है।
• प्रतिभूतीकरण जोखिम	प्रतिभूतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ऋण लिखतों को एक पूल में एकत्रित करके और तदनंतर पूल द्वारा समर्थित नई प्रतिभूतियों को जारी जोखिमों को बाँटा जाता है। प्रतिभूतीकरण के दो प्रकार हैं, जैसे कि 'परंपरागत' तथा 'संश्लिष्ट' (सिंथेटिक) प्रतिभूतियां। 'परंपरागत' प्रतिभूतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रवर्तक बैंक आस्तियों के समूह को विशेष प्रयोजन संस्था को अंतरित कर देता है जो उनसे दूरी बनाए रखती है। इसके विपरीत 'संश्लिष्ट' प्रतिभूतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रवर्तक बैंक आस्तियों के समूहों का कानूनी स्वामित्व अपने पास रखता है और ऋण-संबद्ध नोटों अथवा क्रेडिट व्युत्पन्नियों के उपयोग के माध्यम से अंतर्निहित आस्तियों के पूल से संबद्ध केवल ऋण जोखिम को अंतरित करता है।
• सकेंद्रण जोखिम	संकेंद्रण जोखिम एक ऐसा एकल एक्सपोजर अथवा एक्सपोजरों का समूह है जो बैंक के स्वास्थ्य को अथवा उसके मुख्य परिचालनों को बनाए रखने की उसकी क्षमता को खतरे में डालने के लिए पर्याप्त हानि (बैंक की पूंजी, कुल आस्तियों अथवा समग्र जोखिम स्तर के संबंध में) उत्पन्न करने में सक्षम है।
बाजार जोखिम	बाजार जोखिम सामान्यतः मुद्रा तथा पूंजी बाजारों के मूल्य में हुए परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पन्न जोखिम को संदर्भित करता है। खुली विदेशी मुद्रा विनिमय स्थितियों तथा (स्पष्ट अर्थों में) खुली मीयादी स्थितियों के कारण विदेशी मुद्रा विनिमय घट-बढ़ की संवेदनशीलता के परिणामस्वरूप भी बाजार जोखिम उत्पन्न होता है।
• ब्याज दर जोखिम (आईआरआर)	ब्याज दर जोखिम (आईआरआर) की व्याख्या इस प्रकार है - ब्याज दर घट-बढ़ के कारण बैंक के पोर्टफोलियो मूल्य में परिवर्तन। आईआरआर प्रबंधन प्रणाली ट्रेडिंग बही (अर्थात जिन आस्तियों की नियमित रूप से ट्रेडिंग की जाती है और जो तरल स्वरूप की होती हैं) तथा बैंकिंग बही (अर्थात जो आस्तियां सामान्यतया परिपक्व होने तक रखी जाती हैं और जिनमें शायद ही कभी ट्रेडिंग की जाती हो) दोनों में मौजूद जोखिम एक्सपोजरों की माप तथा नियंत्रण से संबंधित है। आईआरआर को चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है : पुनर्मूल्यनिर्धारण जोखिम (अर्थात ब्याज दर स्तरों में घट-बढ़ जिनका बैंक आस्तियों तथा देयताओं पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है), आय वक्र जोखिम (अर्थात आय वक्र के ढलान एवं आकार में अप्रत्याशित बदलाव द्वारा पोर्टफोलियो मूल्य में परिवर्तन), आधार जोखिम (अर्थात उसी तरह की परिपक्वताओं के लिए विभिन्न ब्याज दर बाजारों में सूचक दरों के बीच अपूर्ण सह संबंध) तथा विकल्पता (बैंक आस्तियों, देयताओं और तुलनपत्र बाह्य स्थितियों में दिए गए ब्याज दर विकल्पों से उत्पन्न जोखिम)
• इक्विटी मूल्य जोखिम	यह जोखिम सामान्य बाजार संबंधी कारकों के कारण इक्विटी के बाजार मूल्यों की घट-बढ़ के कारण उत्पन्न होता है।
• विदेशी मुद्रा विनिमय जोखिम	यह जोखिम विदेशी मुद्रा विनिमय दरों में घट-बढ़ के कारण उत्पन्न होता है।
परिचालनात्मक जोखिम	अपर्याप्त अथवा विफल आंतरिक प्रक्रियाओं, व्यक्तियों तथा प्रणालियों अथवा बाह्य घटना के परिणामस्वरूप हुई हानि का जोखिम परिचालनात्मक जोखिम कहलाता है। इस परिभाषा में कानूनी जोखिम शामिल है, किंतु रणनीतिक तथा प्रतिष्ठा संबंधी जोखिम शामिल नहीं है।
• अनुपालन/कानूनी जोखिम	अनुपालन/कानूनी जोखिम में पर्यवेक्षणात्मक कार्रवाई तथा निजी समझौते के परिणामस्वरूप जुर्माना, दंड अथवा दंडात्मक हानियों के प्रति एक्सपोजर शामिल है, किंतु यह इस तक सीमित नहीं है। कानूनी/अनुपालन जोखिम यथोचित नीति, प्रक्रिया अथवा विधि, विनियम, संविदात्मक व्यवस्थाओं तथा अन्य कानूनी तौर पर बाध्यकारी करारों और अपेक्षाओं के अनुरूप नियंत्रण बनाने में संस्था की विफलता से उत्पन्न होता है।
• प्रलेखीकरण जोखिम	अनुचित अथवा अपर्याप्त प्रलेखीकरण से भविष्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता तथा अनिश्चितता बनी रहती है, जो वित्तीय संविदा की विशिष्टताओं के संबंध में संदिग्धता उत्पन्न करती है, तथा इसे ही प्रलेखीकरण जोखिम कहते हैं।
चलनिधि जोखिम	चलनिधि जोखिम बैंक की दायित्व निभाने की असमर्थता से उत्पन्न होता है, और यह ऐसी स्थिति को संदर्भित करता है जिसमें पार्टी के इच्छुक होने के बावजूद आस्ति की ट्रेडिंग करने के लिए कोई काउंटरपार्टी नहीं मिलती है।
• सावधि चलनिधि जोखिम	यह जोखिम ऋण लेन-देन में पूंजी प्रतिबद्धता अवधि में अप्रत्याशित बढ़ोतरी (चुकौती में अप्रत्याशित देरी) हो जाने के कारण उत्पन्न होता है।
• आहरण/मांग जोखिम	अपेक्षा से अधिक ऋण का आहरण करने अथवा अधिक जमाराशि के आहरण से उत्पन्न जोखिम आहरण अथवा मांग जोखिम कहलाता है। इससे बैंक को यह जोखिम है कि कठिनाइयों के बिना वह अपने भुगतान दायित्व पूरे नहीं कर सकेगा।
• संरचनात्मक चलनिधि जोखिम	यह जोखिम आवश्यक निधि लेन-देन न कर पाने (अथवा केवल कम अनुकूल शर्तों पर कर पाने) की स्थिति में उत्पन्न होता है। यह जोखिम कभी-कभी निधीयन चलिनिधि जोखिम भी कहलाता है।
• आकस्मिक चलनिधि जोखिम	आकस्मिक चलनिधि जोखिम एक ऐसा जोखिम है जो अतिरिक्त निधियों को जुटाने अथवा संभाव्य भविष्यकालीन दबावग्रस्त बाजार स्थितियों के अधीन परिपक्व हो रही देयताओं को पुनःस्थापित करने से संबंधित है।
• बाजार चलनिधि जोखिम	यह जोखिम तब उत्पन्न होती है जब विदेशी मुद्राओं को अपेक्षित समयावधि के दौरान नहीं बेचा जा सकता है अथवा केवल बट्टा दर पर बेचा जा सकता है (बाजार प्रभाव)। यह विशेष मामला अतरल बाजार में प्रतिभूतियों/व्युत्पन्नियों का होता है, अथवा जब बैंक ऐसी बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अपने पास रखता है कि उसे आसानी से नहीं बेचा जा सकता। इन बाजार चलनिधि जोखिमों का हिसाब की माप में धारण अवधि (उदाहरण - जोखिम पर मूल्य (वीएआर) के लिए धारण अवधि) को बढ़ाकर अथवा अनुभव के आधार पर प्राप्त प्रत्याशित मूल्य लागू कर किया जा सकता है।
अन्य जोखिम	
• रणनीतिगत जोखिम	रणनीतिगत जोखिम कारोबार नीति निर्णयों, आर्थिक वातावरण में परिवर्तन, निर्णयों के अपूर्ण अथवा अपर्याप्त कार्यान्वयन अथवा आर्थिक वातावरण में हुए परिवर्तन को स्वीकार करने में विफलता के कारण पूंजी तथा अर्जन पर हुए ऋणात्मक प्रभाव से संबंधित है।
• प्रतिष्ठा संबंधी जोखिम	प्रतिष्ठा संबंधी जोखिम संभाव्य प्रतिकूल प्रभाव से संबंधित है, जो बैंक को प्रतिष्ठा में प्रत्याशित स्तर की तुलना में ऋणात्मक भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। बैंक की प्रतिष्ठा उसकी क्षमता ईमानदारी तथा विश्वसनीयता के प्रति जनता (निवेशक/उधारकर्ता, कर्मचारी, ग्राहक आदि) की नजरों में बनी छवि पर निर्भर होती है।
• पूंजीगत जोखिम	पूंजीगत जोखिम बैंक के स्वरूप एवं आकार के संबंध में असंतुलित आंतरिक पूंजीगत संरचना से, अथवा यदि आवश्यक हुआ तो अतिरिक्त जोखिम व्याप्ति वाली पूंजी तुरंत जुटाने से संबंधित कठिनाइयों से उत्पन्न होता है।
• अर्जन जोखिम	अर्जन जोखिम बैंक की अर्जन संरचना में अपर्याप्त विविधता अथवा लाभप्रदता के एक पर्याप्त एवं अंतिम स्तर तक पहुंचने में बैंक की असमर्थता के कारण उत्पन्न होता है।
• आउटसोर्सिंग जोखिम	आउटसोर्सिंग जोखिम को वर्गीकृत करने के कई उपाय हैं, जिनमें से चार अत्यधिक सुविधाजनक उपाय हैं - परिचालनात्मक विघटन जोखिम, डेटा जोखिम, गुणवत्ता जोखिम और प्रतिष्ठा संबंधी जोखिम।

स्रोत : मुद्रा और वित्त की रिपोर्ट, 2006-08, खंड-I

लेखकों से

इस पत्रिका का उद्देश्य बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर हिंदी में मौलिक सामग्री उपलब्ध कराना है । बैंकिंग विषयों पर हिंदी में मूल रूप से लिखने वाले सभी लेखकों से सहयोग मिले बिना इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी? हमें इसमें आपका सक्रिय सहयोग चाहिए । बैंकिंग विषयों पर हिंदी में मूल रूप से लिखे स्तरीय लेखों की हमें प्रतीक्षा रहती है । साथ ही, अर्थशास्त्र, वित्त, मुद्रा बाज़ार, पूंजी बाज़ार, वाणिज्य, विधि, मानव संसाधन विकास, कार्यपालक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, परा बैंकिंग, कंप्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ इन विषयों पर व्यावहारिक या शोधपूर्ण मौलिक लेख भी हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं । प्रकाशित लेखों और पुस्तक समीक्षाओं पर मानदेय देने की व्यवस्था है। **कृपया प्रकाशनार्थ सामग्री भेजते समय यह देख लें कि :**

- सामग्री बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर ही है ।
- उसमें दी गई जानकारी उपयोगी और अद्यतन है एवं अधिकतम 8 टंकित पृष्ठों में है ।
- लेख यदि संभव हो तो आकृति/यूनिकोड फांट में rajbhashaco@rbi.org.in और/अथवा savitrisingh@rbi.org.in नामक ई-मेल आईडी पर भेजने की व्यवस्था की जाए ।
- वह कागज़ के एक ओर स्पष्ट अक्षरों में लिखित अथवा टंकित है ।
- यथासंभव सरल और प्रचलित हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया गया है और अप्रचलित एवं तकनीकी शब्दों के अर्थ कोष्ठक में अंग्रेजी में दिए गए हैं ।
- यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक है, प्रकाशन के लिए अन्यत्र नहीं भेजा गया है और 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' में प्रकाशनार्थ प्रेषित है।
- लेख में शामिल **आंकड़ों, तथ्यों आदि के संबंध में स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करें ।**
- प्रकाशन के संबंध में यह सुनिश्चित करें कि **जब तक लेख संबंधी अस्वीकृति की सूचना प्राप्त नहीं होती, संबंधित लेख किसी अन्य पत्र-पत्रिका में प्रकाशनार्थ न भेजा जाए ।**

प्रकाशकों से

जो प्रकाशक अपनी पुस्तक की समीक्षा करवाना चाहते हैं
वे कृपया अपनी पुस्तकों की दो प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था करें ।

पाठकों से

इस पत्रिका को आप निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं । इसके लिए आपको अपना अनुरोध लिखित रूप में 'कार्यकारी संपादक, बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' को भेजना होगा । आपका फार्म मिलते ही आपका नाम डाक सूची में शामिल कर लिया जाएगा और तदनंतर आपको पत्रिका अगले दो वर्ष तक मिलती रहेगी । दो वर्ष समाप्त होने के पूर्व आप अपनी सदस्यता को नवीकृत कर लिया करें ताकि पत्रिका निरंतर मिलती रहे । आपसे अनुरोध है कि अपने सहयोगियों को भी यह जानकारी प्रदान करें तथा अपनी मांग से हमें तत्काल अवगत कराएं ताकि हम तदनुसार प्रतियों का मुद्रण कर सकें । **पुराने पाठक कृपया पत्राचार करते समय अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख अवश्य करें।**

• पाठकों की प्रतिक्रियाओं का हमें सदैव इंतजार रहता है •

बैंकिंग शब्दावली

वित्तीय क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा शब्दावली में एकरूपता सुनिश्चित किए जाने के क्रम में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित बैंकिंग शब्दावली एक ऐसा शब्दकोश है जिसमें बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्र से जुड़े महत्वपूर्ण अंग्रेजी शब्दों की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए उनके लिए उपयुक्त हिंदी शब्दों का चयन किया गया है। 288 पृष्ठ वाले इस कोश का मूल्य 80.00 रुपए (डाक व्यय अतिरिक्त) है। इसे प्राप्त करने हेतु निम्न पते पर संपर्क किया जा सकता है:

निदेशक, रिपोर्ट समीक्षा और प्रकाशन (बिक्री अनुभाग)
आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक
अमर भवन, फोर्ट, मुंबई - 400 001

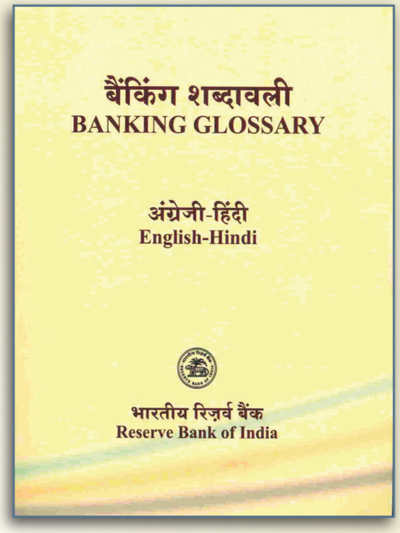

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित नवीनतम हिन्दी पुस्तक

'सहकारी बैंकिंग-संगठन और स्वरूप'

मूल्य : 250/- रुपये

पुस्तक मिलने का पता

मै. आधार प्रकाशन प्रा. लि.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16
पंचकुला (हरियाणा)

इस अंक के प्रकाशन में राजभाषा विभाग, केन्द्रीय कार्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक के सहायक प्रबंधक (राजभाषा) श्री एच. पंढरीनाथ का सहयोग प्राप्त हुआ।

पंजीकरण संख्या - 47043/88

बासेल-III: कार्यान्वयन के विभिन्न चरण

	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	1 जनवरी 2019 की स्थिति
लीवरेज अनुपात	पर्यवेक्षी निगरानी		समांतर चलन 1 जनवरी 2013 - 1 जनवरी 2017 1 जनवरी 2015 से प्रकटीकरण की शुरुआत					स्तंभ 1 की ओर प्रव्रजन	
न्यूनतम सामान्य इक्विटी पूंजी अनुपात			**3.5%**	**4.0%**	4.5%	4.5%	4.5%	4.5%	4.5%
पूंजी संरक्षण बफर						**0.625%**	**1.25%**	**1.875%**	2.50%
न्यूनतम सामान्य इक्विटी + पूंजी संरक्षण बफर			**3.5%**	**4.0%**	**4.5%**	**5.125%**	**5.75%**	**6 .375%**	7.0%
सीईटी 1 से कटौती की चरणबद्ध योजना				**20%**	**40%**	**60%**	**80%**	100%	100%
न्यूनतम टियर-1 पूंजी			**4.5%**	**5.5%**	6.0%	6.0%	6.0%	6.0%	6.0%
न्यूनतम कुल पूंजी			8.0%	8.0%	8.0%	8.0%	8.0%	8.0%	8.0%
न्यूनतम कुल पूंजी + संरक्षण बफर			8.0%	8.0%	8.0%	**8.625%**	**9.25%**	**9.875%**	10.5%
ऐसी पूंजी लिखतें जो अब गैर-कोर टियर-1 पूंजी या टियर-2 पूंजी के रूप में पात्र नहीं रह गई हों			2013 से 10 वर्ष की अवधि में क्रमिक रूप से बंद किया जाना						
चलनिधि कवरेज अनुपात	प्रेक्षण अवधि की शुरुआत				न्यूनतम मानक लागू करना				
निवल स्थिर निधीयन अनुपात		प्रेक्षण अवधि की शुरुआत						न्यूनतम मानक लागू करना	

किए गए आंकड़े परिवर्तन की अवधि को दर्शाते हैं। सभी तारीखें 1 जनवरी की स्थिति के अनुसार।